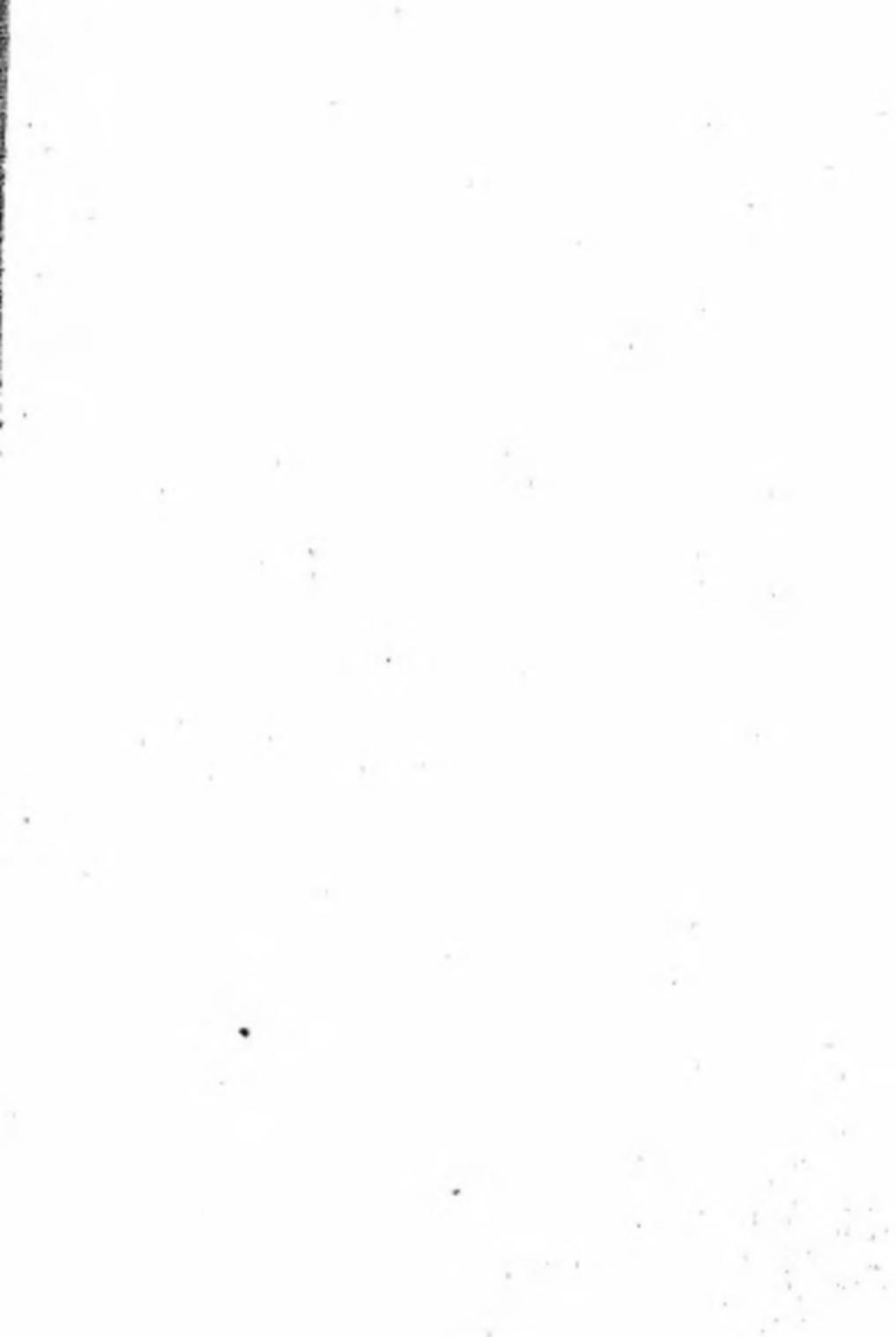


GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY

Access. 9941

CALL NO. 915.4 Upa

D.G.A. 79.



Maine dptō

Upadhyaya

Bhagavān Śrī

मैंने देखा

भगवत् शरण उपाध्याय

9941

15523



915.4
-upc

कि ता व म ह ल
इलाहाबाद बम्बई

प्रथम संस्करण, १९५१

CENTRAL LIBRARY, NEW DELHI

Acc. No. 9941

Date 29. 10. 1958

Call No. 915.4 / Up

समर्पण

रक्त और अस्त्रियों को जो इन नगरों
ने बहाये—

CENTRAL LIBRARY

Acc. No. 565

Date 18-12-1951

Call No. 9341 / Up

प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद।

मुद्रक—१० लक्ष्यू आर० प्रेस, इलाहाबाद।

भूमिका

‘मैंने देखा—’ भारत के १४ नगरों की आप चीती है। देश प्राचीन है, इसके नगर प्राचीन हैं, उनकी सम्मता प्राचीन है। सदियों की दीड़ में इन नगरी पर क्या चीती है, इन्हीने क्या भेजा और देखा है वह सब ये सब इमानदारी के साथ कहते हैं। इतिहास, जैसा का तैसा, ये सदियों-सहस्राब्दियों के पार हमारे तामने खोल कर रख देते हैं।

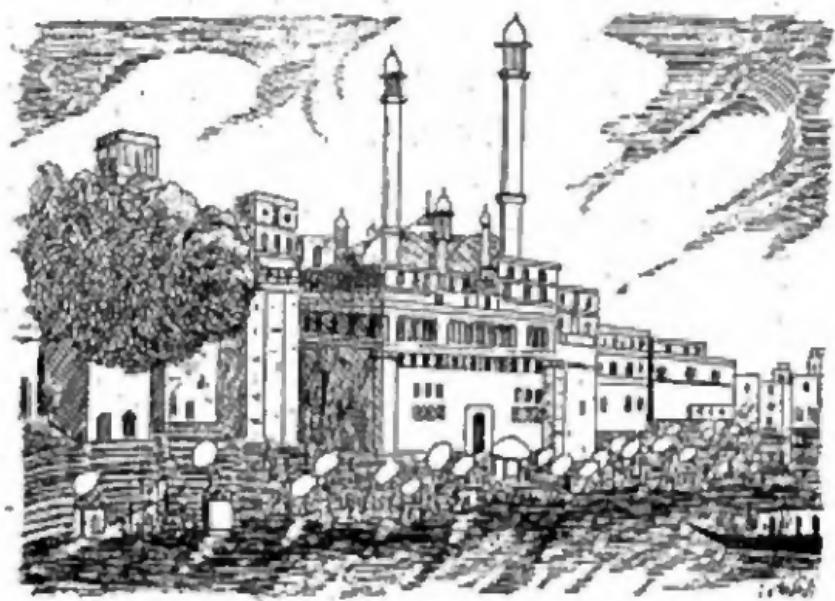
पुस्तक की पारहजिपि सेवक के भित्र श्री जयदत्त पन्त ने प्रस्तुत की इससे वह उनका ऋणी है। इन्य का रचना-काल ७-१-५० से २७-१-५० तक।

६, हैटिंग्स रोड, }
इलाहाबाद }
}

४८५

सूची

विषय			पृष्ठ
१. काशी	१
२. अद्योध्या	५२
३. प्रयाग	५७
४. तद्दशिला	८०
५. मधुरा	१११
६. राजपृह	१२६
७. उज्ज्वलिनी	१४३
८. कौशाम्बी	१६२
९. वैशाली	१८८
१०. पाटलिपुत्र	२०५
११. कक्षीज	२४८
१२. कांची	२६७
१३. आगरा	२८३
१४. दिल्ली	३०१



काशी

मैं काशी हूँ। आयों की सात प्राचीन नगरियों में मैं गिनी जाती हूँ। पर विश्वली के शाल पर मेरे जो बसने की बात कही जाती है, वह मुझे अधिक मान्य है। इसका कारण यह है कि उन सात नगरियों के साथ मेरी गणना, उनकी और मेरी प्राचीनता प्रायः समकालीन बना देती है। पर यह केवल अर्थसत्य है। वास्तविक बात तो यह है कि मैं अस्तन्त प्राचीना हूँ। आयों की कोई नगरी मेरी इतनी प्राचीन नहीं। अगर प्राचीनता में मेरी समता कोई कर सकता है तो महोनजोदेहो, चायुल, ऊर।

मैं मैदान में रही हूँ, पापनाशिनी गंगा के तट पर। आज से नहीं अति प्राचीन काल से मेरी महिमा गंगा के साथ ही अति पवित्र और सुख मानी गई है। गंगा निसन्देह मुझसे अत्यन्त प्राचीना है। परन्तु पतितपात्री जितनी वह है, उतनी ही मैं भी हूँ। और इस मैदान में बस-कर जो मैंने अपने केश पकाए हैं, तो वह कुछ हिम के समर्पक से नहीं वय और अनुभूति से।

मैं इस देश की धरा पर आयों के आने से बहुत पहले से खड़ी हूँ। धर्म पुस्तकों में जितनी ही मेरी महिमा गाई गई है, उतनी ही मेरी नाक-दरी भी हुई है। इतिहास की चीती सदियों में मैंने जो सुख-दुःख भोगे हैं उनका वर्णन करना मेरे लिए कुछ आसान नहीं। परन्तु मुझे तब कहना ही है तब मैं कहूँगी—अपने पुरुष प्रताप भी, पाप-अपमान भी। सदियों सहकान्दियों से मेरे तन से भावुक अदालु लिपटे रहे हैं। कहाँ तक मैं उनके क्लैश को दूर बा पाप का शमन करती हूँ, यह मेरे कहने की बात नहीं, उनके विश्वास की बात है, मेरी खुद की कहानी ताप और शीत रहनेवाले और उनके स्पर्श से दुःख-सुख का अनुभव करनेवाले प्राणी की है।

मेरी महिमा सर्वत्र गाई गई है, परन्तु मेरा जीवन ज्यादातर तकलीफ का जीवन रहा है, लूटों से भी मुझे तकलीफ पहुँची है। मुझे उसी बनैलेपन से आयों ने भी लूटा है, जिससे इस्लाम के गायियों ने लूटा, या हैस्टिल के फिरगियों ने। परन्तु उस लूट से मैं इतनी न कुदी, जितनी अपने अन्तर की व्यथा से। उस व्यथा की कहानी भी उस इतिहास का छंग है जिसका मैंने अपने उन हजारों सौंल के जीवन में निर्माण किया है और जिसे मैं अब सुनाने जा रही हूँ।

दूर का जमाना हुआ, इतने दूर का कि सारं साक बाद नहीं आता। नाटे कद के घने बुंधराले बाल बाले श्याम रंग के कुछ मनुष्य मेरे तट

पर एक बार आए । मेरे आसपास की जमीन बनों से दक्षी और गंगा का उनके बीच से होकर बहना कठिन हो रहा था । उन्हीं बनों की आड़ में गंगा के इस तट पर जो थोड़ी सी खुली जमीन थी वहीं, उन्होंने अपने शत्रुओं से रक्षा का समृच्छित स्थान समझ, अपने गाँव के बल्ले गाड़े । वही मैं हूँ जो आज शहर हूँ, सात नगरियों में से एक विशिष्ट नगरी ।

तब निरन्तर चारों ओर भार-काट हुआ करती थी । एक जन दूसरे जन को मार डालता । उसकी दो दो लाली लेता, उसके गाँव और लेते लेता, उसकी नारियाँ ले लेता और नरों को अम्बि को लपटों के इवाले कर देता । वह जीवन भी अपनी जगह पर कुछ कम भयावह न था और खुरेजी प्रायः रोज की बात थी, और इसलिए वन में विशेष कर नदी के तट पर बदि कोइ स्थान मिल जाता तो वह सुरक्षित माना जाता और जनों के बसने के लिए समृच्छित स्थान । मैं इसी प्रकार की बचाव की जगह थी, जहाँ झंगल पार कर शत्रु का आना कठिन था और जहाँ कम से कम एक और गंगा स्वयं गहरी और चौड़ी लाई की भाँति मेय पानी का परकोटा बनाती थी ।

मैं बढ़ चली, फैल चली गंगा के तट पर, इस बन के पीछे जो दूर तक कैसा हुआ था, जिसमें शेर और चौते दहाड़ते थे । भूखे मेहिये फिरते थे, हिरन चौकड़ी भरते थे । स्वयं गंगा मैं जल-जनुओं की कमी न थी । बड़ियाल बराबर मुँह बाये पाट की ओर चूरते रहते थे और समय असमय मेरे नागरिकों को बैसे ही उदरस्थ कर लेते थे जैसे स्थल का शेर । फिर भी मेरे नागरिक बीर और साइसी थे, जीवन की रक्षा के लिए लड़ कर भी उन्होंने कभी उसे सारभूत न माना और जल-यल के शत्रुओं से बचते दे अपने जीवन का नित्य नैमित्यक स्प से निर्बाह करने लगे ।

मेरे नागरिकों की उच्छति मेरी उच्छति थी । पास के लेत में अन्न

उत्तम दोता, बन में फल और मट, नदी अपने अनन्त अनन्त जीवों की भेट लिए सदा तत्पर रहती और मेरे बन के जन्मु भी मेरे नागरिकों की उद्दरपूर्ति में कुछ कम काम न आते। मिट्टी के मेरे घरों में चलें और कहें निरन्तर चलते रहते, मोटा खुरदुरा बस्त मेरे बसने वालों के तन ढक्का और मैं उनकी सफाई और सफ़ देख पूँछी न समाती।

धीरे धीरे मेरे मिट्टी के घर भी कम हो चले और उनके स्थान पर कालान्तर में धूर में सुलाई हेटों के मकान बन चले। कुछ ही काल बाद जाहिर हो गया कि आग में तपाईं हेटों अधिक टिकाऊ होती हैं, अधिक लाल तब आग ने पकाई हेटों का इस्तमाल होने लगा। मेरी नगरी अब गाँव न थी। खासा शहर था। तब दूर पास के शतुओं में मुके लूटने और कभी कभी मुझमें बसने की भी कामना चलती हो चली। अक्षर मैं लुटी, अक्षर मुझे लूटने थाले ही मेरे परकोटों के पीछे आ बसे।

और मेरे एक देवता भी थे, पहरी देवता विश्वनाथ। वह वे पशुपति थे; सारे चराचर के स्थानी, निश्चली, लिंगराज, जिनकी शली की नोक पर भक्तों ने मुझे बसी कह और जिसके सम्मक्ष से निश्वय मैंने अपने को धन्य माना। उसी देवता का तब देश में चोलदाला था। उसी के मेरे नगर में मन्दिर बनते थे, उसी की पूजा होती थी, कोष और भक्ति में उसी को सार्थी कर प्रतिका और प्रणाम किया जाता था।

मेरे बसे प्रायः दो हजार वर्ष बीत चुके थे कि दूर के नगरों के बसने वाले भागे हुए नेरी नगरी में पनाइ लेने आए। उसीका और यहाँ आकर जो उन्होंने विष्वस और अग्रिदाद की कहानी कही तो, मेरे रींगटे रखे हो गए। सिन्धु नदी की धाटी में मेरी ही ही एक समृद्ध सभ्यता फैली थी। वहाँ के नगर शान-विहान ने, कला-कौशल में, कृषि-वाणिज्य में हंसाने में प्रतिद्वंद्वी हो चुके थे और विशेषकर सिन्धु देश का आज के परकाने

का वह प्राचीन नगर थो तबके संसार के कल्य-विक्य का केन्द्र था । ऊर और बाबुल, मिथ और चीन सर्वत्र से व्यापारी आपने काम की चीजें वहाँ के बाजार में खरीदते । मेरे नगर के नी अनेक प्रकार के कला-कौशल कल के जग चले थे । मेरे नागरिक भी सौदागरी को कितनी चीजें तैयार करते थे, विशेषकर भौंड और रेशमी बस्त वो मेरे दूर-दूर तक जाने लगे थे । चाँदी की घनी मेरे नगर की चीजें विशेष तरह से दूर की दुनिया वाले परन्द करते थे और इन मेरी चीजों की चिन्ही का बाजार भी सिन्ध के उसी नगर में था ।

सो यदों के बां भगोडे आए उन्होंने बताया कि किस प्रकार उँचे, तगड़े, गोरे सुन्दर, तुगनास, विंगलकेश आकृमकों की अनेक चाँदों ने आकर उपरे सतसिन्धु को आज्ञावित कर दिया है । आकृमक आपने को आर्य कहते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, सूख और चाँद को देख विहूल हो मन्त्र पढ़ने लगते हैं, मन्त्र पद कर ही वे शत्रुओं पर चोट करते हैं, उनके पास तोर है, कमान है, भाले हैं, शँड हैं, कसे और टाल हैं, शिखाण और कवच है, उनके पास कोई धन नहीं, कोई घर नहीं, हथियार उनके धन है, धोड़ों की पीड उनके धर, विकराल सिंह सदृश कुत्ते उनके साथ ही वायुवेग से, वे शत्रु पर दृढ़ पदते हैं, उनका संहार कर उनकी स्त्रियों छोन लेते हैं । दृश्यों को मार देते हैं, तरणों को दाढ़ बना लेते हैं । उनकी विजय के स्नारक जले हुए गर्वों की राल है, मरे हुओं की रक्त की धाराएँ । उन्होंने ही सिन्धु तड़ के नगरों को उजाह दिया है । वहाँ वे स्वयं यस गए हैं, परन्तु उन्हें नगर बनाने नहीं आते, नगरों में बसना वे नहीं जानते, वे गाँवों में रहते हैं, तुण के मण्डरों में । आखिर उनको एक जगह रकना भी तो विशेष नहीं, आज यहाँ, कल यहाँ । इसी से तो हमारे नगरों को जो इंट-पत्थर के बने हैं, वे लोहे के हुर्ग कहते हैं । इसी-

से तो उनका सम्पर्क, उनका आगमन अशुभ और मृत्यु का सूचक है। शिव हमारा कल्पय करे।

और एक दिन ऐसा हुआ कि मुझे भी गोरे, ऊचे-तगड़े उन खनुँधरों का सामना करना पड़ा। कुएँ के खुएँ घोड़ों पर चढ़े वे मेरी प्राचीरों को तोड़ते हुए, लड़कों और गलियों में फिल पड़े। उनकी संख्या तो बहुत न पी पर उनका कायिक बल अपूर्व या और जिन शादीों पर वे चढ़े थे, उन्हें वे अरब कहते थे। यह अश्व ही उनके राष्ट्र या धन के पर्याप्त थे, क्योंकि इन्हीं की पीठ पर उनका धर था, उनका धन था। उन घोड़ों को मैंने पहले पहल तभी देला अब उन्होंने मेरे नगर में वय की सेना की भाँति प्रवेश किया और मैं ढर गई। दोनों से, उन घोड़ों से भी, उनके स्वारों से भी। और यह सवार ! ये दुर्दान्त, भीमकाय, गौरवर्ण, जालिम लुटेरे उन्होंने एक धर न छोड़ा। सब में आग लगा दी। मेरे नागरिकों को कुचल डाला, मेरे देवता को भ्रष्ट कर दिया, उसका आयतन तोड़ कर हँटें जमीन पर बिलोर दी, देवता कुद्द न बोला, अपने अपमान के प्रतिकार में वह कभी न बोला, न तब न पीछे।

मेरे नागरिक शान्तिप्रिय थे। युद्ध के कौशल क्षमके उनके पाए हो चुके थे। शान्ति का जीवन विताने वाले उनके हाथ-पैर इन संहारकों के आते ही छूल गए। उनको उनके विजेताओं ने अनार्य कहा, कृष्णकाय, अनारा, मृग्रथाक, अवज्वन, अदेवयु, शिष्णुदेवा। ये सारे शब्द उनके विचार में गाली थे, परन्तु मेरे नागरिकों के लिए ये गाली न थे और कुछ ही काल थार फिर वे स्वयं इन शब्दों को गाली की तरह शत्रुओं के विरुद्ध प्रयुक्त भी न कर सके। शिष्णुदेवा, जितने मेरे प्राचीन नागरिक इच्छुके थे उतने ही अब मेरे नए गौरींग विजेता हुए। लिंगपूजन उनका भी सर्वस्व हुआ और मेरे विशुली को उन्होंने शिष्य, शंभु, शंकर आदि कल्पाय-रचक विशुद्धी से आमन्त्रित किया। मैं हँसी जब मैंने देला

कि कभी की गाली अब का विरुद्ध बन गई । शत्रु विजेता होकर भी विजित की संस्कृति का किस प्रकार दास हो जाता है, यह मैंने दभी देखा । युद्ध, समझु और केशधारी पुरोहित जिन्हे विजेता श्राव्य शृणि कहते और युद्ध मानते थे अब अपनी वशशालाओं से बाहर निकल मेरे पुराने नागरिक पुजारियों से मन्त्र सीखते, उनकी गति-विधि कियाएँ सीखने के लिए उनके चारों ओर मंडराते रहते । और मेरे वे पुराने पुजारी अपने चारों ओर रहस्य का आवरण पहने भेद की चेष्टाओं से निस्तर अपने विजेताओं को स्तब्ध और मुग्ध रखने लगे ।

नवागन्तुक विजेता कई जातियों में बैठे थे । उनमें 'शृणि' और 'राजा' थे, 'प्रामणी' और रत्नी थे । धीरे धीरे एक कुल ने मेरे नगर में अपनी शक्ति की स्थापना की । वह कुल मेरी नगरी में प्रायः तीनी प्रतिष्ठित हुआ, जब अयोध्या में इवाकु कुल प्रतिष्ठित हुआ, जब विदेह मायथ सदानीरा (गंडक) को पार कर निधिला की ओर चला गया, जिस काल भरतों के राजा प्रतर्देन का राजकुल भी अपना शासन मेरे नगर और उसके आसपास के इलाकों पर कुछ सदियों बनाए रहा । फिर जब विदेहों के सीराज्ज जनक ने साकिरय का राज जीत कर अपने अनुज कुशाख्यज को दे दिया, तभी वे भी कुशाख्यज की ही एक शाखा के हाथ में आईं ।

फिर धीरे धीरे मेरे नगर में उन ब्रह्मदत्तों की प्रतिष्ठा हुई जो पूर्व के आयों में संस्कृति और शान के अप्रतिम अप्रणी माने गए । महाभारत युद्ध के बाद ही उनकी विशेष प्रतिष्ठा बढ़ी । महाभारत काल में प्रगाढ़ ने अपना साम्राज्य काफी बढ़ा लिया था । उस काल से पहले जब श्राव्य पंचाल से पूरब बढ़े थे और उन्होंने काशी, कोशल और विदेह में जब अपना वेश्वानर प्रज्वलित किया और वहाँ अपने राजकुलों की नींव डाली तब अपनी दिशा में, मैं ही पूर्व की उनकी तीमा बनी ।

अंगोंभगधों को आयों ने अवावत देश माना और अपने उवर आदि व्यापियों को उन्होंने मन्त्र द्वारा उन्हीं में निर्वासित करने के उपकरण किए।

परन्तु महाभारत काल के कुछ पहले से ही जो यहाँ आर्य कुल प्रतिष्ठित हो चुके थे तो उन्होंने एक के बाद एक नए राज्य लड़े किए और वहिदवंशी ने तो अपना साम्राज्य इतना बढ़ाया कि जरासंध के शासन काल में और कोशल दोनों मगध की बदली सीमा में समा गए। कुछ ही काल पहले मेरे नगर में भीष्म तक आए थे। काशीराज की कन्याएँ जिन्हें भीष्म ने स्वर्यंशर में जीता पर जीत कर भी जिन्हें न व्यावहने के कारण उन्हें परशुराम के कोपानल का सामना करना पड़ा, वे मेरी ही नगरी की थीं। उसी कुल की जिसे यहाँ प्रतिष्ठान से चन्द्रघंशी प्रतापी पुरुषों के एक वंशधर ने प्रतिष्ठित किया था। महाभारत काल तक पहुँचते पहुँचते वह कुल मगध का अनुचर हो गया। परन्तु जरासंध के बाद के बाद जब उसका पुत्र सहदेव भी महाभारत में जूँक गया तब वही न रह सकी। महाभारत के बाद शीघ्र ही जिस प्रकार निचलु ने कहस में डेरा ढाल कोशान्वी को सनाथ किया, जिस प्रकार गिरिज में एक नए राजकुल की प्रतिष्ठा हुई, जिस प्रकार विदेश में एक नए जनक कुल ने सीरस्वत्त के बाद स्थापित होने वाले गश्तन्त्र को उलट कर अपना राजवंश स्थापित किया, जिस प्रकार पंचाल में एक विचक्षण राजवंश जमा, उसी प्रकार मेरी नगरी में भी। उन ब्रह्मदत्तों का कुल अंकुरित हुआ, जिनके शान और प्रताप की बात मैं अनी कह चुकी हूँ।

ब्रह्मदत्त कुल के राजा चिन्तक थे, दार्शनिक और उन्होंने अपने विचारों के जो विज्ञान ताने, यद्यपि उनमें साक्षात् वस्त्र का लेश भी न था, वह फला सूख। वस्तुतः तब के आर्य जगत में जनपद राज्यों की प्रतिष्ठा के बाद चिन्तन की एक भून सी उचार हो गई थी। आर्य नगरों

के समीपस्थ इनमें श्रुतियों के अरण प्रतिष्ठित थे, जहाँ शृणि ग्राहण श्रुतियों और कभी-कभी विशेष कृपा होने पर वैश्यों को वैदात्ययन कराते। गीने अपने प्राचीन नागरिकों में जिनको आर्य गाली देते थे, कभी जनजन में भैदन देखा या परन्तु आर्यों की अनता में अनेकों स्तर थे, कुण्ड के कुण्ड पश्चु से भी गए बीते दास और आस-रूपक सेषक जिन्हें पढ़ने लिखने का तो अधिकार नहीं ही था अन्यगत वार्ते सुनने का भी अधिकार न था। अस्यु ।

जनपद राज्यों की प्रसरणिप्सा अज्ञ की उपज ने कम कर दी थी। लहुआम्बिद्यों से लूट और आहार की लोज में फिरते रहने वाले धुनकदों को आधार मिला या लहाँ ये अव इत गए थे और जिस समृद्धि को वे अब भोगने लगे थे, उन्हें प्रमादी भना दिया था। सलवार उठाने की उनमें न तो अब विशेष कृपा ही रह गई थी न इच्छा ही। अब वे दन्दात्मक चिन्तन मात्र करते थे, दार्शनिक वाद-प्रतिवाद मात्र और इस वाद-प्रतिवाद में, दन्दात्मक चिन्तन में अप्रतीय रोज़गार अस्ति नहीं।

इस प्रकार का चिन्तक केन्द्रों में अश्वपति था, पंचालों में प्रवाहण जैविक, विदेहों में जनक और मुक्त कारी में अजातशत्रु। चारों ग्राहण शृणि कुमारों को निरन्तर अपने नए शान से विद्युत करते उदालक आरूप्य, गारुदरूप्य आदि सभी शृणि कुमार अपने शान के लिए उन्हीं राजपुरुषों की ओर ताकते थे।

अजातशत्रु द्वेरी नगरी का ही राजा था जिसने उसिंदालाकि को अपने प्रसन से स्तन्ध और निष्ठुर कर दिया, निःसन्देह आत्मा अयवा शरीर में रहने वाले किसी ऐसे जीव की कल्पना बो बैशा भी है, स्वतंत्र भी है, खाता भी है, निराहार भी रहता है, मारता भी नहीं, मारा भी नहीं जाता, नित्य है, अमर है और शरीर के मरने पर निर-

भी जीवित रहता है, यह बार दूतरे शहरों ने अनन्त काल तक जन्मता रहता है—निःसन्देह इस भूल-भुलौया को समझना कर्मकारडी ब्राह्मण के लिए टेढ़ी स्त्री था। चिन्तन पद्धतियों में होने लगा था और मेरे चेत्र का अद्यम्ब्र ब्राह्मण उस पहली को न सुलभा सफने के कारण चिन्तित हो गया। अजातशत्रु ने ग़हा के तट पर अपने प्रापाद के विमल ऊँचे आसन से उपनिषद् दत्त्व का व्याख्यान किया। इस आर्य राज कुल ने मेरी महिमा ही बढ़ाई। यद्यपि मैं अब शहरी के शहर की नोक पर विराजमान न थी आर्य चिन्तन के मैदान में उत्तर आई थी। परन्तु आयों ने भी मुझे कुछ कम गौरव न दिया। उनके हान का मैं कबसे केन्द्र हो चली थी और अजातशत्रु ने तो मुझे निश्चय अभ्यासी बना दिया। ईस्वी पूर्व की यह नवी उदी चिन्तन में विशेष जागरूक थी और मैं जब विविध उिदान्तशादियों को अपने अपने उिदान्तों का निरूपण और आल्यान करते सुनती तो यद्यपि मुझे उनके एस्य में कोई सार्थकता न जान पड़ती दूसरों पर उनके प्रभाव की मात्रा देख पुलकित अवश्य हो जाया करती।

जग्मना चरला। कर्मकारड विश्व विद्रोह कब का हो चला था। सरस्वती के तट पर खड़े अनन्त यूप आव वैकार हो गए थे। उनमें मैंधने वाले चलिपशु अब उस यश रथल से दूर जा पड़े थे। सरस्वती का तट धीरान हो गया था। मेरा तट अब जनाकुल था भरान्पूरा। मेरा तट भी जो कभी यूप से बँधे बलि के लिए कटने वाले पशुओं की चीत्कार से गूँजता रहता था, अब शान्त था। उसके रथान पूर आव जीप और अदिशा की महिमा गार्द जाने लगी थी। इस विद्रोह के इस नए आनंदोलन के अभ्यासी लक्षिय मे और अनेक बार इस काल के राजकुलों के उन कानिष्ठ अंशधरों ने चिन्तन के चेत्र में नेतृत्व किया जिनको गही पाने का अवसर न मिला। मेरे राजा अश्वसेन का पुत्र पाश्वी इसी प्रकार का

चिन्तक सिद्ध हुआ। द्वाष्टाहों के प्रति उसका विद्रोह सबल हो उठा और उसने कमेकाएड से विमुख हो अस्तेय अहिंसा सत्य और धनहीनता के सिद्धान्तों का प्रचार किया। ये चारों और विशेषकर अहिंसा तो कभी की अर्थों की समर्पित न रही थी। मैं जानती थी कि यह मेरे प्राचीन नागरिकों के विचारकल्प है जो काल के जादू से अब उनके विजेताओं के सिर पर चढ़ कर बोल रहे हैं और मैं उस चमत्कार को उपचाप, पर सन्वोदयपूर्वक देखती रही।

द्वाष्टाहों के शाहन काल में मैं विशेष फली-फूली। मेरा वाणिज्य अनियत मात्रा में बढ़ चला। युद्धों का डर कष्ट का हो चला था। शान्ति के शीघ्रन में नागरिकों का कलाकौशल में संग जाना स्वाभाविक हो रहा। वाणिज्य की अनन्त अनन्त वस्तुएँ तब मेरे विविध मुद्दलों में प्रस्तुत होने लगी। मेरी नगरी कर की दूर-दूर के सीमाधानीय नगरों से वाणिज्य पद्धों द्वारा जोह दी गई थी। मेरे केन्द्र से विशिक्षण पाटलिपुत्र और गिरिव्रज, मिथिला और अयोध्या, कोशाली और अहिंस्त्रा, मणुरा और तद्दिला उत्तरायणी और परिचमी समुद्र-न्टट को दौड़ाने लगे थे। मेरे विशिक गाड़ियों में भौंक, चत्त और अन्य अनन्त सौदा की वस्तुएँ भर-भर कर दूर देश की यात्रा करते और उनके बाजारों में मेरी चीजें बेचकर समृद्ध हो जाते। उनकी यात्राओं की कहानियाँ जातको और पंचतन्त्र में लिपिबद्ध हुई। दूर के नगरों में मेरी नगरी की अनी चीजों के नाम पर उनके बाजारों में वीथियों और सड़कों के नाम पढ़ गए। मेरे कारबाँ थायेन (थानुल) और मिथ तक रथल मार्ग से जाने लगे। मेरे विशिक विशाल पोतों पर समुद्र लांप दूर के द्वीपों में पहुँचने लगे।

कुछ ही दिनों बाद, ग्रायः दो सदियों बीतने पर विद्रोह की धारा जो अब नितान्त प्रबल हो उठी थी बेशाली और कपिलकल्प के हत्रिय गण-तन्त्रों में बह चली। गणतन्त्र अपेक्षाकृत अधिकाधिक जनसत्ताक होते थे

और वही विरोधी भावनाओं के प्रभाव के लिए भूमि प्रस्तुत थी। वहीं उसकी बेले लगीं और फूली-फली। कर्दमान महामीर ने विजित होकर वैशाली की जनता में अहिंसा और यज्ञ विद्रोह का प्रचार किया और कपिलवस्तु के गौतम दुद ने मगध, कोशल, वत्स और वैशाली में। विजियों और शास्त्रों में अप्रतिप नेता गाँव-गाँव नगर-नगर घूम कर मनुष्य माद की एकता और उसके कल्याण के साधनों का प्रचार करने लगे।

परन्तु तब तक मेरी राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों हितियों में पर्याप्त अन्तर पढ़ गया था। मेरी राजनीतिक चेतना, राज्य के प्रति उदासीनता और वाणिज्य के ग्राहुल्य से कब की खो चुकी थी। मेरी समृद्धि और निष्क्रियता बाहरी साहसिकों की तुष्णा का कारण हुई। उनके भीतर उन्होंने खांभ की जो भावना जगाई उससे स्वयं में अपनी रक्षा न कर सकी। मगध के गिरिज में हर्येंकों का राजकुल काव्य था, वत्स की कौशाम्भी में भरतों का राजकुल, दूर की अर्द्धनी में प्रदोषों का राजकुल शासन कर रहा था और पास के कोशल की भावस्ती में कोशलों का राजकुल और मैं मगध तथा कोशल को प्रसर-लिप्सा का निरन्तर उद्दीपन करने लगी थी। फिर तो एक दिन भावस्ती के कंस ने मुझ पर आक्रमण कर मुझे हड्डप ही लिया। मैं कोशल के अधिकार में तब जली गई और कंस ने 'बाराणसी गहो' अपना नया विश्व भारण किया। वह ईसा पूर्व सातपी सदी का अन्त था जब एक नया धुग धीरे-धीरे मध्य देश के इस पूर्णी भू-खण्ड पर अपना मरुतक उठा रहा था।

मैं राजनीति विहीन निरवय हो गई परन्तु मेरी सांस्कृतिक और धार्मिक मर्यादा फिर भी बनी रही। ईसा पूर्व छठी सदी में अवन्ती का राजा चरहप्रधोत महारेन हुआ, वत्स का उदयन, कोशल का

प्रेसनजित, और मगध का चिम्बिसार। उदयन ने मेरे पढ़ोसी भगों को जीत उनकी राजधानी शुमशुमारगिरि (जुनार) में अपने पुत्र बोधी को शासक बना कर भेजा और चिम्बिसार ने अंग को जीत मगध में मिला लिया। मेरी राजनीतिक सत्ता पहले ही नष्ट हो चुकी थी, सोलह जनपदों की गणना से मैं कब की अलग हो चुकी थी और अब मुझे मेरे नए प्रभुओं ने पाण्डित्य की वस्तु की भाँति कभी केवा कभी देना शुरू कर दिया। भावस्ती के महाकोशल ने अपनी पुत्री कोशलदेवी का विवाह मगध के चिम्बिसार से किया और उसके 'चूहासनान' (पाकेट तर्ब) के लिए मेरी एक लाल की वार्षिक आय उसके यौनुक में दे दी। अब मैं मगध की नगरी हुई। जिस मगध को मैंने प्राचीन काल से ही अपावन पाना था उसी की आधिता नगरी होते नेत्री छाती फट गई। परन्तु जब मुझे स्वयं सामर्थ्य न था और मैं दूसरों के लेने-देने की नारी की ही भाँति वस्तु हो गई थी तब मुझे अपनी स्वतंत्र इच्छा-अनिच्छा का ही क्या अर्थ और प्रयोजन? मैंने चुपचाप मगध को आत्मसमर्पण कर दिया यद्यपि मेरा चिरुना नियति ने सर्वथा अर्थ न जाने दिया और शीघ्र मेरे ही लिए मगध और कोशल में भयानक इन्द्र लिह गया।

चिम्बिसार का पुत्र अजातशत्रु तिहासन का लोभ और अधिक संवर्य न कर सका और उसने पिता को हटाकर उसे हस्तगत कर लिया। पता नहीं चिम्बिसार कैद में भूख से मरा या पुत्र के विष से पर इतना जहर है कि वह राजवट के प्रासाद से गायब हो गया और अजातशत्रु ने नए सिर से मगध की शक्ति बढ़ानी शुरू की। महाकोशल का पुत्र प्रेसनजित, कोशलदेवी का भाई था। उहिन का वैष्व उसे खल गया और उसने अब मेरी नगरी की एक लाल की वार्षिक आय मगध को देनी बद कर दी। अजातशत्रु कोशल पर चोट करने का

मीका तो देता ही रहा था यथापि विविध की तत्परता और अकन्ती के प्रश्नोत्तर के भय ने उसे कोशल पर चोट करने के संबंध में कुछ शक्तिवाकर रहा था पर प्रसेनजित के इस आचरण ने उसे युद्ध के लिए प्रस्तुत कर दिया। युद्ध ठंड गया। मैं जुगाड़ देखती रही। अपने भाग्य से मैं उदासीन थी और युद्ध से मेरी वस्तुस्थिति में कोई अन्तर पढ़ने वाला न था क्योंकि दोनों ने से इसी एक की जीत होनी आवश्यक थी और इस दशा में मुझे उसकी ही होकर रहना होता तब जब मुझे स्वतंत्र रहना ही न था तब मेरे लिए जैसा एक तैया दूसरा। फिर भी युद्ध की भव्यत्करता कुछ असापारण थी। उत्तर काल विस्तार भी कुछ कम न था और दोनों पंडी की अवामान्य दृष्टि उस युद्ध को निश्चय औरें के लिए ही नहीं मेरे लिए भी आकर्षक बनाए रही। पर अन्त में जीत मगध की हुई और न केवल मैं वरन् प्रसेनजित की पुत्री विजिरा भी अजातशत्रु की गाँठ छोड़ दी गई। मैं फिर मगध की चौरी हो गई और अब की न केवल मेरी आय वरन् सारा शालन राजगृह के दाप चला गया।

राजगृह फिर भी दूर पड़ता था और मुझ पर उसकी पकड़ कुछ ढीली ही थी पर दर्शक के पुत्र उदायीभद्र ने जब राजगृह छोड़ गंगा-शोण के कोण में नई राजधानी पाटलिपुत्र बसा ली तब तो नित्य ही उसके दूसरे मुझे नम करने लगे। जो स्थिति पिछले काल में अथव की बेगमों की हुई वही स्थिति तब मेरी थी। मेरा राजकुल अपना न था, मगध के शालन का मैं केन्द्र न थी, मैं केवल उनके लोग और तृष्णा को दुनाने वाली यह उदासीन साधन थी जिसका अपनी कुछ प्रतिक्रिया नहीं होती अपनी कुछ इच्छा नहीं होती। फिर भी मेरी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा अभी बही थी जो लदियों बनी रही और मगध बार बार मुझे अपनी विजय के प्रतीक के रूप में दुनिया के सामने रखता रहा।

एक दिन मगध का वह राजकुल भी न रहा। मन्त्री शिषुनाग ने हर्यंको का वह राजकुल समाप्त कर उसकी गही पर अधिकार कर लिया। वह फिर राजगृह के प्रांताद में प्रतिष्ठित हुआ और मैं उसके शासन की नगरी हुई। परन्तु उसने मुझ पर अपनी पकड़ मजबूत रखने के लिये मेरा एक शासक नियत किया जो मेरे ही प्राप्तादों में रहने लगा। इससे मेरी राजनीतिक स्थिति में कुछ अन्तर पड़ा, और मुझे कुछ प्रतिष्ठा मिली। इस शीघ्र मैं अपने पुरानी सांस्कृतिक मजिलें संभालती रही थी। अनेक शैव तन्त्रों का मैं कथा प्रणयन कर चुकी थी, अनेक नये तन्त्रों का उद्घाटन मैंने अब किया।

मगध की राजनीति में सहसा एक कान्ति हुई और यह कान्ति साधारण न थी। शेषनागों के राजकुल का अन्त कर महानन्दी की रानी का नारिक पुत्र महापद्मनन्द राजा को मार मगध की गही पर थैठ गया और उसने अपना तर्वंकानात्क शूद्र राज्य वहाँ प्रतिष्ठित किया। प्राचीन मगध की म्लेच्छ परम्परा के अनुकूल ही यह कान्ति थी और मुझे स्वयं डर लगा कि इस नई वस्तु स्थिति ने मेरी कथा गति होगी क्योंकि मेरे विचार अब सर्वथा बदल चुके थे। अब मैं आर्य राजकुलों की संगिनी थी। मुझे निम्नवर्णियों का शासन प्रिय या परन्तु जो होना था वह हो कर ही रहा और महापद्मनन्द और उसके शूद्र वेटों का अधिकार पाटलिपुत्र के साथ ही मेरे नगर पर भी हो गया, सौ वधों का यह नया जीवन मैंने फिर किसी प्रकार काटा। आज्ञाण और चत्रियों ने मुझे आदर और उम्मान दिया था। मालण पाटलिपुत्र के दरदार में अब भी प्रवृत्त थे। पाणिनी और चाचक्य दूर से वहाँ आ चुके थे और काल्याधन फिर भी वहाँ अपनी 'हृति' का उद्योग करता था। परन्तु चत्रियों ने अपना कुगा इस्त मेरे भूतक से हटा लिया यद्यपि उनकी कुगा में अब विशेष शक्ति न रह गई थी।

परन्तु यह कान्ति भी मगध में विरहपाई न हो तकी और शीघ्र चालक्य राज्य की सहायता से चत्रिय चन्द्रगुप्त मीर्य ने नन्दों का नाश कर मगध का सिंहासन छीन लिया और उसने अपने नये साम्राज्य का निर्माण शुरू कर दिया। साम्राज्य बढ़ चला। जब दूर की तक्ष-शिला और उत्तरजिनी तक उसको शासन केन्द्र हुई तब मेरी क्या बात थी। मैं तो बेटे भी सांस्कृतिक दृष्टि से पर्याप्त पूज्य थीं यद्यपि मेरे भी अनेक नागरिक दीर्घ काल से तक्षशिला के विद्यापीठ में अध्ययन करते रहे थे। चालक्य के प्रभाव से मेरी शक्ति किर भी बढ़ चली और मेरा गौरव भारत के नगरों ने असाधारण हो गया। अनेक बार व्यस्त रह कर भी स्वयं चालक्य ने मेरे तट पर हुबकी लगाई। दूर दूर के भक्त अब विरोधकर एक साम्राज्य के नागरिक हो जाने के द्वारण मेरी नगरी में आने लगे। सिक्कंदर जा सेनापति सेल्यूक्स जब दूर की सीरिया से हिन्दुकुश की ओर बढ़ा तब एक बार मैं अदृश्य डरी कि कही मेरा हाल भी वही न हो जो पंजाब का कभी हुआ था पर बह विपत्ति केवल टल ही नहीं गई पर मगध के साम्राज्य को हिन्दुकुश के प्रान्त और मिल गए। मेरे कह स्तूप पूर्ववत् गंगा तट पर लड़े रहे। मेरे विशाली के गण सर्वंत्र मेरी नगरी में नाचते रहे। बीरबल और काल मैरब दोनों मेरी रथों में सज्जद थे।

परन्तु बहुत काल नेरे यूर लड़े न रह सके और यदि ऐसहें रहे भी तो नितान्त अकेले। उनकी अर्गंजा में बहुत दिनों तक किर बलि पशु के बैधने का सौनाम्य न हुआ क्योंकि चन्द्रगुप्त के पोते अशोक ने जो बुद्ध, संघ और धर्म की शरण ली तो सारे साम्राज्य से उसने बीब-हस्त्या उठा दी। उसी के लाय मेरी पशु-बलि भी बन्द हो गई और मेरी यशकियाँ तुख काल के लिए सर्वथा लुप्त हो गईं।

ईसा पूर्व दूसरी सदी के पुष्ट्यमित्र गुण नामक भारद्वाज गोत्रीय

ब्राह्मण ने उस ब्रह्मदेवी कुल का अन्त कर दिया । ब्राह्मण पुरोहित और राजन्य यजमान का संघर्ष पुराना था । जननेजय-नुरकाशपैद से भी पुराना और वह अब नये रूप में जीवित हो उठा था । पुष्पमित्र शुग अन्तिम मौर्य दृढ़दय का केवल पुरोहित हो नहीं, उसका लेनापति भी था और उसने अपनी सेना के सामने ही उसको मार डाला । इस ब्राह्मण पद्मन भी मेधा महाभाष्यकार पतलालि था जो पाणिनी चाणक्य की ही 'भौति बाहर से पाटलिपुत्र में आ गया था । पुष्पमित्र ने दो दो अश्वमेष कर बहुत काल से लुत अश्वमेषों की परम्परा लौटाई, ब्राह्मण धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया और मेरे गंगा तट पर किर विधि कियाओं की परम्परा जगी । उस ब्राह्मण दृपति को योद्धों और धीरों दोनों से संघर्ष करना पड़ा परन्तु उसने दोनों को तर्बया कुचल डाला । दिमिद्रियत ने कभी उसकी तरुणावस्था में पाटलिपुत्र को उड़ाड़ डाला था, ब्राह्मण गजा ने उसके दानाद मेनामदर का वध कर और धीरों को सिन्धु नद पार भगा उसका बदला लिया । और जब जलन्धर तक उसने सारे बौद्ध-विहार जला डाले तब मैं प्रसन्नता से विरक उठी । अर्णोक ने कभी मेरे यज्ञ बन्द कर दिये थे अब मुझे उसका दरन था ।

मुझे ब्राह्मण की इस कूरता के विवर इतना कुछ नहीं कहना है जितना योद्धों की उस देशद्रोहिता के विवर जो इन विहारों में पनगती थी और जहाँ ब्राह्मण राज्य और धर्म के विवर निरन्तर पद्मन रखे जाते थे । मुझे युद्ध बौद्ध धर्म अधिय नहीं बहिक मैं तो युद्ध विद्वांही आज्ञायण से प्रसन्न भी हुई थी । इतना सख्याई, इतना पावन, इतना दयावान प्राणी मेरी पुर्खी पर कभी न चला । मुझे इस बात का गवे है कि उसकी पहली आवाज मैंने ही सुनी । मेरी नगरी के बाहर उसर-पूर्व की ओर जो हिस्सों का पना जंगल था वहाँ प्राचीन काल से दाखु

निवास करते आए थे : उसे तप की भाषा में मृगदाव कहते थे—हिरनों का जंगल । उसी मृगदाव में तथागत बुद्ध की पहली आवाज गँजी । उबोला में सम्यक सन्वेदि प्राप्त कर तथागत ने सोचा, भला कौन उचित व्यक्ति है जिसे मैं अपना वह पुनीत अक्षय शान पहले सुनाऊँ । गुरुओं की याद आई, आलारकालाम की, बद्रक रामपुत्र की, पर दोनों मर जुके थे । किर उन पंच भद्रीय द्वाष्टशों की याद आई जिन्होंने गौतम को पेटू कर कर तब छोड़ दिया था । जब तप को निरर्थक जान उन्होंने आदार लेना निश्चित कर लिया था । नूँकि उन्होंने गौतम को छोड़ दिया था बुद्ध ने निश्चित किया कि उनको ही वह अपने शान का पहला सन्देश सुनाऊँगे । और वे ने मृगदाव की ओर सदसा चल पड़े थे । मिथु को अपनी ओर आते देख, पंच भद्रीया ने सब किया कि इम मिथु का कमरड़लु न लेंगे, उसे आसन न देंगे, जल न देंगे, परन्तु जब मिथु पात पहुँचा और उसका तेजस्वी मुखमण्डल उन्होंने देखा तभ मेरिजित हो गए । उन्होंने उसका कमरड़लु लिया, उसे आसन दिया, जल दिया । और तभी शाक्य सिंह की बाणी दहाड़ उठी—“मिक्कुओं, मार्ग दो थे, एक अतिविलास का, दूसरा अति तप का । दोनों स्वाध्य हैं । एक लीसरा तथागत का देखा है, सम्यम मार्ग—मणिकर्म पटिपदा (मध्य प्रतिपदा) न अति विलास का न अति तप का—यही ग्रहण करने थोग है ।” यही तथागत का पहला धर्मचक्र-प्रबर्तन था जो उन्होंने सारनाथ में किया । उसी मृगदाव की पर्णकुटी में उन्होंने डेग ढाला । उसी का नाम कालान्तर में मूलगन्ध कुटी करके विस्थापित हुआ । और धर्म की गन्ध उसी कुटी के मूल से दिग्नन्द में फैली थी ।

उसी सारनाथ में, सदियों बाद थोड़े धर्म में दीदित होकर अशोक ने धर्म-चक्र-प्रबर्तन के स्मारक स्वरूप ‘धर्म राजिक’ नामक महा स्तूप बनवाया, जहाँ उसके पात पर ही गुप्त काल में ‘धर्मार्थ’ (धर्मेल) स्तूप भी अपने

विशाल कलेशर के साथ लहा हुआ । अर्णोक ने उस अपनी धर्म यात्रा में मेरा और मृगदाव का गौरव जाना । उसने मिर अपने उपदेश भी वहाँ अपना स्तम्भ लहा कर, उस पर लुटया । संप्रभेदकों के विशद जो उसने प्रायशिंचत अथवा दरह नियत किया, वह उस स्तम्भ पर लोदा गया । वह दर्शण सदृश धर्मिंग वाला विशाल स्तम्भ सदियों लहा रहा । थोड़ धर्म और अर्णोक की कीर्ति का स्मारक । उसी का सिंह मत्तक आज भारतीय राष्ट्र का मुद्राचिन्ह है ।

इति कारण मुझे कभी शुद्ध थोड़ धर्म से घृणा नहीं हो सकती थी । परन्तु जब इसके अनुयायी अपने विद्यार्थी में पढ़ून्च कर, राजनीति में भी दाखल देने लगे और इस प्रकार जब उन्होंने शुद्ध विद्रोही धर्म तथ्य को बद्नाम कर दिया तब निश्चय में इच्छर से विरक्त हो गई और इस आशा में वित्तज्ञी और देखती रही कि कोई समान धर्म लहा होकर उनके इस अनाचार को बन्द कर दे । पूर्वी वित्तज्ञ पर पाय ही तथ समान धर्म वह पुण्यमित्र उद्दिन हुआ जिसने मेरी वह कामना किंद कर दी ।

शुगों के पिछ्के वंशाश्र कमजोर हुए और उन्होंने अपनी कृग पाट-लिपुत्र से हटा कर, अयोध्या और विशेष कर विदिशा पर बढ़ाई । मुझे उनसे कोई माहन या, निवा इसके कि वे उस महान् पुण्यमित्र के वंशाश्र हैं, जिसने सेना के साथ निरस्तर समर्थकों के कारण अपने को लहा सेनापति कहा खड़ा कभी नहीं । शुगों के बाद रुद्र आए जो नितान्त दुर्घट ये और उनके साथ मेरा और्शर्य इवीलिए कुछ काल कायम रह सका कि वे ब्राह्मण ये और मेरी विविन्कियाओं को अनिमान के साथ देखते ये । उनके दुर्घट हाथों से ददिश के आन्ध्र सांतवाहनों ने कृष्णा के कछार से उठ कर गंगा के इस कोठ पर अधिकार कर राज-दरह छीन लिया । वे भी ब्राह्मण ये और उन्होंने भी मेरे यश कर्मको

सराहा और बढ़ाया। परन्तु आश्रि सिमुक का यह एक राजनीतिक धारा मात्र था और वह न तो मुक्त पर दीर्घ कालिक अधिकार ही रख सका और न उस भयानक आक्रमण से नेरी रखा ही कर सका, जिसका नेता शक्ति तेनापांति अम्लात था। पुष्पनिंज शुंग के समय आचार पूत जिस मनुस्मृति की रचना हुई थी, उसके कुछ अध्याय मेरी नगरी में भी लिखे गए थे। उनको मैं संतार की अद्भुत विज्ञान-पुस्तकों में मानती थी। सहसा शक्ति के आक्रमण ने उसे छिन-निच कर दिया। उसके सामाजिक स्तर बिल्कुल गए, उसके आचार-शील की प्रनिधियाँ दूट गईं, एक नई दुनिया अथ मुझे ढककर सदी हुई जिसमें ब्राह्मण अग्नि और लोहा वर-सत्ता रहा। कुछ काल बाद जब उसके शादल छैटे, तब मैने देखा कि मेरे सामाजिक आचार बन्धन सहसा दूट गए थे। राजाश्रीं और उनके प्रान्तों के साथ ही मेरे गुरु और पुजारी भी धूलि में पड़े थे और उनके सीने पर शहद सवार थे, शक्ति की ही नाँति उत्तराशय वी उस धरा पर।

परन्तु शीघ्र स्थिति बदली। ब्राह्मण ब्राह्मण समाज के नेता रहते आए थे। चक और कुचक किस प्रकार समाज में चलाए जाते हैं इसका जितना जान उन्हें था, उतना किसी को न था। और किर एक बार उन्होंने रमाज के साथ ही धरा पर भी अधिकार किया। उसी विदिशा के आस-पास से बाकाटक ब्राह्मण भी उटे जहाँ से कभी शुंगों का उदय हुआ था और उन्होंने मध्य देश पर भी अपनी शक्ति की छाया डाली यद्यपि वह चिरत्थायी न रही। भारशिव नागों और बाद में प्रबल गुरुओं तक ने उनसे विवाह संबंध किए। याकाटकों ने मेरी महिमा और चढ़ाई।

परन्तु मेरे गौरव का गगनचुम्बी उदय तो पद्मायती के भारशिव नागों के साथ हुआ। 'भारशिव' नाग इसलिए कहे जाते थे कि वे शिव का भार लिंग के रूप में अपनी पीठ पर बहन करते थे। उनके उदय

के कुछ काल पहले शक अम्लोत के अग्रिकार्ड के कुछ ही बाद उत्तर भारत में पेशावर से पाटलिपुत्र तक कनिष्ठ कुषाणों का साम्राज्य पैल गया था । मैं भी तब विदेशी कुषाणों के अधिकार में आ गई थी और यद्यपि धर्म के विचार से कनिष्ठ दीद था, उसने मुझको भी अपना राजनीतिक केन्द्र बनाया । मेरे ही केन्द्र से उसका शासक बनस्तर उसके साम्राज्य के पूर्वी प्रान्तों पर शासन करता था । कुषाणों के पिछले शासन में तो उनके राजा ग्रायः सर्वया हिन्दु हो गए । मेरे त्रिशूली को उन्हें विशेष पूजा की वधियि उनके विविध धर्मों के अनुयायी होने के कारण त्रिशूली ग्रायः असनुष्टु हो उठते थे । पिछले कुषाण राजा वासुदेव ने तो दैत्यवधि धर्म अंगीकार कर, मेरे त्रिशूली की कुछ कम अवमानना न की; परन्तु शीघ्र ही मुझे उनके अधिकार से मुक्त कर नागों ने त्रिशूली को देवताओं में फिर अप्रणीति का स्थान दिया, महादेव कह कर उन्हें पुकारा । भारतीय नागों ने देश में राष्ट्रीयता की पहली आवाज उठाई । यह देश भारतीयों का है, विदेशियों को उस पर अधिकार करने का कोई हक नहीं और उनको वे भारत से बाहर कर ही दम लेंगे । यह उनकी प्रतिक्रिया मुझे बहुत भाई और बार बार उसकी गँग भेरे कानों में अमृत चरणाने लगी । गंगा की लहरें भी उत्सुक हो, उठ-उठ, तब उनके बढ़ते हुए उत्कर्ष को देख अभिनृत होती । नागों ने अपनी प्रतिक्रिया पूरी की और मुझे उन्हें वह गोरख प्रशान किया, जो कभी किती नगर को प्राप्त न था । उत्सवती के तट पर कभी आयों ने यक्ष किए थे, परन्तु कवि का वह तट वीरान् हो चुका था । और उस काल के आयों की ही तब क्या हकीकत थी । एक एक माँव का मुखिया राजा कहलाता था—राजा जिसकी नागों के माधविक तड़ दोने की हकीकत न थी । अब मेरे गंगा तट पर नागों ने अश्वमेषों की परम्परा भौंध दी । शार-बार जे अश्वमेष करते, बार-बार उनके अस्तित्व निर्गंत अश्व कुषाणों की अधिकृत भूमि पर दौड़ पड़ता ।

बार-बार उसे लौटा कर उसके स्वामी मेरे तट पर भागीरथी में 'अश्वभृप' स्थान करते। इस प्रकार उन्होंने मेरे उस तट पर दस अश्वमेघ किए जिसको संज्ञा परिणामस्वरूप 'दशाश्वमेघ' हुई और जो मेरे घाटों में सब से पुनीत आज तक माना जाता है। नागों ने जिस शक्ति की प्रतिष्ठा की वह स्वर्ण तो अधिक दिनों न टिक सकी, परन्तु उसने मध्यदेश में वह भूमि निश्चय प्रस्तुत कर दी, जिसमें राम चाद गुतों के साम्राज्य का पौथा लगा और देखते ही देखते विशाल बट की भाँति उसने देश पर अपनी छाया डाली।

गुतों का काल भारत का राष्ट्रयुग कहा जाता है। निःसन्देह यह भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था, यदि हम सम्भान्त वर्गों और अमिकात कुलों को ही तत्र का भारत मानें। मेरे इतिहासकारों ने इसी इष्टिकोण से उस स्वर्ण युग कहा है। जब साहित्य, नृगीत, कला, राजनीति सभी का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। परन्तु यदि कोई सुझास पूछे और मुझे सच्चाई का उद्घाटन करने का समुचित अवसर दे तो मैं अपने उन मलिन अभ्यक्तार मुक्त गलियों की ओर चुपचाप संकेत कर दूँगी जिसमें नंरे गंधेले दरिद्र निष्ठकर्णीय नागरिक निवास करते हैं—यास्तव में मेरी गलियों में नहीं, मेरी नगरी से बाहर प्राचीरों के उस पार शमशान के निकट जिनके लिए इस काल में होने वाले मानव धर्मशास्त्र के नए संस्करण में सबणों को छाया हूरी भी गर्हित समझी और जिस जपन्य पाप के लिए उसने प्राप्तिक्रिय के ब्यारे ब्रौंघे। मनुष्य अरने से ही मनुष्य से जिस मात्रा के उत्त काल भव भानने लगा, धूषा करने लगा, उत्तना सम्भवतः न कभी पहले हुआ था न पीछे। और जिस मात्रा में गुतों की भागवत धर्म में प्रति भद्रा बढ़ती गई, जिस मात्रा में वे ब्राह्मण के संरक्षक बनते गए, इसी मात्रा में मानवता के प्रति यह धूषा बढ़ती गई, यह भव विकाल होता गया। उन दक्षीय परिवारों के अन्त्यज जप कभी मेरी नगरी

में आना चाहते, पहले उन्हें सूर्योदय और सूर्यास्त का विचार कर लेना पड़ता बयोंकि वे दिन में ही, उसकी दोनों संख्याओं के बीच मेरे द्वार में प्रविष्ट हो जाते थे। रात में उनको मेरे नगर में ठहरने का अधिकार न था और दिन में भी जब ये दोनों प्रयोग करते, काष्ठ-दण्ड बजाते हुए वे कई एक साथ मेरी सड़कों पर चलते, जिससे शुद्ध पुनीत मेरे स्वर्ण युगीय नागरिक उनके अपावन स्वर्ण से दूषित न हो जायें। इतिहासकार में गग यह उद्यार फालान के दृष्टान्त में पड़ता है और उसकी सच्चाई में सन्देह करता है, परन्तु कैसे वह मेरे बदन में सन्देह कर सकता है, जब मैंने स्वयं मानवता के विरुद्ध उस उपचार को अपनी ही धरा पर घटते देखा।

उनकी नी हृष्टा होती, मेरे उन अनागे नागरिकों की भी, जिनके पूर्वजों ने पहले-वहल मेरो बहती ही नींव डाली थी, कि वे उब विशङ्गी के दर्शन कर पाते, जिनके श्रीदार्य और भोलेपन का देवत्व, स्वयं उन्होंने ही कभी निरजा था। हाँ, शिव आदों के नहीं, उन्होंने मलिन-वसन, वृणित-अपावन कृष्णकाय मेरे प्राचीनतम नागरिकों के ये, जिन्हें आदों ने उनकी नगरी, उनकी समृद्धि, उनके सर्वत्व के साथ छोन लिया था और उस देवता को जिसको उन्होंने ही सिरजा था, अब देखने का उन्होंने को अधिकार न था। ऐने शरि से दूसरों को समृद्धि छोनते साहसिकों को देखा है, परन्तु अपने विजितों का देवता छोनने का यह पहला ही दृश्य था।

चन्द्रगुप्त प्रगृह ने जिस गुत राज्य को छाड़ा किया, जिस गुप्त-साम्राज्य का समुद्रगुप्त ने निर्माण किया, जिसको मालवा और परिचमी समुद्र तट की समृद्धि दे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने यशस्वी बनाया, वही साम्राज्य कुमारगुप्त के विलास से विलर चला। उसकी दुर्जल काया पर जब वीर्यवान हूँडों की जोड़े रहीं, तब यह लड़खड़ा कर गिर पड़ा।

कुमारगुप्त के तपशील पुत्र स्कन्दगुप्त ने उसे सहारा देने की बड़ी कोशिश की, अनेक प्रकार से तप, संयम और पराक्रम से, इस तरह ने हूणों का प्रतिकार किया, परन्तु सामन्त संघ को नीब पर खड़ी यह विशाल छाप्तालिका निर ही पड़ी, रुक न सकी। कुछ काल मैं, स्कन्दगुप्त का यह संघर्ष देखती रही। एक बार विजयी हो स्कन्दगुप्त ने जब बेरे पास ही सैद्धपुर भीती की प्राचीन भूमि पर जब आपनी विजय का स्मारक स्तम्भ खड़ा किया, तब मैंने गर्व के साथ उस तरण की ओर निहारा था। स्तम्भ पर उसने खुदवाया—हूणेरर्यस्य तमागतस्य समरे दीम्या धरा कमिता। भीमावर्त करस्य..... हूणों के साथ समर में उसकी भुजाओं के टकरा जाने से भयानक आवर्त मन गया। कितनी बड़ी थी यह प्रशस्ति परन्तु यदि कहीं इसका अर्थ तत्कालिक भारतीय राजनीति में टिकाऊ हो पाता। साम्राज्य का मूर्ख लुटीला कुमारगुप्त अपने आत्म सेवन से विद्वित हो राजनीति से कद का निकृत हो चुका था और उसके अंगराग, हेनक तथा प्रशाधन के अन्य दब्बों ने, उसे सर्वथा खेल कर दिया था और उसका साम्राज्य जब बर्दर विदेशियों की संहारक चोटों से मिर चला तब कोई शक्ति उसे न रोक सकती थी। आखत आत तो यह है कि उस पर विदेशी आक्रमण चाहे होते भा न होते; उसका अपने आन्तरिक वैषम्य से ही दूक-दूक हो जाना स्वाभाविक था।

हूण आए और उत्तरायण को उन्होंने वैसे ही आक्रान्त कर लिया ऐसे कभी शकों ने कर लिया था। परन्तु उनको निकाल कर 'हूणांय' बनने का किसी शकारि को बनने की कामना न हुई और इस शकारिता का भी राज जो मुझे मालूम है और किसी को मालूम नहीं। शकारि का अर्थ लोगों ने शकों को भारतीय समाजि तथा भारत-भूमि से निकाल देने का अर्थ लगाया है जो सर्वथा गलत है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने और उनसे पहले नागों ने ही शकों-कुशालों की शक्ति तंड दी थी, पर

वह शक्ति राजनीतिक ही थी, सामाजिक कर्तव्य नहीं। रामाज में उनकी पैठ हो गई थी और खूब ही। रामाज का रोम-रोम अब उनके स्वर्ग से पुलकित हो। रहा या परन्तु उनसे कही बदकर हृथियों ने उसके भीतर प्रवेश पाया। उनकी शक्ति इतनी प्रबल थी, उनकी पकड़ इस जगतीन पर इतनी गहरी हुई कि इमारे नेताओं को उन्हें अंगीकार करना ही पड़ा। उनके लिए धर्म गुरुओं ने एक सर्वया नवा विधान किया। आजू की ओटी पर अग्रिम्बुद्ध खुदा और उसमें से चार प्राकृत पुरुष मिक्कलने की कल्पना हुई। ये चार पुरुष बुशीबिशिष्ट ने हिन्दू समाज को अव दिए, जिनकी मन्त्रणा से रघुकुल ने कभी भूमि से अपने चार विधाता राम, भरत, लक्ष्मण और शकुन पाए थे। ये चार पुरुष प्रतिहारों (परिहारों) परमारों, चालुक्यों और चाहमानों (चौहानों) के थे। परमार जिनके मुंज और भांज ने भारतीय साहित्य का मण्डन किया उतने ही हृण थे कज्जोज को समृद्धि और गौरव देने वाले प्रतिहार जिन्होंने गुबर। कभी ईश्वरदत्त के उन आनीरों ने ब्राह्मण सात बाईंनों और विदेशी शकों के हाथ से शक्ति छोन ली थी, जिन्होंने अपने को पीछे यादव कहा और यदुकुल से अपना नाता छोड़ा, परन्तु उनके वंशधर अहीर, जाट और गूजर जिनमें दूसरे रक्त भी प्रवाहित हो रहे थे, अब नए मिरे से इस समाज में प्रविष्ट हुए और यदवि प्रविष्ट हुए फिर भी अपने अवयवों, तीर-तरीकों और व्यक्तित्व से साफ पहिचाने जा सकते हैं। इतना बरुर है कि वे ही पीछे अपने पराक्रम से राजपूती आन के लिए प्रसिद्ध हुए और हिन्दूत्व की उन्होंने ही नाक रखी।

गुप्तों के बाद मगध में जो एक कमज़ोर गुप्त राजकुल नए रूप से खड़ा हुआ उसकी ओर कज्जोज के मौखियों की परत्तर चोटें चलती रही और मैं परिणामस्वरूप कभी एक की, कभी दूसरे की होती रही। मालव गुप्तों ने जब मौखियों का अन्त कर दिया तब हर्ष ने यानेश्वर से

आकर कब्जीज की गही लंभाली और उसी के नए साम्राज्य में अन्य नगरों की ही भौंति सुके भी प्रवेश मिला । परन्तु मेरी कानित अथ तक मलिन पहुँ गई थी । मेरी महिमा सर्वथा नष्ट तो न हो गई थी, पर उस पर मोटा परदा निश्चय पहुँ गया था । ऐसा भी नहीं कि बीद होने के कारण हर्ष प्राचीन तीवों को भूल गया हो क्योंकि आने पंच वर्षीय मोहू परिषद के छैः छैः अधिवेशन आखिर उसने प्रवाग में त्रिवेशी के संगम पर किए ही । जो भी हो, मेरा प्रवाप कुछ काल के लिए ठन्डा पहुँ गया था और अगर मैं किर उठी तो हर्ष के बाद प्रतिष्ठित होने वाले उन गुर्जर प्रतिशारों के शासन में ही जो अभारतीय होकर भी निष्ठावान थे । प्रतिशारों और पालों में जो संघर्ष चला, उसमें सुके भी अपना प्रभु बार-बार छलना पढ़ा । एक बार तो दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश ने भी धर्मराज को परास्त कर, मेरे बनपद को लूटा । कालान्तर में मुझ पर त्रिपुरी का भी अधिकार हुआ और दूर की उम नवीना ने मुझ पर कुछ कम प्रहार न किए । माना कि उसके कलनुरियों ने मेरा गया हुआ गौरव कुछ अंश तक मुझे लीटाया परन्तु मुझ पर त्रिपुरी का भूकुटि भंग लदा अवरता रहा । उसके स्वामी गागेयदेव और कर्ण दोनों ने, मुझ पर अपना स्वत्व रखा । उन्हीं दिनों जब गागेयदेव का शासन मेरे बनपद पर चल रहा था, मुझे पहले पहल इस्लामों की चोट सहनी पड़ी । अहमद नियतिगीन सुवृक्तगीन के बेटे उन महमूद गङ्गनदी का पंजाब का शासक था जिसने शाहियों का नाश कर कब्जीज तक को जीत लिया था और जितकी चोट से सोमनाथ, मथुरा और कब्जीज के देवता चूर्णपूर हो गए थे । वह महमूद तो कब्जीज से ही लौट गया था पर उसका शासक यह नियतिगीन सहसा मंजिल पर मंजिल तय करता मेरे द्वार पर आ लड़ा हुआ । दूर की त्रिपुरी के राजा गागेयदेव की सेनाएँ मेरी रक्षा न करती । मैं नितान्त अरक्षित थी यथां मेरे प्राचीरों

के भीतर नागरिकों के अतिरिक्त केवल पुजारी ही इतने में कि यदि वे साधारणतः अफगानों की उत्तर सेना पर गिर पड़ते तो वह कुचल जाती ; परन्तु उनकी ओर रुख करना तो दूर रहा लोग तितरन्तिर हो जिधर ही लोग समाई उधर ही भाग चले । रुदके धीरान हो गई । जिन्होने तेवर मुद्दे, उनको तलवार के बाद उतार दिया गया और मेरी गलियों में रक्ष उगल दिया । हाँ, यह लूट भट्ट समाप्त हो गई और जब तक मेरे जनपद के प्रामीण रूप, कुण्ठित प्रिश्वली की रक्षा के लिए मेरे छुले ढारों में बुझे तब तक नियाहितगीन आपने सवारों के साथ अनन्त धन लिए, नी दो ग्यारह हो गया । यह यकृत दिनों बाद मेरी पहली लूट थी और इस्लाम के भर्टे के बीचे चलने वाली सेनाओं की पहली चोट थी ।

त्रिपुरी के तेजस्वी गणेशदेव और उज्जयिनी के थशस्वी भोजदेव दोनों जीवित थे । दोनों ने आपने पराक्रम से प्रशंसित गौवाई थी, और भोज का रुद्धनाश कर देने वाले लक्ष्मीकर्ण और चालुक्य भीम का भी दशदशा कुछ कम न हुआ था, जब मैंने इस प्रकार आपमान सहा । भीम तो लैर मेरी रक्षा क्या कर सकता था, जो स्वयं महमूद के आगे पर आपने सांमनाथ और अनिलबाद को अरकिव छोड़ भाग गया था, फिर भी मुझे आशा थी कलजुरी नरेश से, परन्तु वह भी मुझे बचा न सका ।

हाँ, कुछ ही काल बाद एक गाहड़बाल सरदार ने निश्चय मुझे खाति दी और मेरी सर्वथा रक्षा की । वह चम्द्रदेव था, जिसने प्रहिं-हारों की गही पर बैठ, कब्जीज में आपने नये राजकुल की प्रतिष्ठा की—गाहड़बाल राजकुल की । उत्के बेटे गोविन्दचन्द्र ने तो पूर्व में इतने प्रान्त जीते कि उनके शासन के लिए मुझको ही उसे दूसरी राजधानी बनानी पड़ी । नियाहितगीन के बाद कुछ और अफगान सरदारों ने

भी मुझे लूटने के मनस्के माँधे । वास्तव में महमूद गज़नी ने अपनी लूट से अपने देशाभियों में जो कानून बलवती कर दी थी, उसे चरितार्थ करने को अनेक साहसिक भेरी और चल पड़े थे यद्यपि उनमें से कोई इस काल मुझ तक पहुँच न रुका । और उनसे जो भेरी रक्षा हुई, वह कब्ज़ोज के भेरे गाहड़बाल हवातियों के पराक्रम के कारण ही । मतह तुतोय के भेजे हाजिब तुगातिग ने जब भेरी और रख किया तब उसे परास्त कर मुशराज गोविन्दचन्द्र ने उसकी वही दशा की जो कभी महमूद के भाजे सद्यद सालार के भेजे कब्ज़ा की हुई थी जो कुछ ही काल पहले अयोध्या को राह भेरी और बढ़ा था । गोविन्दचन्द्र बड़ा पराक्रमी राजा निकला और उसने दिल्ली से गया तक अपने अधिकार में कर लिया ।

विजयचन्द्र ने भी साम्राज्य की सीमाएँ पूर्ववत् रखी यद्यपि दिल्ली उसके हाथ से निकल गई । उसके शालन काल में भी इस्लाम ने भेरी और एक बार रख किया और जब गज़नी से निकाले जाने पर, अमीर खुसरो पंजाब का लाँच कब्ज़ोज की ओर बढ़ा, तब विजयचन्द्र ने उसके बोडों की बाग रोक दी । परन्तु गाहड़बाली में भी कमज़ोरी छुन करने लगी । पारस्परिक फूट और व्यक्तिह, हिन्दू राज्यों में शोषण इतनी बढ़ी कि चन्देल, चौहान और गाहड़बाल एक साथ जूँ मरे और बारहवीं सदी के अन्त में, जब गोर का मुहम्मद शाहाबुद्दीन हिन्दुस्तान पर दूटा तब पानीपत की एक रुकाबट के लिया, फिर उसे कहीं और बाधा न पड़ी । यह निरन्तर बढ़ता चला आया । जयचन्द्र द्वय यद्यपि बीर या और बुदामे में उसने चन्दावर के मैदान में अपने बलिदान से नहीं का जल लाल कर दिया फिर भी उसके बीरों का पराक्रम नैपूर्ण चत्रित के महाकवि श्री हर्ष ने अपने रस से निरस्त कर दिया था । स्तरेढ़न स्तरेढ़ साय का रचयिता यह तार्किक जप कभी तक़ की अपनी

हात्रिम दुनिया से हटता तो सदा अंगार की काल्पनिक भूमि पर ही जा उतरता और गाहड़वाल शक्ति का वही हाल हुआ जो कभी गुप्तों का हुआ था । मुहम्मद गोरी, कुद्रुवउद्दीन ऐचक की हराक्षल लिए मेरी और बड़ा और उसने मेरे द्वारों, प्राचीरों, शिखरों और कनक बांगों को तोड़ दिया । नगर और जनपद में कोहराम मच गया । काशी करवट लेने वाले मेरे भक्तों में से एक सामने न आया और मोहम्मद ने मुझे भरपूर लूटा । अनन्त धन चिरकाल से मेरे मन्दिरों और ऋद्ध भवनों से संचित पड़ा था । अतीम रत्नराशि वाणिज्य और भक्ति की राह मेरे नगर में धारा सार गिर कर बनी थी, अब यह सारी ऊँटों पर लद चली और वह मेरी विभूति लाद कर आता हुआ, ऊँटों का कारबॉ आज भी गेरी स्मृति का आकाशचुम्बी आलोक स्तम्भ है ।

मुहम्मद तो स्टोट गया, यद्यपि मेरा सारा जनपद अब उस दिल्ली को सलतनत के आधीन हुआ जिसके दल्ल पर दुकों का गुलाम राजकुल बैठ गुका था; परन्तु उसके लिए मुझे कुछ लानी नहीं। यजनीति में धरा का अप्रतिवाद यातायात स्वाभाविक है। मैं उस विनवन की पद्धतिलिनी चाहै न होऊँ, उसका परिणाम मुझे निस्तर भोगना बड़ा है। परन्तु स्तव्य जो मैं हूँ तो इस बात पर कि अपने अठारह रथपतों के साथ इतने बड़े शत्रु राष्ट्र को रींदता हुआ, बल्तियार किस तरह मेरे पास से ही निकल गया। किस तरह उसने उस सेनांशीय रहनगहलेन को अपने प्रापाद के पिछले द्वार से भागने पर मजबूर किया, जिसने अपनी भुक्ति प्रशस्ति में प्रशाग और काशी में विजय-स्तम्भ स्थापित करने की बात खुदयाई थी। उसकी विलासिता की हदें न स्वयं उसने बरन् उस जगदेव ने भी तोड़ दी थीं जो अपने उत्तर गोत्तमोविन्द के से संस्कृत साहित्य के अप्रतिम काल्प में, अपने देवता तक को नंगा करने से न चूका था ।

मुसलमानी शासन के आरम्भ के दिन मेरे कठिन थे तो क्योंकि न तो शासकों को अपनी लूट से अभिवृति थी, न मुक्के ही निरन्तर लुटते रहने की आदत पह गई थी। दोनों में से कोई भी एक रिपत सिद्ध हो जाने तक नेरी आकुलता मिट जाती, परन्तु चैकि रिपति डॉवाडोल थी, मेरा चित भी आकुल ही रहने लगा। ऐवक के दिल्ली में प्रतिष्ठित हो जाने पर निश्चय हुक्मत में कुछ रिपता आई, परन्तु विजेता की जो समस्याएँ होती हैं, वही समस्याएँ ऐवक या उसके उत्तराधिकारियों की थीं। मंगालों के निरन्तर धावे उत्तर-पश्चिम की ओर होते रहते थे। उनसे दिल्ली की रक्षा करनी स्वयं एक बड़ी जात थी। पर उसी कारण इधर पूरब में लीना-भरदी भी खूप होती रही। जो मुसलमान जरदार इधर शातक बनाकर भेजा जाता, वही मनमाने टंग से मुक्के लूसने की कोशिश करता।

बलबन के शासन काल में दंगाल ने स्वतंत्रता प्राप्ति कर दी और वहाँ के प्रान्तीय शातक तुगरिल ने अपने को चाटशाद एलान कर दिया, अपने नाम के लिके दलवा लिए। बलबन जल-भुन गया, परन्तु उसने दां हो चार जो अपनी सेना भेजी तो दोनों चार उसे अपनी मुँह की खानों पही, तब वह खुद सेना लिए दंगाल की ओर चला। असोध्या की ओर से बढ़ता हुआ, मेरी राह हो, वह दंगाल गया और उसकी सख्ती तथा कूरता का जो च्यान मैं सुन चुकी थी, उससे उसके आगमन से मैं नितान्त शंकित हो उठी। पर भाग्य अच्छे थे, बदतबीजी ने उसके अद्दन में आग भइका दी थी और उसे किती और चात को सोचने का समय न था, मैं बाल-बाल चच गई। खिलजियों के पहले और पीछे दिल्ली की रिपति तिर डॉवाडोल हो गई और उन दिनों दिल्ली दूर के प्रान्तों पर अपनी हुक्मत न रख सकी। तभी मैं भी पूर्व के बागी मुसलमान सरदारों के हाथ में आती-जाती रही और उनकी मेटमानदारी का जब

तथा फल भोगती रही। मुहम्मद तुग़लक के बाद उसी के नाम पर किंत्रोज़-शाह ने जौनपुर का नगर भेरे पहोस में ही बसाया जां पिछले दिनों में न कंवल दुवे का प्रधान नगर बना बरन् शरखी बादशाहों की राजधानी भी। मालवा, गुजरात, प्रिहार, दंगाल, जिस तरह दिल्ली की पक्की कमज़ोर पहुंचे ही स्वतंत्र हो गए और उन्होंने अपनी अपनी आजाद बादशाहों तक ही की, उसी तरह जौनपुर का शरकी खानदान भी आजाद हो गया और उसने भी अपनी बादशाहत की बुनियाद बहाँ डाली। तब से जौनपुर के भाग्य के साथ ही मेरी किस्मत भी बँधी और उसी के साथ कमज़ोर और मज़बूत दिल्ली का बंधन मुझ पर पहुंचा रहा। बाबर के आगनन तक बाबर ने यही स्थिति रही और मुगल सल्तनत के कायम हाँने के बाद ही वह कुछ सँभली।

बाबर ने जिस समय दिल्ली पर अधिकार किया, उस समय दंगाल, प्रिहार और अबूध तीनों अफगानों के केन्द्र हो गए थे। प्रिहार के अफगान दिल्ली की सल्तनत के हीसले करते थे और जौनपुर की बादशाहत खुद कुछ कम दावेदार न थी, पर बाबर ने उनकी एक न चलने दी। इन्हीं लांधी के भाई जब जौनपुर और प्रिहार के अफगान सरदारों को लेकर दिल्ली की ओर चढ़ा, तब मुझे ऐसा लगा कि शायद अफगानों का अधिकार किर दिल्ली पर हो जाएगा, पर बाबर ने जिसने बचपन से ही लड़ाइयों में खाँस ली थी, उसे धरकाद कर दिया। जुनार पर अफगानों का कब्जा तो था ही, पर अकेह उनके हाथ से निकल गया और शेरखाँ जो बाद में शेरशाह के नाम से बाबर के येटे हुमायूं से गही छीन, उन पर बैठा भेरे नगर में ही ढंगा डाले हुए था, पर बाबर के आते ही, उसके सरदार भी तिलर-बितर हो गए और खुद शेरखाँ गंगा पार कर, रोहदास की ओर गायब हो गया। बाबर मेरी ही राह, जुनार लेता, बस्तर जा पहुँचा और पूर्वी अफगानों

को कुचल कर आगरे लौटा । अब मैं किर दिल्ली की सलतनत में दासित हुरं ।

शेरशाह ने बाबर के मरने के बाद ही अपनी महत्वाकांक्षा को चरितार्थ करने के इरादे, पक्के कर लिए और यह नगर पर नगर लोटने लगा । जीनपुर की बादशाहत भी उसने स्वतंत्र कर दी । मुझ पर भी उसका अधिकार हुआ, बिहार तो वह कब का ले चुका था । हुमायूँ उन दिनों मालया और गुजरात सर कर रहा था और उपर से जब यह लौटा तो आगरे में ऐश करने लगा । इधर शेरशाह चुनार को अपना केन्द्र बनाने में अस्त था । पूर्वी इलाकों को इस तरह शशु के हाथ में जाते देख, हुमायूँ जब सँभजा तब पूर्ख की ओर चला । मेरे नगर में ही उसने पढ़ाव डाला । चुनार क्षेत्र यह बिहार पहुँचा और वहाँ से बंगाल । पर बंगाल ने किर वह भोग बिलाल में छोड़ दिया । इधर कल्पीज तक के सारे इलाकों में कब्जा कर शेरशाह ने उसके लौटने का नाशनाका पन्द कर दिया । चौसे में जो दोनों सेनाओं में निःश्वस हुई तो हुमायूँ को भागने का डौर न मिला और किसी तरह दूर्घटा-उत्तराता एक भिस्ती की मदद से गंगा पार कर, उजियार घाट की ओर से किर मेरो ओर अकेला भागा । मेरे पास ही सारनाथ में उसने पनाह ली । उसी सारनाथ में जहाँ पहले दूद ने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था, अशोक ने अपने स्तूप और स्तम्भ खड़े किए थे और गहड़पालों ने अपने अभिलेख खुदवाए थे । उसी पनाह के स्मारक स्तूप आद में उसके बेटे अकबर ने एक प्राचीन लोकले स्तूप के ऊपर एक छोटी सी इमारत बनाया दी ।

मैं अब शेरशाह की हिकायत में थी । मैं यह प्रसन्नता के साथ कह सकती हूँ कि यद्यपि शेरशाह स्वयं स्वती में किसी से कम न था, अपने मजहब के उस्लों का भी यह गलव का पार्श्व था, पर उसने हिन्दू-

मुस्लिमान अपनी दोनों प्रजाओं के साथ न्याय किया और कभी किसी को मेरे मन्दिरों पर हाथ न लगाने दिया। मैं अपने विछुले अनुभव के कारण शक्ति जहर थी, पर किर भी सहमी-सहमी रहती हुई भी मैं साधारणतः सन्तुष्ट थी। हिन्दी का पहला महाकाव्य 'पश्चावत' अवध के जायस में, मालिक मुहम्मद जायसी ने शेरशाह के ही जमाने में लिखा। शेरशाह दिल्ली का मुस्लिम दुआ। बिहार, बंगाल, मालवा, गुजरात, पंजाब और राजपूताना अमनी जिस सेना के साथ उसने सर किया उसकी हरावल से, नेरे बनपद की कितनी ही प्रबा और मेरे नगर के कितने ही नागरिकों ने कठिन लडाईं लड़ी थी। शेरशाह के विछुले उत्तराधिकारियों के हाथ से जब हुमायूँ ने ईरान से लौट कर किर दिल्ली को ली, तब ऐसा लगा कि मैं सम्भवतः दिल्ली में ही किर मिला स्त्री जाऊँगी मगर कम से कम कुछ काल तक ऐसा हो न पाया। अक्षयर, हुमायूँ का तेरह साल का बेटा, अभी बालक था और दिल्ली के पूरब-दक्षिण का सारा हिन्दुस्तान किर आशाद हुम्मतों में बैठ गया था। बिहार-बंगाल के अफगानों ने किर एक बार दिल्ली की सल्तनत के लिए मुगलों से कशमकश शुरू की, यद्यपि उसका कुछ परिणाम उनके पहुँच में न हुआ। अफगानों का सरदार जब रेवाही का हिन्दू भार्गव बना, हेमचन्द्र विक्रमादित्य, तब मुझे बड़ी आशा बँधी।

भारतीय इतिहास में विक्रमादित्यों ने अपना यह विद्वद, विदेशियों को देश से निकाल कर अपना मुक्त आजाद कर ही धारण किया था और मुझे ऐसा लगा कि हेनू भी कुछ कर गुजरेगा और वह कुछ कर गुजरता भी, मगर भाग्य उसके बुरे थे। पाँसा पलट गया। जिन खँसार पठानों को हाथ में रखना पठान सरदारों के लिए भी कठिन हो गया था, उनको तो उसने आसानी से अपने अँगूठे के नीचे कर लिया और उन्हीं की धराख़ल बना आगे और दिल्ली को भी उसने शात की।

बात में ले लिया पर धोसे से तोपखाना छिन जाने के कारण पानीपत के मैदान में न केवल मैदान ही अल्प उसे अपनी जान तक लोनी पड़ी। और अकबर का दिल्ली-आगरे पर कब्जा हो गया। मैं भी किर दिल्ली की मातहत हुई।

पूर्वी इलाके बार-बार सिर उठाते रहे, बार-बार उन पर तलबार बरसती रही, पर मैं जमाने की रक्तार देल तुरन्नाप तिर झुकाए पंदी रही। अकबर पट्टने, चुनार और इलाहाबाद आया। मैं राह में पड़ी, पर मैंने कभी उसकी मुख्यालक्षण करने की कोशिश न की। बाहतंब में जीवन में मैंने कभी लडाई न लड़ी थी। लडाई, मेरे खुते के बाहर की बात थी। मैं चराबर अपने आकर्षणों के सामने तिर झुकाती रही। बाबर आया—तब मैंने सिर झुका दिया; शेरशाह आया तब और अब जब अकबर आया तब भी मैंने अपना रुख न बदला। अकबर के विचार उदार थे। हिन्दू प्रजा उसके आचरण से आश्वस्त हुई और व्यापि हिन्दुओं को नाक मेवाह दिल्ली से लहौता रहा, अकबर का अभ्युहस्त मेरी चोटी पर बना रहा।

अकबर की बात यही छोड़, मैं किर एक बार सिंहावलोकन करूँगी। मैं पहले कह आई हूँ कि व्यापि राजनीतिक दृष्टि से मेरा पलड़ा कभी विशेष भारी न हुआ, सांस्कृतिक दृष्टि से मैं चराबर मदान् बनी रही। भारतीय संस्कृति, शान और विज्ञान के कितने ही पंडित मेरी नगरी में समय-समय पर आए और उन्होंने अरनी मेषा से मेरा भन्डार भरा। चिरकाल से जो मैं पुस्तकों का गौरव प्राप्त कर लुक़ी थी, परावर ददिल-उत्तर से, पूर्व-नदिचम से यशस्वी दार्शनिक आते और अपनी दृक् से, अपने तर्क और शान से मुझे प्रकाशित करते रहे, पर स्वयं मैंने भी कुछ कम मेषादी उत्पन्न न किए। सरस्वती का असाधारण लाइला, दर्शन का अप्रतिम आचार्य, दक्षिण का अप्रतिरथ वक्ता, शंकर

जब सुदूर केल से चलकर, श्रमनी भानमय दिविजय से भारत को मुग्ध करता, मेरे नगर में पहुँचा और उसने मेरे दार्शनिकों को शास्त्रार्थ की उनौती दी, तब महेन ने उसकी वाग्भारा रोक दी, यद्यपि वह उसे हरा न सका। परन्तु महेन मिथ की पत्नी ने उस अद्वितीय मेधाकी आचार्य 'रीकर को परात्त कर दिया। शंकर चकित हो विजित हो गया। चकित तो वह महेन के भवन में प्रवेश करते ही हो गया था। जब उसने उस भवन के शुक शारिकाओं ने अपने निरन्तर के ब्रज घोष को रोक उससे उसके कल्याण की बात पूछी।

कुमारिल भृंभी जैनों का परानन्द करता, उसी काल प्रायः नवीं सदी ने यहाँ आया और अपने रार्ह से उसने भी मुझे प्रहिमा दी। अप्यय, दीक्षित आदि जैवाकरणों ने सुदूर दक्षिण से आकर मेरे चरणों में निवास किया। रामानन्द मेरी ही सीढ़ियों पर ब्राह्म सुदूर में कबीर से टकरा गए थे और मेरे ही तट पर, उन्होंने उस सत्य के दर्शन किए थे कि स्पर्शमात्र से किसी का धर्म परिवर्तन नहीं हो जाता। इसी धारणा के बशीभूत हो उन्होंने अयोध्या में जा, उन हजारों हिन्दुओं को सरयू में मन्त्र दे शुद्ध किया जो इस्लाम की अनीति से मुक्तलमान हो गए।

और उन्हीं रामानन्द का चेला यह कबीर या जो न केवल हिन्दू-मुसलमानों की एकता का स्तम्भ या वरन् दो महान् संस्कृतियों का सन्धिंश्यल भी। उस कबीर ने भी अपने 'सबद', 'सासी' और 'उलड-बाँसी' यही मेरी ही जमीन पर कहे। मैं मानती हूँ, हिन्दी में अनेक कवि हो गए हैं जो कबीर से प्रयुक्त शब्द योजना में कहीं लेंचे थे, परन्तु मुझे जो इस पर गर्व है तो उसके बागाड़म्बर पर नहीं, बल्कि उसकी उस महानता पर जो सामाजिक दण्डित से अपना सानी नहीं रखती। इस्लाम के भारत में आने के बाद, उसकी और इस देश की संस्कृतियों में संबंध छिप गया। संघर्ष के बाद, बराबर-समन्वय होता है। उस

संघर्ष और विरोधतः उसके समन्वय का एक मात्र प्रमाण वह कवीर था, जिसने सत्य की निरन्तर स्तोत्र की और हिन्दू-मुसलमान दोनों की कमज़ोरियों को विकारने से वह न चूका। राम और रहीम, मन्दिर और मस्जिद, सबको उसने मानवता की कोर पर कर कर, नगरण्य सिद्ध कर दिया। उष कवीर का जीवन इतना पवित्र, इतना न्यायसम्मत और स्वार्यहीन था कि उसके मरने पर वह निश्चित करना कठिन हो गया कि वह हिन्दू था या मुसलमान। आज के प्रगतिशील समाज शास्त्रियों का उस मुदूर अतीत में ही वह अप्रश्नी थाना, निर्भीक पथ-प्रदर्शक।

अकबर के समय तिर मेरी नगरी में उस महामति का प्रादुर्भाव हुआ जो तुलसी के नाम में इतिहास में प्रसिद्ध हो गया। तुलसी का एक नाम है जो जन-जन की जयन पर है, जैसे उसके रामचरित मानस का नाम जन-जन की जिहा पर। अकबर का साम्राज्य था, वह हिन्दुकुश से अहमदनगर और उड़ीसा से गुजरात-काठियावाड़ तक फैला, परन्तु इतने विस्तृत लाग्नाव्य में कोई इतना महान् न था जितना अस्ती घाट का वह येरागी तुलसीदास। मेरे ही उस अस्ती घाट पर उसने अपना प्रातः पठनीय वह अपूर्य रामचरितमानस रचा और उसी से थोड़ी दूर पर संकटमोचन दत्तमान की नूरि की उसने प्रतिष्ठा की। यद्यपि हिन्दी की बोल-चाल की भाषा में पहला महाकाव्य लिखने का अवध के एक मुसलमान महाकवि को है, परन्तु तुलसीदास का महाकाव्य काव्य-क्षेत्र ने अपना सानी नहीं रखदा। रामचरितमानस द्वारा राम की कथा तुलसी ने जन-जन तक पहुँचाई। शुद्ध के बाद कम विचारकों ने देश की बोली में अपना सन्देश अपने देशवासियों तक पहुँचाने का संकल्प और प्रयत्न किया। तुलसीदास उन्हीं विरले जन-हित डाँचकों में से थे। हाँ, उसका दुष्परिणाम भी कुछ कम न हुआ। तुलसीदास के पास अनुशृत, मेथा, शब्द, जन-कल्प्याश की कामना,

गरज को दे सभी साधन थे, जिनसे लोक-कल्याणः गदये, मात्रा में समझ हो सकता था, परन्तु उन्होंने पुरानी जाति में नई शाराब भर दी। जनता ने उन्हें पढ़ा दहूत, लेकिन पढ़ कर पाया क्या? काल्यनिक रामकथा, अचंटित रामराज्य। उन्होंने दिनों मालया और मेवाह दिल्ली से लोहा ले रहे थे, बाजबहादुर और राणाप्रताप अनन्दे देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए दर दर ठोकरें खाते किर रहे थे, पर मेरे उस असामान्य विरागी ने एक शब्द भी उत कठिन पार्थिव बलिदान की चात न कही। उसकी भ्रदा बंदर भालुओं के काल्यनिक कर्त्तव्यों में ही थो गई। काशी, अपनी शक्ति का उपयोग उसने अपने समकालीन कर्मठों के प्रवत्नों के अनुकूल किया होता!

जहाँगीर और शाहजहाँ हिन्दू राजियों के बेटे होकर भी मुझ पर तेवर बदले रहे। जब वे बादशाह हुए तब मैंने सोचा था कि अकबर की लगाई हिन्दू-मुस्लिम एकता की बेल फूले-तोणी, परन्तु उनके तेवरों ने उसे मुलसा दिया। शाहजहाँ के रूप ने तां मुझे मजबूर कर दिया। मेरे नए मन्दिर जहाँ तक बन पाए थे, वहीं तक इने सहे रहे। उनका काम उसने रोक दिया, यद्यपि उसकी बेगम के मकबरे के लिए मैंने थोड़ा धन न दिया। ऊँटों पर लदकर बेहिसाब धन मेरे नगर से आगरे को गया, जहाँ ताजमहल का रोज़ा खदा हो रहा था और जितके निर्माण में न केवल इस देश की प्रतिभा लगी थी, वरन् इसके तरुण नित्य सैंकड़ों की तादाद में उत पर बलि हो रहे थे।

परन्तु शाहजहाँ के ही शासन के उत्तरकाल में मुझे कुछ राहत मिली, वह दो जनों की कृपा से। वे दो जन थे—पंडितराज जगन्नाथ और शाहजहाँ का चेष्ठ पुत्र दाराशिंह। पंडित जगन्नाथ चाल के संस्कृत साहित्य का विजेता पंडित था। शाहजहाँ ने उसे संख्या दी थी और उसने अपनी भेदा साहित्य सर्जन में लगाई।

पंडितराज कितना छैया, कितना विलासी या यह शाहजहाँ के सम्बन्ध से ही लिद है और उसकी बात मैं न कहूँगी। उसका रहस्य मेरे पाठ की सीटियों से कोई पूछे, जहाँ उसने ब्राह्मण होकर भी उस पाप का आचरण किया, जिसके प्रायशिक्त में उसे उन्हीं सीटियों पर गंगा की प्रशस्ति गानी पड़ी। पर हाँ, मैं यह अंगीकार करती हूँ कि कालिदास की परम्परा में इन्हें बाली कान्य की मेघाबी शृङ्खला की वह आखिये कही था।

दाराशिकोह मुतलमान हो कर भी मेरी संस्कृति का उपासक था, विशेषकर ने उपनिषदों का। विवेशी के संगम पर, गंगा के तट पर उसने कुछ उपनिषदों के कारसी अनुवाद कराए उनमें मेरा शाय भी था। मेरे पंडितों ने भी उसमें योग दिया था। शाहजहाँ का उसके ख्येष्ठ पुत्र होने के कारण मेरे भीतर कुछ आशा का संचार हो आया था। अकबर ने जो कुछ किया वह अपने श्रीदार्य के वशीभूत होकर पर यह तरण संस्कृति के ज्ञान से प्रभावित था और यह मैं आशा कर चली थी कि मेरे पुनरुद्धार में अकबर से वह एक कदम आगे बढ़ जाएगा, परन्तु खेद कि उसकी दृढ़तांशु और रंगजेव वी कहर पैशाचिकता में दृढ़ गई।

दृढ़ वाप के रहते ही बेटों ने बंगाल, गुजरात और दक्षन में अगावत की। मुरादचक्रवर्ती ने गुजरात में ही अपने को शादशाह घोषित कर दिया, शाहजहाँ ने बंगाल में दिल्ली की बादशाहत का अपने को एकमात्र अधिकारी घोषित कर, आगरे की ओर कदम बढ़ाया; परन्तु मेरी नगरों से आगे पश्चिम की ओर वह न दृढ़ सका। दाराशिकोह ने राजा जय सिंह को शीघ्र पूरब मेजा और मेरे नगर के शहर ही शाहजहाँ का कैलकाता हो गया। शाहजहाँ बहादुर था, समझदार भी कुछ कम न था मगर उसके शारीरिक निर्माण ने हुमायूँ और जहाँगीर का लूप अधिक था,

आबर का कम। बंगाल में विपाय विलास के, नारी और शराब के उसने कुछ न जाना था और मेरे नगर के बाहर भी जब उसने अपने स्फन्धावार सहे किए तब उसके आपान के आवपास की भूमि गोली हो गई। शराब के दौर और धूंधल की आवाज ने उसके लिपाही के कर्तव्य भुला दिए। अभी यी तक न पही थी। सुबह का अँधेरा सर्वेत फैला हुआ था कि वयस्ति ने यकायक शुजा पर हमला किया। शाहशुजा की शराब की खुमारी और भी चेहरे पर छाई हुई थी कि दुश्मन ने उसकी कौज को तितर-वितर कर दिया। उसको जिधर राह मिली, उपर ही वह भागा। खुद शाहशुजा ने धोड़े पर दैठ पूर्ख की राह ली और मैने खुद उसे सरपट भागते बंगाल की ओर देखा। वयपि वह बच न सका और उसे सपरिवार अपने प्राण आसाम के बर्बरों के हाथ लोने पड़े। हिन्दुस्तान की मुगलों की लड़ाई में यह मेरा आखिरी दिस्या था।

मुगल साज्जाय की एक याद कुछ मामूली तकलीफ की नहीं। मुझे इस दात की खुशी थी कि मुगलों ने इस देश को अपनाकर इसमें सही हुक्मत की पौध संगाई और उन्होंने मजहबी कटूता कान्ही मात्रा में दबा दी, पर औरंगजेब ने मेरी आशाओं पर पानी फेर दिया। उसकी कटूता को मुलगते रहने यालों की, उसके दरबार में कभी न थी, उन्होंने उसे समझाया कि मेरी नगरी हिन्दुओं की नाक है और हिन्दू कटूता बरबार यहाँ मौज भारती और सल्तनत तथा इस्लाम के विरुद्ध पड़्यन्त्र रचती रहती है। मिर ब्या था औरंगजेब बड़ा। उसकी कोधारि में पहली आहुति मथुरा की पड़ी, किर दिन-रात की मंजिलें एक कर वह मेरे नगर में आ दमका। मेरी बरबादी जितनी छब हुई उतनी कभी न हुई थी। मेरे सारे मन्दिरों के भूतक उसने चूर-चूर कर डाले। विश्वनाथ का मन्दिर तोड़ उसने मस्जिद बना दी। माघोदास का घरदरा मीनार बन गया और सारे नगर में उसकी लूट

से कोहराम मच गया । एक से एक ब्राह्मण कुलाचतंत्र मेरे नगर में थे, एक से एक आनन्दनिचाहने वाले चत्रिय थे, एक से एक भानाशाही वैश्य, पर कोई न टिका । मेरे त्रिशली कुर्हे में बूद पड़े और मेरे रक्षक गंगा की नाथों पर । भैरव के उपात्तक लंगोट बन्द भैंगेही जो निरन्तर अपनी काढिली से सौंहों का जीवन चिताते थे, अनेक भौत के बाट उत्तर गए । एक ने लौट कर अपने भैरव को न देखा । सैकड़ों ऊँटों पर लट्ठ कर लूट का धन मेरे नगर से दिल्ली की ओर चला । मैं आह ! करके रह गई । मैंने देवता मनाए, अपने रक्षक को तबाल भैरव को भार भार पुकारा, पर किसी मेरी भावाज न सुनी और मैं लहूलुहान हो, एक बार किर सिर पटक-पटक रोई और किर पर्यांद बेकार समझ चुप हो रही ।

इसके बाद का मेरा इतिहास न तो कुछ विशेष विस्तार का है न अताधारण चमत्कार का । मराठों ने औरंगजेब को लोहे के चने चक्करा दिए थे और शिवाजी जब आगरे की कैद से भाग कर दक्षिण चले तो मधुरा और प्रवाग होते दो दिन के लिए मेरे नगर में भी दिभाय किया । किर मराठों ने जो उत्तर भारत पर छापे मारने शुरू किए तो मैं भी अनेक बार उनके अधिकार में आई । मेरे नगर में उन्होंने भी कुछ मन्दिर खदे किए पर बंगाल में जो विदेशी दूर्घान उठ रहा था उससे वे भी अपनों रक्षा न कर सके । किरंगी राज कम्पनों की सौदागरी सीमा से उठ कर लक्ष्मनत के रुर में चढ़ चला था । पहले अंग्रेजों ने फ्रान्सीसियों से लोहा लिया, सफल लोहा लिया किर भारत के रक्खाओं से और अब बंगाल के शाही सान्दान को लासी में मटियामेट कर वे दिल्ली के बादशाह और अवध के नवाब की सम्मिलित सेनाओं को भी वे बक्तर की लहाई में हरा छुके थे । इस जीत से उन्हें बंगाल,

बिहार की दीवानी मिल गई और मैं दिस्ती और अवध के हाथ से निकल कर छंग्रेजों के हाथ में चली गई ।

तिर जब अद्वारहबो उसी के चौथे चरण में इस्टिन्स ने अवध की बेगमों के साथ बेजा बतावि किया तो मुझे भी नंगी करने में उसने कोई कोर-क्सर न रखी । मेरे गवाच चेतावि है, जो उसे ननमाना कर देने से इन्कार कर दिया तो वह मेरे नगर में आया और मेरे नागरिकों ने उसे मार भगाया और उसे चुनार में पनाह लेनी पड़ी । यद्यपि वह किर लीटा और उसने अदला भी भरपूर लिया, पर मैं मन से उसकी न हो सकी और १८५७ के गुंदर में मैंने भी कुछ कर हाथ न दिलाए । मेरी छावनी के बिगाही भी छागी हो गए, और उन्होंने भी आजादी की उस पहली लहाई में कर हाथ न बढ़ाया; पर उसका जो इधर हुआ वह बताने की चात नहीं । दिनुस्तान की दुर्कूमत कम्पनी के हाथ से निकल कर पार्ल-मेन्ट के हाथ में चली गई और साय ही मैं भी ।

उसके बाद का मेरा इतिहास देश का इतिहार है, आजादी की लहाई, कॉर्पोरेशन के अधिवेशनों का, दिनुस्तान की जीत का, मेरी स्वतंत्रता का । मैंने बहुत कुछ देखा है, बहुत कुछ तहा है; अब भी देख रही हूँ, अब भी यह रही हूँ । मेरी गलियों में एक से एक कारड हुए, अमं और अपचार के । मैंने एक से एक नागरिक उत्पन्न किए, धीर और कायर, सच्चे और पाक्करड़ी, जिनकी कमी आज भी मेरे नगर में नहीं । परन्तु मेरी वास्तविक स्थिति यह कहावत दाढ़ करती है जो मेरे हर जानने वाले की जबान पर है—

राँड़, साँड़, सीढ़ी, सन्धासी

इनसे बचे तो सेवै काशी



अयोध्या

भारत की लात प्राचीन नगरियों में मेरी गणना पहले होती है। यद्यपि मैं आयों के आदिम भारतीय आवार ते दूर हूँ तथा मेरी नगरी में पुनीततम आयं राजकुल की प्रतिष्ठा हुई—सर्व राजकुल की। सन्नवतः संपर्प स्थल से दूर होने के कारण मेरी अवैयता मानी गई और इसी कारण, मेरी तंडों भी शायद 'अयोध्या' हुई। मेरे सर्वदंशी राजाओं में से कई के दश का गान ऋग्वेद तक में हुआ है। इरिशन्द्र, मान्धात्री आदि मेरे ही राजकुल के नायक हैं।

मेरा इतिहार अधिकतर आधुनिक ऐतिहासिक प्रामाणिकता का सम्बोधक नहीं और मुझे दर है कि यदि ऐतिहासिक प्रामाणिकता आदि

से मेरी प्राचीनता पर पिचार किया जाय, तब मेरा अपने को बहुत प्राचीन हिंदू करना कठिन हो जाएगा । परन्तु मेरी आनुवृत्तिक परम्परा न केवल अकात्य है बरन् प्रायः प्राचीनतम भी । जिस इत्याकृ कुल की प्रतिष्ठा मेरी नगरी में हुई, उसने भारत के अलिखित प्रारम्भिक इतिहास की नींव डाली है । प्राचीन स्थानों और अनुवृत्तों में जो स्थान रघुकुल का रहा है, वह इस देश के किसी और राजकुल का नहीं और वह ने दोहरी ही नगरी में पद्धते प्रतिष्ठित हुआ ।

तिथि और क्रम की ज्ञानवीन करने वाले इतिहासकारों का निश्चय यह सन्दर्भ पाना कठिन है कि यदि आर्य प्रगति का प्रसर नन्द हुआ और यदि मेरे प्रार्यम्भिक राजा, शृग्वैदिक राजाओं के अप्रणी हैं, यदि उनका यशगान आर्यों की प्रथम पुस्तक उत्तर शृग्वेद में हुआ, यदि भौगोलिक सीमाएँ पूर्वी पंजाब तक ही आती हैं तब तो कठिनाइयों की कमी न होगी और मैं यह प्रमाणित करने का प्रयत्न भी न करूँगी कि शृग्वैदिक राजों के ऊपर निर्भर कर भौगोलिक सीमाएँ निर्धारित करना उन्नित न होगा । हाँ, इतना मैं जहर कहूँगी कि न केवल सूरसेनों की यमुना का बरन् मेरी सरयू का भी उल्लेख शृग्वेद में है, जिसके तट पर मैं खड़ी हुई और वह राजकुल प्रतिष्ठित हुआ । अब ।

रघुकुल की प्रतिष्ठा और उसकी राजनीति का दक्षिण-पथ की ओर प्रचार करनुपर्यन्त इतिहास का इतना नहीं, जितना अनुवृत्त का विषय है । उस सम्बन्ध में केवल इतना कह कर सन्तोष करूँगी कि राम की दक्षिण यात्रा में, सुदूर दक्षिण में भी मेरी रुपाति थी और उत्तर के मार्ग मेरे चिंचित्य और विस्तार के लिए खोल दिए । राम के पिता दशरथ के समय ही आदों में जो मुद्र छिड़ा था, वह बुझ इतना ही भयंकर था जितना विद्वानों काल का महाभारत । इसमें दूसरे राजाओं ने भाग लिया था और इसी से उसकी लंबा 'दूसरे राजपुद्द' पही । इस मुद्र में मेरे वृपति

ने तो भाग न लिया, परन्तु इसका नायक पंचाल का सुशास, मेरे दशरथ का फूका था और सम्भवतः मिथ्र के रामसेज या असुर के अम्बुराशी का समकालीन ।

खुकुल की दिग्बिजयों और कीर्ति कथाओं को मैं अपने पाठकों और भोवाश्रों से महाकाव्यों और पुराणों से जानने का संकेत कर मैं अपने अगले इतिहास के पन्ने स्तोकँगों । उस कुल के विस्तार स्वीकृति प्राप्ति तीमारे राम ने ली तो । उसके बाद धीरे धीरे उसकी अपनति ही होती गई । इस संबंध में एक बात मैं यह कहना चाहूँगी कि काव्यों और पुराणों में जो खुकुल के मेरे इन केन्द्र से उनके साधारण के असोन भूत्तरदो तक पैल जाने की बात लिखी है, वह मेरी जानकारी की नहीं । बदै तत्त्वमुच इह प्रकार का कोई राज्य विस्तार तत्त्वशिला अथवा दक्षिण तक हुआ तो वह अस्थाई या और जो था भी, वह निश्चय पहोची राज्यों की स्वीकृति के अनुकूल, यद्यपि यह सम्भव है कि वे राज्य, कुछ काल के लिए इन्हें कमज़ोर पह गए हों कि मेरे अप्रतिरथ स्थानियों के रथ-चक्र अबाद उनसे दोकर दीड़ गए हों । सच तो यह है कि न चेवल तिन्हु और उसकी उद्यायक नदियों के तट पर बरन् मेरे चारों ओर शतिमान राजकुल प्रतिष्ठित थे और राजनीति में उनका अतिक्रमण करना मेरे लिए, मेरे अप्रतिरथ सूर्य राजकुल के लिए भी सम्भव न था । एक और तो पंचालों का वह राजकुल प्रतिष्ठित था जिसके राजा मुदास ने दात राज्य मुद जीतकर अपना नाम प्रसिद्ध किया था । दूसरी ओर नियिला के विदेशों का वह प्रलयात राजकुल था, जो प्रायः मेरे राजकुल के साथ ही प्रतिष्ठित हुआ था और जिससे मैंने जब तथ वैकाहिक संबंध जोड़े । तीसरी ओर मगध में दमु द्वारा प्रतिष्ठित गिरिक्रिज में वह राजकुल था, जिसने भारत में पहला साधारण स्थापित किया, जिसके जरासन्द से यशस्वी राजा हुए और जिसकी चोट से मेरे राजवंश का अन्त हो गया ।

रामायण और महाभारत के धीर का मेरा इतिहास यद्यपि उतना अचलन्त नहीं, जितना पहले का है, तथापि वह नेगरय भी नहीं और नेरे राजकुल की गणना किर भी देश के अप्रश्नी वंशों में होती रही । महाभारत काल में कुरुओं और मागधों की शक्ति इतनी बढ़ी कि कुरुक्षेत्रों ने अपने तेज से मुक्ते निरस्त कर दिया और मागधों ने तो मेरे कुल की ग्रायः समाप्ति ही कर दीली । मेरी त्वतंत्रता नष्ट कर उसे अपने साम्राज्य में फिला लेने का अभ्यंग मगध के जरासन्ध को है, यद्यपि मेरा बुद्ध ने उद्दल और जरासन्ध का बेटा, सहदेव दोनों महाभारत के युद्ध में लड़े थे और दोनों ने वहाँ सद्गति पाई ।

मेरा कोशल नाम पुराना है, कासी पुराना, कम से कम कौशल्या और दशरथ के बराबर पुराना । कौशल्या की याद के साथ ही मुक्ते उस रामायिक तंत्रंध की भी याद आती है जिसके विरोध में रामायण ने विद्युते काल में असगोत्र विवाहों की प्रतिष्ठा की । तब तक मेरे नगर और आद्यों में सगोत्र विवाह भी कुछ कन प्रचलित न था । कम से कम मातृकुल से दो कन्या बराबर ली जाती थी, चाहे माता से उतनका संत्रंध निष्कृतम् बयों न हो । जिस कौशल्या का विवाह दशरथ से हुआ वह कोशल के ही राजपरिवार की कन्या थी । ऐसे तो न केवल महाभारत काल में ही ऐसा हुआ कि कृष्ण ने रुक्मिन को वहन से विवाह किया और उनके बेटे प्रयुम्न ने रुक्मिन् की बेटी से, वरन् विद्युते काल में शाक्षी में दो यद प्रथा कासी जार पकड़ गई थी । यह कुछ अजय न था कि गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन ने जिसकी बहिन माया से विवाह किया, उनके उत्तर बुद्ध ने उत्ती की कन्या यशोधरा को ब्याहा । शाक्य कोशल के उत्त सूर्य कुल की ही एक शाला थे जिसके आदि पुश्प यम को उसकी सहादरा ने उत्तरे विवाह न करने के कारण छोड़ी थी और आचार विवर्जक कहा । रामायण की परम्परा में बिलु रामायिक और वैवाहिक

नीति का प्रचलन किया, वह कालान्तर में वैसे मुझे भी संगत जान पड़ा और मैंने भी उसे मान्य समझा ।

बीच का इतिहास मुझे भूल गया । बास्तव ने यदियाँ इतनी बीती हैं कि दूर की घटनाओं का विवृत हो जाना कुछ अज्ञ नहीं । इस पूर्व सातवीं आठवीं सालियों से किर मेरी स्मृति लौट पड़ती है और मेरा इतिहास निरायरण होने लगता है । मगध में तब बहीदर राजकुल की शक्ति दृट चली थी, बरसों की कौशानी में निचक्षु दारा प्रतिष्ठित राजकुल और धीरे स्वतंत्र भागों के गणतन्त्र को दर्शाते जा रहा था, जनक विदेश का राजतन्त्र उल्ट कर विदेशी ने भिधिला में अपना जनतन्त्र लड़ा किया था और मूला, कोलिय, मोरिय, शाक्य आदि अपनी राजनीति सर्वतंक हो लैनाले हुए थे । काशी भी तब स्वतंत्र थी, यद्यपि नगध और बस्त दोनों के कुचक उस पर चल रहे थे । परन्तु जीता उसे मैंने । मेरे कोशल राजकुल की शक्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जा रही थी ।

एक बात और जो बाद रखने की है, वह यह है कि महाभारत युद्ध के बाद की उथल-पुथल में मेरी काया भी पलट गई थी । मगध वृहद्रथों की प्रसार नीति का शिकार हो जाने के कारण मेरे राजकुल ने दक्षिण या महाकोशल में अपनी प्रतिष्ठा की थी । परन्तु कुछ दिनों बाद जब वृहद्रथों की शक्ति कमजोर पड़ने लगी और उनका साम्राज्य गंगा पार तक ही संकुचित हो गया, तब मेरा राजकुल किर कोशल लौटा । पर मेरो राजधानी में नहीं । मैं अपने राजकुल के उल्लङ्घन जाने से अप्रसिद्ध हो गई थी । अशुभ माने जाने-लगी थी और यद्यपि मेरी भूमि किर भी पाकन मानी जाती रही, राजधानी अपनी कोशलों ने उह आवस्ती में ह्यापित की जिसके भगवान्शेष आज भी गोड़ा और भद्राइच की सीमा पर सहृद-मद्दठ गाँव में चिलरे पढ़े हैं । वही कोशलों का नया राजकुल प्रतिष्ठित हुआ । प्राचीन राजवंश की ही नया राजवंश भी एक शाखा

थी जिर भी मेरे नाम से ही राज्य का कोशल नाम त्वलता रहा यद्यपि मुझे एक और नाम अब निलगया था, साकेत।

काशी, ब्रह्मदत्तो की काशी, अब तक त्वतंपर रही थी और उसके राजा अजातशत्रु ने भी कभी विदेही के जनक, पंचालों के प्रबाहन और कैकेयों के अश्वपति की ही भाँति ही कभी दर्शन के तत्व कहे सुने थे। परन्तु निलगते दिनों में जैसे मेरी रिवति में अन्तर पढ़ गया था वैसे ही उसमें दुर्ललता था गई थी और उसके राजाओं की भी शक्ति इतनी क्षीण होती गई कि उनके शासन की सीमाएँ किर तो बाराणसी और उनके आत पास के इसाको तक ही लीमित हो गई और जब अवस्ती के मेरे नए राजकुल ने अपनी प्रसरजिप्ता चरितार्थ की तब तो काशी सर्वथा नेरे अन्तराल में ही समा गई।

काशी का विजेता कोशल का कंस था, जिसने उस प्राचीन नगरी को बोट 'बाराणसी पति' का विनाश धारण किया। उसके बेटे मटाकोशल ने तो उसे भलीभाँति भोगा भी और जब उसने अपनी कन्या कोशल-देवी भगव के शेषुनाग राजा विभिन्नार को व्याहो तो दहेज में काशी की एक लाख की वार्षिक आय उसे दे डाली। उसी कोशलदेवी का भाई प्रसेनजित था, जिसने शिष्टाचार और हान में झुम्लूर के विद्यापीठ तक्षशिला में जोषक के साथ दीक्षा पाई थी। तब चार पड़ोसी राज्यों में संघर्ष लिया था, भगव, वसु, अवन्ती और कोशल में। भगव. ने अंग जीत लिया। वसु ने भूगों का देश, अवन्ती ने शाल पास की सारी भूमि और मैने गणतन्त्रों के अनेक प्रदेश। इससे यह मुमकिन न था कि हम सब आपस में टकरा न जाते। भगव को अंग को निगलते समय वसु के उद्ययन का हस्तच्छेष बुरा लगा परन्तु अवन्ती जो भगव की और आशा भरी आँखों से देख रही थी इससे दोनों से एक साथ उलझ प्रहना उसे

शुकिलंगत न जैंचा, अबन्ती तथा बत्स को आपस में और निपट लेने के लिए उसने छोड़ दिया। परन्तु मुझे मगध ने विशेष सहृदयता का परिचय न दिया। विशेषकर शिविरार के पुत्र अजातशत्रु ने तो जो नीति यजियों के साथ बर्ती बही मेरे साथ भी बर्तनी चाही।

अजातशत्रु महत्वाकांक्षी था—धर में भी बाहर भी। पर में तो वह पिता को ही दीर्घ काल तक राज करते न देख सका और उसने जब उसकी कटार अरुकल हो गई, तब पिता को बन्दी कर भूखों मार डाला। मेरे राजा के लिए तब यह स्वाभाविक था कि अपनी विधवा बहिन कोशलदेवी के वैधव्य का अजातशत्रु से बदला ले। निश्चय तब कोशल के राजनीतिक साधनों से मगध के साधन कहीं अधिक और प्रबल थे। इसलिए खुल्लमखुल्ला पुद्र की रियति में तो प्रसेनजित भा नहीं, विशेषकर इस कारण भी कि उसका राज्य अंगुलिमाल डाफू ने उबाह डाला भा और मन्त्री दीर्घचारायण की मदद से उनके बेटे विहृडम ने भी उसे कुछ कम लाते में नहीं डाल दिया था। प्रसेनजित ने किर भी अजातशत्रु के खण्डन्य कृत्य पर आकोश प्रकट करने के लिए महिन के दहेज में दी मगध को कारी की आय रोक दी, परन्तु इनका द्वार्य पुद्र पोरण था और अजातशत्रु ने तत्काल काशी पर अधिकार कर लेने के उपकरण किए। पुद्र छिह गया, दीर्घकालिक विकराल भुद्र। विजय कभी मेरे हाथ आई, कभी मगध के। इसी समय मेरे आन्तरिक राजुओं ने विशेषकर दीर्घचारायण और विहृडम ने अपना विद्रोह और बना कर दिया। तब मुझे लाचार होकर केवल काशी ही नहीं प्रसेनजित की कम्या वाजिरा भी अजातशत्रु को देकर सन्धि करनी पड़ी।

मेरी रियति दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी। भगवान भुद्र ने कई बार अपने संघ के साथ मेरी नगरी में डेरा डाला। मैंने बार बार उसकी और आशा से देखा; परन्तु वे भी मेरे दूढ़ते यद्ध को उहारा न दे

तके यथापि उन्होंने अँगुलिमाल को जीत लिया । वह कथा भी कुछ कम रोमांचक नहीं । भावस्ती के उत्त महाकान्तार के प्रदर्शियों ने बुद्ध को प्रवेश करने से रोका जिसमें बर्बों से विकराल दस्यु अँगुलिमाल का नियास चला आता था । अँगुलिमाल ने हजार मुहाफिरों का वध करने का निश्चय कर लिया था और अपनी हस्ताओं की गणना के लिए वह जब किसी नागरिक को मारता, तब उसकी एक ठँगली काट अपनी माला में पिरोकर भारण कर लेता और इस प्रकार वह अपना नान सार्थक करता । उसकी हस्ताओं से भावस्ती और कोशल की प्रजा आहि प्राहि कर उठी । तभी प्रदर्शियों की बात न मान तयागत मेरे उत्त महाकान्तार में प्रविष्ट हुए । पने पन में कुछ दूर चलते ही पीछे से आकर आई 'ठहर जा' बुद्ध ठहर गए । किर कर औ दस्यु को आते देखा तो जोहे—भैं तो ठहर गया भला तू कब ठहरेगा ॥' मुँह पर शान्ति विराज रही थी । उद्धरप्रेम और प्रदर्श मुस्कान से मुख्यरुद्धर आलोकित था । दस्यु उत्त कोमलता से आक्रान्त हो गया, जिसे उसने जीवन में कभी न जाना था । उसे देख बड़े पराक्रमियों को चिरपां बैंध गई थी, पर आज इस पुकार पर जब इस निहत्ये भिषु को उसने इत शान्ति से अम्बी लहकार कर उत्तर देते भुवा तब उसका धीरज त्यथे छूट गया और तथागत के प्रदर्श का भर्म तमः, उनके चरणों से लिपट वह संष का अनुमायो बना ।

पर तथागत भी मेरे एहसालद को न संभाजतके और एक दिन निता को पुत्र ने कोशल से बाहर कर दिया । प्रसेनजित उद्यायता के लिए अपने दानाद अजीतशशु की ओर चला पर राजगृह की प्राचीरें के पाहर लिंहदार पर ही थकान और भूख-प्यास से व्याकुल राजा ने दम तोड़ दिया । बिड्डम राजा बना और अपनी शालि का पहला उपयोग जो उसने किया, वह शाक्यों का विवरण था । न केवल बुद्ध ने उसके विशद निता को उगाय बताया था बरन् उनके शास्यों ने भी उसे अप-

मानित करने में कुछ बहर न रखी थी। उसकी माँ बहिलका जो प्रसोन्नित को व्याही थी, वास्तव में शास्त्रज्ञत्रिया की कल्या न थी, शुद्रा की थी, जिसे धोखे से उन्होने राजा को व्याह दिया था और अब जो बेटे ने उसके एक धरीवे में पैर रखे तो शास्त्रियों ने उसे शुद्र करने के लिए जल प्रवाह किया। विद्वान् ने जब अपने अपमान का रहस्य समझा तब बदला लेने के लिए उसकी भुजाएँ फाइक उठो। शोष उसने एक विशाल लेना लेकर शास्त्रियों पर अक्रमण किया और कपिलबस्तु के नागरिकों को तक्षवार के घाट उतार, नगर को अग्नि की लगाई को समर्पित कर दिया। शास्त्रियों का गणतन्त्र बिजियों के जनतन्त्र की ही भाँति गणतन्त्रों में अप्रणी था। कोशल की इस तंदारक चोट से वह कुचल गया। यद्यपि शास्त्रियों के तंदार से मेरी सीमाएँ हिमालय के चरण तक उसी प्रकार जा पहुँची जिस प्रकार अजातशत्रु की चोट से बिजियों के कुचल जाने पर मगध की सीमाएँ हिमालय से जा लगी थीं। परन्तु जहाँ लिच्छवी किर से उठ लड़े हुए, शास्त्र फिर न उठे।

विद्वान् की सन्तान स्वयं भी बहुत काल तक शासन न कर सकी। कुछ ही काल बाद शेषुनागों के विवरणक 'सर्व-ज्ञातंक' महापद्मनन्द ने मुझे अपने बढ़ते हुए ताज्ज्ञय में मिला लिया, फिर मौर्यों ने मेरे जनपद पर शासन किया। कभी भेरा जनपद सर्वथा स्वतंप्र था, सातवीं सदी ईस्तो पूर्व में। फिर उठ पर कोशल के राजवंश ने शासन किया था और अब वही विल्यात सोलह जनपदों का कोशल-मौर्यों के अधिकार में था। बीद-जैन मौर्यों के शासन काल में भेरे वैष्णव धर्म की कोई प्रतिष्ठा न मिली और यद्यपि नन्दों ने द्वितीयों के विद्वद् भेरी मर्यादा कुछ बढ़ाई थी, पिछले मौर्यों ने मुझे सर्वथा नंगा कर दिया। अन्तिम मौर्य बृहद्रथ को मार कर शुग-ज्ञात्य पुष्पमित्र मगध की गही पर बैठा। तब ज्ञात्यण धर्म के साथ मेरे हिन भी बिरे।

पुष्पमित्र शुंग ने तो मुझे अपना एक विशिष्ट दुर्ग भी बना दिया क्योंकि कुछ ही दिनों पहले श्रीकों द्वारा मगध की पराजय से वह जान गया था कि मेरे नगर में भी सेना की छावनी बनानी आवश्यक हुई। बाल्जी के दिवित्रिय ने जब अपनी सेना का एक भाग अपने जामाता मेनानदर को दे, पूर्व की ओर से पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने का उसे आदेश दे, तिन्ध और मध्यमिका की पश्चिमी राह जब वह मगध की ओर चढ़ा तब मेनानदर ने मथुरा और पंचाल के साथ ही मुझे भी आक्रान्त किया। पुष्पमित्र के अश्वमेष का क्षतिज और महाभाष्य का रचयिता तथा उस द्वाष्टाण्य पड़वन्त्र की मेथा पतञ्जलि जिसका केन्द्र पुष्पमित्र था, मेरे सभीष के ही गोर्नेंद (गोडा) का निवासी था और वह अब पाटलिपुत्र में जा बसा था। उसने अपने महाभाष्य में मेनानदर द्वाया को हुई मेरी नगरी की दुर्गति का उल्लेख किया है—“अस्त्वद् यवनः साकेतम्” सही उस बेरे की याद मुझे आज भी स्पष्ट है। कुछ काल मैंने निश्चय अपनी प्राचीरों के भीतर श्रीकों को न बुझने दिया परन्तु जब गोप ही बाद पाटलिपुत्र की वह दशा हुई तब मेरी क्षा हकीकत थी। मैं विषमियों के हाथ चली गई जिन्होंने मुझे बुझे तरह लूटा और मेरे देव-मन्दिर भ्रष्ट किए। परन्तु वे ज्यादा दिनों यहाँ रहे नहीं। अपने यश्कलह के कारण उन्हें शीघ्र लौटना पड़ा और मैं किर एक बार उनके बंगुल से निकल गई यद्यपि मेरी स्थिति अब ऐसी न रह गई थी कि नगरी कहलाने का अधिकार हो। पर हाँ, कुछ ही दिनों याद जब मेनानदर किर लौटा और उसे पुष्पमित्र ने परात्त कर मार दाला तब मुझे अपनी पुरानी दृति का बदला मिला। दो-दो अश्वनें फूरने वाले पुष्पमित्र ने मुझे किर से भान और गोरव दिया और वह कुछ अकारण न था कि मेरे ही यहाँ से उसके नाम का एक शिलालेख मिला हो।

शुंगों का तेज द्वीप होते ही मैं कर्णों के हाथ में आई और उनके

बाद दक्षिण के सातवाहनों के हाथ में। परन्तु जब शकों ने मध्यदेश को रीढ़ डाला, तब सुके भी उनकी चोटें सहनी रहीं और कुशाखों की भी जिनको देश से निकाल भारतीय नागों ने एक नए साम्राज्य की नींव डाली, यद्यपि भारतियों ने सुके नहीं काशी को अपनी निष्ठा का केन्द्र बनाया। परन्तु परम वैष्णव 'परम भागवत' गुप्त सम्राट् सुके न भूल सके और उनके साम्राज्य के निर्माता समुद्रगुप्त ने कुछ काल सुके ही अपनी राजधानी नियत की। एक बार जिर सुके शकि मिली और मेरी नगरी में प्रकाश दार्शनिकों का निवास हुआ। पहले एक बार दक्षिण से धुरन्थर दार्शनिक दिल्लाग आया, जिर सुबन्धु और उसका भाई अरुण। बसुबन्धु और अरुण तो पेशावर से आये थे और यद्यपि वे लग तब कीशामी में बरसात चिताते रहे, अपना आवास उन्होंने सुके ही बनाया। गुप्त काल के बाद जब एक आंर मग्य में पिछले गुप्त और कल्पीज में मौखिय प्रतिष्ठित हुए तब मैं कभी एक की जपेट में, कभी दूसरे की जपेट में आती जाती रही और जैसे जैसे उनकी राजलक्ष्मी जीतती-हारती, रही वैसे ही वैसे मैं भी जीतती-जिगहती रही। हर्ष ने जब अपना साम्राज्य खड़ा किया, तब मैं कल्पीज के भाग्य के साथ बैठ गई और दीपंकाल तक कल्पीज जी हार-जीत, मेरी हार-जीत भी बनी रही। हर्ष के बाद जो उथल-पुथल, हुई, उसमें मेरी राजनीति भी नष्ट-भ्रष्ट हो गई।

पाटलिपुत्र के आधार से उठकर भारतीय राजलक्ष्मी अब महोदय में जा रही थी। महोदय शासीन कान्यकुल्ज का नाम था। आधुनिक कल्पीज का और वही अब इस देश की राजधानी थी। परन्तु उसके राजा कुछ काल तक काफी दुर्बल हुए और अपनी दुर्बलता से उन्होंने गंगा-नमुना के अन्तर्वेद को लाहसीकों के आखेट की भूमि बना दी। यशोवर्मन् किर भी अलामान्य था और उसने काफी शकि अर्जित की, यद्यपि काश्मीर के ललितादित्य ने उसे परालू कर दिया। पर आयुधों

ने तो राजनीतिक दुर्बलता की पराकाढ़ा कर दी और उनके शासन काल में कबीज पर पालों, राष्ट्रकूटों तथा प्रतिदारों में त्रिवर्गीय संवर्य भी शुरू हो गया और अन्त में नारामहृ द्वितीय प्रतिदार ने कशीज में अरने राजकुल की प्रतिष्ठा की। तब से प्रायः दो दौ वर्ष तक मैं निरन्तर शांत रही। मुझे शक्ति न मिली पर मुझे छेहा भी दिली ने नहीं और मेरी धार्मिक चेतना को भी काफी बल भिला। बारतव में मेरी राजनीति के तार कबके पिलर गए थे और मैं अब केवल पालराड पर जीती थी, धार्मिक मान्यताओं पर।

प्रतिदारों का पिछला काल जितना उनके संकट का हुआ उतना ही मेरे संकट का भी। कबीज पर जब महमूद गजनवी ने दो-दो बार हमले किए तब मैं ही भला उसको संहारक चोट से कैसे बची रह सकती थी। मुझे भी दूर से आनेवाले उन पठानों ने नष्ट-धृष्ट कर दिया। मैं नारी हूँ, शक्ति की गोद में उखलते-कूदते मुझे अच्छा लगता है, बाहुओं का सबल भूला मुझे सदा आकृष्ट करता रहा है और प्रतिदारों की भुजाओं में अब वह बल न रह गया था कि मैं निरापद अनुराग से उनमें भूल सकती। इससे बद्यपि गजनी की सेनाओं ने मुझे नियास्त जीर्ण कर डाला पर कुछ काल के लिए परिवर्तन का मुझे तुल भिला। बार-बार मुझे बिजेताओं ने नंगी कर दिया, बार-बार मैंने अपने कम्बोर प्रतिदार स्वामियों की ओर देखा पर जब वे अपनी यजधानी कबीज की ही रक्षा न कर सके और जब स्वयं मसुरा, यमुना के जल में अपनी नोची नंगी आकृति देखकर तड़प उठती थी तब मेरी दो बक्त थी क्या थी।

राज्यपाल और यशवाल प्रतिदार के बाद किर कबीज के साथ ही मेरा जनपद भी समर्थ सेनाओं की लूट का द्वेष बना। दिविष-पूर्व के दिनुओं ने, पश्चिम के मुसलमानों ने, सभी ने मुझ पर अपने पीढ़व का प्रहार किया और तब चन्द्रदेव नामक गहड़वाल ने काशी, इन्द्रस्थान (दिल्ली) और कबीज के साथ ही मेरी रक्षा की। उतने गहड़वालों

का राजकुल कबीज में स्थापित किया। उसके पुत्र गोविन्दचन्द्र ने दाजिन दुग्धामिन और विजयचन्द्र ने अमीर खुसरा से मेरी रक्षा की पर गहड़वाल भी बहुत दिनों कबीज की रक्षा न कर सके। दिल्ली का सिद्धार जब पुष्पीराज की हार से टूट गया तथ बबीज का भी इच्छा न रह तका और चन्द्रावर के मैदान में महोदय की लक्ष्मी भी लुट गई, साथ ही मेरी भी। नोहम्मद गोरी ने मुझे बुरी तरह लूटा, फिर बहितयार ने और दिर कुतुबुद्दीन ने। अब मैं मुसलमानों के शासन में आई और उसी शासन में उन्नीसवीं सदी तक रही।

मेरा इतिहास फिर दिल्ली के बादशाहों और जौनपुर के शर्की मुस्लिमों ने लिखा। बलबन के शासन में मेरे शासक को बंगाल के तुगरिल से दो बार हारना पड़ा और तथ बलबन ने नियातिकीन को मार कर उसका सिर मेरे द्वार पर टाँग दिया। फिर वह त्वयं बरसते मेह में बंगाल की ओर चढ़ा और गोड़ में तुगरिल के दर्वार और उसके प्रियगांठों पर उसने जो जुरूप किया, वह मेरे कदने की बात नहीं। अलाउद्दीन खिलजी ने जब मुस्लिम होकर हिन्दुओं के खिलाफ अपनी भारक नीति का व्यवहार किया तब मेरी जमीन पर एक मन्दिर भी न बढ़ा रह सका। और निरोजशाह तुगलक जब दो बार मेरी नगरी में आया तब उसे मेरी रिखिति देखकर कुछ कम सन्तोष न हुआ।

वैष्णो श्री और लोधियों के कमजोर हाथों से दिल्ली की सत्तनत के अनेक सबे निकल गए। जौनपुर का सूपा भी शर्की राजाओं ने स्वतंत्र छर लिया और तब मैं जौनपुर की चेयी हुई। उस शासिन की याद भी कुछ मुख की नहीं परन्तु उसका भी शीघ्र ही अन्त हुआ, जब बावर ने हिन्दुस्तान में मुगलों का 'राजकुल' स्थापित किया। पर बुद बावर ने मेरे साथ कुछ अच्छा सलूक न किया। राम के जन्मस्थान से प्रसिद्ध भूमि पर स्मारक स्तम्भ जो प्राचीन मन्दिर खदा था उसे तोड़ कर और

उसी के कहीटी के लम्बो, से उसने वहाँ मरिजद लही की। उसके पोते अकबर के शासन काल में निश्चय मुके भजही कहरता की चोटी से नजात मिली, यद्यपि उसका आरम्भ थोड़ा-चहुत उस शेरराह ने ही कर दिया था जिसने हुनारू को ईरान भगा दिया। अकबर ने मुके हर तरह से शाति और मुख दिया और जब तक वह जिन्दा रहा, तभी तक मुके किंतु प्रकार की लही न उठानी पड़ी। नेरी नगरी में फिर सैकड़ों जनिदर लहे हो गए; परन्तु उसके बंशवरों ने नीति फिरबदल दी और श्रीरंगजेव ने तो हर कर दी, जब मेरे सारे मन्दिरों को खाक में मिला उनकी जगह महिन्द्र लहा को। श्रीरंगजेव का विष्वंत मुके चरादर याद रहेगा।

मिछूँ नुगल शादराहों के हाथ से जब शक्ति निकल चली तभी उनके बड़ीर ने मेरे अवध में नई नवाज़ी स्थापित की। आज का अवध कीव-करीव वही है जो पहले मेरा कोशल या और उसी की छढ़ती सोनाओं से रवाची ने अपनी हुक्मत कायम की। सादवज्जी के बाद सजदरज्ज़ग आया और उसके बाद शुजाउद्दीला। तीनों एक से एक काहरों थे, एक से एक बीर। और उन्होंने न मुके लूटा, न लखोड़ा वहिं हर तरह से मेरी रक्षा की। नवाय वे नामसाच के थे। अखल में वे यहाँ हर तरह से स्वतंत्र थे। शुजाउद्दीला ने तो मेरे पहोल में ही कैब्राइट में अपनी राजधानी रखी और वह शाहजालम और मीरकातिम के समय विशेष प्रसिद्ध हुआ। अंपेंटों से तीनों ने एक हाथ बहलू में हार ल्हाई और तब मेरे राजनीति फिर डायॉडोज हो चोरी पर नवाय, जो अब चादशाह कहलाते थे, फिर न्यू स्वतंत्र भने रहे यद्यपि, उनके राजधानी अब लखनऊ में थी।

मुके याद है कैब्राइट में शुजाउद्दीला को, माँ, और जीवी दोनों तिवाल लही थी। उनके बास अहम धन या पर ईर्दिस ने लखनऊ के नवाड़े से, मिल कर उनका सर्वत्र छोन् लिया। उनकी चोल-पुकार

आज भी मेरी हवा में भरी है और यद्यपि आसरउद्दौला ने मौला से भी न पाने वाले गरीबों का भी भला किया । मेरा नगर सारे अवध के साथ ही अकाल की चोट से बेदम हो गया । वाजिदअलीशाह के बमाने में तो नेरी नगरी में फिर मस्जिद-मन्दिर के नाम पर हिन्दू मुसलमानों का दंगा हुआ पर मुसलमानों की दखास्त पर जो उस बादशाह ने बेइमानी करने से इन्कार किया उससे वह मुके आज भी याद है । मजहब की भंकट से दूर रहने वाले उस अव्याश ने साक लिख भेजा—

हम इसके बन्दे हैं मजहब से नहीं बाकिक ।

गर कावा हुआ तो क्या, बुतलाना हुआ तो क्या ॥

परन्तु इस शेर में जित उदासीनता का समावेश है वही उस बादशाहत के सर्वनाश का भी कारण हुई । अव्याशी वाजिदअली के रग रग में भर गई थी । प्रजा का धन बैहन्तहा उसने अपने विलास में लुटाया और एक दिन स्वयं किरंगो सेना का वह बन्दी हो गया । तब लखनऊ से बादशाहत की नीद उज़ह गई और तभी से मैं चची-खुची उज़ह गई । हाँ एक बार तन् ५७ के विद्रोह में निरचय मेरी नगरी और फैजानाद में बगावत के भरहे लहे हुए । फैजानाद में तो गजब का लोहा चमा । और यद्यपि उन रहसों ने जो मुके कुचलने के पुरस्कार त्वरण आज तातुकदार बने बैठे हैं, मुके बरसाद कर दिया परन्तु सिर भी फैजानाद और लखनऊ के साथ साथ उन दिनों लही और लूट लही ।

श्रव मैं केवल मन्दिरों का नगर रह गई हूँ । यहस्य नेरो नगरी में रायद ही कोई हो । नारो-वैराग, शाख-उदातो और जै जै सिया राम भजने वालों से ही नेरी बस्ती आज आशाद है । न मुझमें जीवन है, न कर्मण्यता और मैं सदियों से यद्यपि अरना क्लेश ही किडी तरह बसीटती आ रही हूँ फिर भी जो स्थिति मेरी आज है वह कभी न थी । और अगर मुके मरना हुआ तो भेरों दरा इससे अधिक संशाहीन न हो सकेगा कितनी आज है ।



प्रयाग

मैं प्रयाग हूँ। गंगा यमुना का संगम भारतीय साहित्य में निरन्तर सुनि का विषय रहा है। लिखता गंगा यमुना के बीच का से चमकता फैला कोण अत्यन्त प्राचीन काल से जनता का संगम और तीर्थ रहा है। गंगा और यमुना का सेत और नील संगम साहित्य में चबूदा रहस्यमय कुदूस से देखा गया है। शालमीकि और कालिदास दोनों ने इन धाराओं का वर्णन किया है और दोनों उनके समिलित सौन्दर्य से मुख्य हो गए हैं।

मेरे संगम को भारतीयों ने केवल दो नदियों का नहीं बरन् तीन नदियों का—गंगा, यमुना और सरस्वती का माना है। सरस्वती अन्तःसंलिला कही गई है जो प्रत्यक्ष नहीं, अदृश्य है, परन्तु जो लृत होकर भी दोनों नदियों के साथ मिल कर शिवेणी नाम तार्थक करती है। सरस्वती के अनुस्थित होने पर भी उसका इस रूप पर समाप्त और उस समाप्त

का भारतीय साहित्य में निरन्तर व्याख्यान तथा साधारण जनता का उसमें अभिट विश्वास कितनी ही थार मेरे मन में कुदूहल उत्पन्न करते रहे हैं—इसे श्रिवेणी क्यों कहा ? आखिर सरस्वती का विचार ही इस नामकरण में क्यों उठा ?

उत्तर सर्वथा कठिन नहीं । अन्तर्वेद, मैं जिसका केन्द्र और पूर्व द्वार था, आयों का पंचाल के साथ वह दूसरा आवास बना था जो उन्होंने कुशद्वेष के ब्रह्मिंदेश से उठ कर, गंगा-यमुना के दो आय, में बनाया था । ब्रह्मिंदेश, बहाँ सरस्वती और हशदती, विरोपकरं सरस्वती के किनारे आयों के याग-होम हुए थे । उनका वह विशिष्ट प्रदेश था जहाँ उन्होंने शत्रुओं को जीतने और प्रारम्भिक कठिनाइयों के बाद पहले पहले शांति का लाभ किया था और साथ ही अपनी संस्कृति की मुंजिली तय की थी । सरस्वती के तट पर इस मात्रा में याग-होम, वेदव्ययन और दर्शन विन्तन हुए कि वह नहीं आर्य संस्कृति और ज्ञान का प्रतीक बन गई । इतना ही नहीं नदी की स्थिति से उठकर वह मेधा को ज्ञान से प्रतुप्राणिव फरने वाली सरस्वती भी उन्हीं जो शीघ्र वाली और कला की जननी तथा देवी कहकर पूजी गई । निरचय ज्ञात से उसका सम्बन्ध हो जाने के बाद उसके स्थूल जल का लोप हो जाता सार्पक ही था । मेरे इस संगम पर भी जो अनन्त-अनन्त यागहोम हुए, ज्ञानार्जन के केन्द्र स्थापित हुए, जिससे मेरा नाम “प्रथाग” पड़ा, तो यह कुछ अज्ञन न था कि आर्य भद्रालुओं को अपनी विस्मृति सरस्वती के तट की याद आ जाती । इतने याग-होम सरस्वती तट से इतर आर्य कहरना के बाहर की बस्तु थी और उन्होंने माना कि चाहे अहर्य स्वर में हो परं सरस्वती का संगम गंगा-यमुना के साथ यहाँ निरचय है ।

जब अयोध्या के एक्षाकु राजकुल में हुद राजा दशरथ की कमज़ोरियों के कारण वेठे के हाथ से राष्ट्र निकल गया और विदेशामि

प्रबल हुई तब और उससे पहले ही मेरा स्थल पुनीत भाना जाने लगा था । बन जाते समय राम ने मेरे ठट पर भारद्वाज के उपदेश दुने और पुराणों ने मेरे महारथ्य का निस्तीम यश गाया । मेरे तीर्थों की प्रशंसा महाभारत ने भी मुक्तकर्ण से की और मेरी संक्षा शीघ्र तीर्थराज हुई । इस प्रकार रामायणकाल के पूर्व से लेकर आज तक मेरा अद्वृट धार्मिक वैभव बना रहा । धार्मिक वैभव मैं जान दूझ कर कह रहा हूँ, उसे राजनीतिक गौरव से अलग करने के लिए, क्योंकि यद्यपि जब तब और विशेषकर विद्वले मुख्लिम युग में, राजनीति की चिनगारियाँ मेरे नगर में भी चमकी, परन्तु सच तो यह है कि कभी मैं राजनीत का प्रबल केन्द्र न हो सका । भारतीय इतिहास में मेरा महत्व विशेषकर धार्मिक रहा है ।

ऐतिहासिक काल में मेरा पहला सम्बन्ध अन्तर्वेद की उस राजनीति से हुआ जो पूर्व-पश्चिम में स्थापित होने वाले साम्राज्य का सम्बन्ध-स्थान बन गया । उपनिषद् काल में पंचालों और काशी की सीमाएँ मेरे ही नगर में समाप्त होती थीं । मगथ साम्राज्य के खदे होने पर विभिन्नार की काशी की हड़ भी परिचम की आर मेरे ही समीप आकर समाप्त हुई । तब नै बत्तों के राज्य में थी और मेरा शासन कोशाम्बी का बद राजकुल रत्ना था जिसे कौरव निचधु ने मुझसे तीस मील परिचम यमुना के ठट पर स्थापित किया था । महात्मा बुद्ध अनेक शर मेरे 'ही राजमार्ग' से उदयन के कोशाम्बी को आये थे । तीर्थराज की मेरी पावनता यद्यपि सदा अक्षुण्य बनी रही थी, सिर भी समय समय पर मेरे शासकों की तृष्णा से दसकी सीमाएँ परिवित होती रही । कोशाम्बी का उदयन वह मधुप्रिय भ्रमर था, जिसने अपनी तृष्णा कभी संयत न की और निरन्तर बह विषयों का उपातक बना रहा । बत्ते से उस राजन्य ने एक समय विलासिता की देश में धारा आदी थी और मैं तरसा; अपनेउद्देश को संक्षत करता चुपचार उसकी प्रणय प्रक्रियाओं को देखता रहता ।

छठी सती ईस्वी पूर्व के इस वाताशरण से मैं शीघ्र रुक गया और मगध की गढ़ती सीमाओं ने पंचाल शासकों से मेरी रक्षा की। वस्तों का राज्य कुछ मगध ने ले लिया, कुछ अवन्ती के प्रद्योतों ने और मैं सिर एक बार अपनी धर्म-भीक्षा के लिए प्रतिद्द दूआ। नन्दों का उत्कर्ष हत्रियों के लिए काल रात्रि तिद हुआ और तब यद्यपि मेरी धार्मिक शक्ति को कुछ चोट पहुँची। मैं किर भी अदालुओं के समागम का केन्द्र बना रहा।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने जब अपना विशाल साम्राज्य लड़ा किया तब उसकी विजयवाहिनी की पश्चिममुखी धमक मैंने सुनी थी। किर अशोक के धर्मोपदेश भी मैंने निरन्तर सुने। कीशामी मेरी पढ़ोत्ती थी और अशोक का वह स्तम्भ जो आज मेरे नगर में लड़ा है, पहले बत्सों की हसी उज्ज्वली राजधानी में लड़ा किया गया था। विद्वते मौर्यों के दुर्बल दायों से जब राजदण्ड स्वालित होने लगा तब विदेशी ग्रीकों ने मेरी ही राह से मगध में प्रवेश किया था। मेरी ही राह से वे लौटे भी थे और कुछ ही काल बाद मेरे पास ही पुष्यमित्र शुंग ने मैनानदर को परास्त कर उसे मार डाला था।

एको के सेनानी लोहिताक्ष अभ्लात ने जब ईस्वी पूर्व प्रथम शती में पाटलिपुत्र का विजयस किया था, तब उसकी सेना मेरे ही मार्ग से गई थी, मुझे रींदती, कुचलती, मेरे भवनों को खरादहर कराती, मेरी अनन्त-अनन्त मूर्तियाँ तब उनकी चोट से बिल्लर गई थीं। मेरे अदालु उत्तराक संगम खोद, गावों की ओर भाग पड़े थे। कुशाखों के राजा कनिष्ठ ने जब मध्यदेश पर आकर्षण किया और पाटलिपुत्र से अस्वयोप को चील की भाँति भागट कर लौटा तब मेरे ही मार्ग से। बाकाट्यों और नागों ने बारों बारों से मेरे संगम पर विदेशियों के विशद अनन्त विजयों के

संकल्प किए। मेरे ही तट पर, उन्होंने अनेक बार अपनी सेनाओं को विधान दिया; अपने विरों के लर्पण किए।

परन्तु राजनीति से मेरा विशेष समर्पण थर्तुतः उन गुरुओं से ये जिन्होंने मेरे ही अन्तर्योद के आधार से उठ कर मगध का साम्राज्य खड़ा किया था, गुरु जो भारतीय संस्कृति के निर्माता और साथ ही गणतन्त्रों के असाधारण शत्रु हो गए हैं। पाटलिपुत्र में राजचक्र को धुना चन्द्रगुप्त प्रथम ने, जब वहाँ अपनी राजि की प्रतिष्ठा की, जब उसने लिङ्गविद्यों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित कर अपनी राजि का वितान ताना तब और उसके पहले उसके आधार साकेत और प्रयोग ही थे। पुराणकार ने चन्द्रगुप्त का यश गाया और उसके पुत्र समुद्रगुप्त को 'विकारा'। उसका कारण एक जनगद से उठती हुई प्रारंभिक उचित राजि का दूसरे जनपद पर अनुचित प्रवास था। गुरु साम्राज्य का वास्तविक निर्माता और भारतीय स्वतंत्र जनशक्तियों का प्रणेता वेरी वह समुद्रगुप्त ही था, जिसने अपने विषम बीवन का समष्ट प्रदर्शन किया। एक और तो उसे लिङ्गविद्यों के जनतन्त्र से अपने विता का सम्बन्ध स्वीकार कर अपनी मर्यादा लिङ्गविदीहित कह कर बढ़ाई। दूसरी और उन्हीं लिङ्गविद्यों को अपने राजचक्र के नीचे पीछे से वह न चूका। लिङ्गवि ही क्यों, भारत के प्रायः सभी गणतन्त्र उससे आक्रान्त हो संत्रुत हो उठे और उन्होंने स्वतः उसके प्रति सिर झुका लिया। शास्त्र में अकुणिट खुदि उसने वाले इस महाकाय विजेता ने 'समरशत वितत विजयी' की उत्तापि भारत की और निस्तर वृह शास्त्र की उत्तापना में लगा रहा। शास्त्रिकाल में उसका वीणावादन, काव्यक्षेत्र में उसका सर्वित कविराज्य, मुद्र के दिलों में स्मृत रह जाते थे। मेरे नगर से योही ही दूर पर कौशाम्बी के पास उसने आयोवर्त के सम्मिलित राजाओं का सर्वनाश किया। वाकाटकों और नागों ने गुरुओं के उत्कर्ष के पूर्व विदे-

शिष्यों को हरा, भारत की भूमि उनसे सारं कर दी थी, जिसपर गुस्तों का साम्राज्य लड़ा करना सुगम हो रहा। उन्होंने वाकाटकों और गुतों को समुद्रगुप्त ने उत्थाप के काने। नागों ने एक आर श्रवनी सारी शक्ति लगा कर, अपने विविध राज्यों की शक्ति एकत्र कर उसका सामना किया, परन्तु श्रवनितरय समुद्रगुप्त ने 'उन्हें मिट्टी में मिला' दिया। अपने दिव्यिजय की नीति में उसने चाणक्य के उस सिद्धान्त का परिवोशण किया जिसमें लिखा है कि पढ़ांती स्वाभाविक शक्ति होता है, 'प्रकृत्यमित्र', जैसे विल्ली चूहे की, सिंह मृग का, एक दूसरे का आहार है। समुद्रगुप्त आरविक राज्यों को जीत दक्षिणपथ का और बड़ा और बहाँ के राज्यों को भी उसने तहत नहर कर डाला। दूरस्त होने के कारण उनकी उससे स्वाभाविक शक्तियां थीं, इससे उसने उनसे उनकी भी तो छीन ली पर मेदिनी लौटा दी। धर्मविजयी नृप का शाश्वतकाल से सम्बन्धित बड़ी आचरण चला आया था, धर्मविजयेनृपता जो पढ़ोसियों को अंशना परन और प्राकृत्य शक्ति समझता था।

मुझे समुद्रगुप्त की यह दिव्यिजय विशेष प्रकार से याद है, क्योंकि इस दिव्यिजय की तालिका उसी स्तम्भ पर दी हुई है, जो आज भी मेरे आँगन में लड़ा है। वैष्णव का जीवन विताने वाले समुद्रगुप्त के लिए यह उत्तित ही था कि अपनी सूनी लड़ाइयों का दृतान्त वह उसी स्तम्भ पर सुनियाये जिस पर शाति और प्रेम के उपदेश कभी अशोक ने खुद बाये थे। अशोक ने न केवल मनुष्य का वध और विशेषकर साम्राज्य निर्माण के अर्थ मनुष्य का वध दृष्टित घोषित किया था वरन् अपने साम्राज्य से पशु-पक्षियों तक का वध उठा दिया था। उसी स्तम्भ पर जिस पर मानवता के उत्त अद्भुत पोषक ने अपनी प्रजा के प्रति पिता के-हे उद्गार निकाले थे, समुद्रगुप्त ने अपने लाल कस्तियों का इतिहास छुराया। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पिता की विजयों का लाँता उसी पैतृक नीति

से ही बारी रखा। बंगाल से बाहीक तक उसने एक कुलौंचि भरी थी और मेरे ही पढ़ोल में कीशाम्बो को उसने भी पिंडा की ही भाँति दक्षिण और पश्चिम की ओर प्रसार का केन्द्र माना था। कौशाम्बी बास्तव में पश्चिम से पूर्व जाने वाले और उत्तर से दक्षिण जाने वाले वाणिकरथों की सन्धि पर खड़ी थी और यद्यपि मैं 'सम्भवतः अरनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण राजनीतिक केन्द्र न बन सका, कौशाम्बी उजड़कर भी सदा बनी रही।

गुप्तों के कमज़ोर हो जाने पर और विशेषकर हृष्णों की चोट से गुप्त साम्राज्य जब टूट कर खिल गया तब मौखियों ने कश्मीर में अपनी राजधानी कायम की। किर तो शक्ति के लिये उनमें और पिछले भगव गुप्तों में जो कश्मकश हुई वह असाधारण थी। कभी एक विजय दुश्मा, कभी दूसरा और मेरा समीक्षक भैशान उनकी निरन्तर टक्करों का केन्द्र बन गया। आखियों चोट मौखियों को उनके सर्वनाश से फ़हले कुमार-गुप्त तृतीय ने ईशानबर्मन् मौखियों को मेरे ही भैशान में हरा कर दी थी। एक के बाद एक गुप्त राजा मेरे ही संगम पर जलाये गये और मैं कुछ काल तक किर भी उनके राज्य में बनी रही।

परन्तु पिछले गुप्तों का राज्य टिकाऊ न हुआ और भगव की सीमायें निरन्तर संकुचित होती गईं। अन्त में दृष्टि के उठते हुये शौर्य ने उनको सर्वथा प्रस लिया। शशांक और देवगुप्त ने अपनी उभ्मिलित शक्ति से कश्मीर का विजय किया था। मौखियों के सर्वनाश की कथालक्षियां उन्होंने ही की थीं और जब शशांक बोधगया के बोधवृद्ध को काटता, उसकी ज़हों पर अग्नि रखता पश्चिम की ओर बढ़ा तब तो मेरा अन्तर्यवट भी एक बार समूल काँप उठा, परन्तु गोद दृशति का यह आचरण बस्तुतः अन्तर्यवट की रहा के लिये ही था। देवगुप्त मालवा से उत्तर की ओर और शशांक गोद से निकल कर पश्चिम की ओर बढ़ा था। कौशाम्बी के बीराहे पर दोनों मिले थे और दोनों ही ने परस्पर

सहायता का संकल्प कर मेरे संगम पर स्थान किया और अपनी सन्धि का साक्षी विवेदी को बनाया ।

उनकी लेनावें मेरी प्रशस्ति लिकता भूमि पर जब आतुरनाव से परस्पर आलिंगन में गद्द हुए तब स्थिति मुझे भी कुछ सुख निला, परन्तु कुछ ही काल बाद जब मुझे महोदय के व्यंत का सन्देश मिला और उस पिनीनी हस्ता का, जिसमें हर्ष के भाइं राजवर्द्धन को मार, गोदाविमति और मालवा नरेश ने अपने हाथ रखे थे, तब मुझे अपने जल से ही एक बार शूषा हो उठी ।

कुछ ही काल बाद हर्ष ने मालवा और गोद दोनों पर अधिकार कर लिया और मैं मागधी के हाथ से उसके हाथ में चला गया । चीनी यात्री हेनेसिंग ने मेरे नगर का विशेष वर्णन किया है । मेरे संगम का भी और उसके कोण में कैले उस सिकाता भूमि का भी, जिस पर चिरकाल से मुझुओं की अनन्त संगति होती रही है ।

कझोज में अपनी शक्ति और ऐनव का प्रदर्शन कर बालश तार्किंग का अपने विधान से मुँह बंद कर जब हर्ष अपने नित्र चीनी यात्री को लिए मेरे संगम पर आया तब देश के दरिद्र वर्द्धे उमड़ पड़े थे । कुम्भ का भेला प्राचीनकाल से वहाँ सगता आया था, परन्तु जिस समारोह से हर्ष का महामोहपरिषद वहाँ होता, उसकी शान और ही थी । पाँच वर्ष तक निरन्तर हर्ष का साम्राज्य काप भरा जाता । पाँच वर्ष तक प्रान्तों की पृथ्वी गाय की भाँति दुही जाती । पाँच वर्ष तक साम्राज्य के राजपुरुष जनता से सूर्य के अनन्त करों की भाँति कर उगाहते रहते । पाँच वर्ष तक देश के किलान पक्सीना बहा कर भूमि से अब उत्पन्न कर आधा भाग अपने राजा के पारलौकिक कल्पाय के लिए प्रदान करते रहते । पाँच वर्ष तक निरन्तर विशिष्ट अपने बायिज्य का विशिष्ट नाग राजा को

सौंपते रहते और राजा तथा असीम औदार्य से वह धन एक दिन अपनी यशाग्नि में आहूत कर देता ।

इस प्रकार के धन यह की यह छठी आवृति थी, हर्य के धार्मिक उपकर का यह तीव्रता वर्ष, प्रजारैजन के कर्तव्य पर शाश्वत व्यंग स्वरूप राजा का यह लिलाशय धर्माचरण । साम्राज्य के प्रान्तों से गातक अपना धन-भेंट लिये नेरी प्रशस्त सिकता भूमि पर उपस्थित हुये । मारुडलीक और लानन्द प्रभु के इस देवकार्य में योग देने, धन जन लिए वहाँ पहुँचे । भिन्न राजा, लम्बन्धी नूरति अपना राज्य भार प्रतियोग पर छोड़ रखोरहार लिये नेरी बालुका भूमि पर आ उतरे । पंचवर्षीय परिषद में हर्य का यह दानकर्म विशेष मनोयोग से होता था और इस अवसर पर चौकि विदेशी यह अदालु यात्री दर्शक के रूप में उपस्थित था जो चीन के ओमानों को हर्य का यह उदाहरण बढ़ाने को अधीर हो रहा था । विशेषतः उत्तर महोस्तव की सीमायें बढ़ गईं । उसका प्रभाव विशेष रूप से बढ़ना हर्य के लिये इस ही गया ।

अमरा और ब्राह्मण, जैन और निर्बन्ध, खटिल और विरागी, कंगाल और निखलगे, अपाहिज और नंगे लालों की तादाद में उत्त अनर्जित धन राशि को लेने देश के फोने-कोने से दौड़ पड़े । और वह धन राशि जो अनेक प्रकार से मान और अपमान के जरियों से, कष्ट और द्रेरणों के साधन से, अपहृत हुई थी वह भी उनके हाथों में जाने के लिये लालाक्षित हर्य के विदरण की प्रतीक्षा कर रही थी ।

वितरण आरम्भ, हुआ और वितरण के पूर्व देवताश्रों की प्रतिष्ठा और उनकी उपासना शुरू हुई । पहले दिन बुद्देव की स्वर्णप्रतिमा पवराइ गई, दूसरे दिन द्यूविदेव की, तीसरे दिन ईश्वर देव (शिव) की । पहले दिन अनन्त धनराशि, रुक्मिंचन उत्त भूर्ति पर चढ़े और जितना धन पहले दिन बुद्ध मूर्ति पर चढ़ा, उसका आभा दूसरे दिन हर्य

मूर्ति पर चढ़ा और उसका आँखा तीसरे दिन शिव मूर्ति पर। हर्ष स्वयं चौदू था। उसके पिता, पितामह सूर्य के उपासक थे और सम्बन्धी शायद शिव के।

किर वितरण का आरम्भ हुआ। ब्राह्मण और अमच्छ, मैन और निर्गन्ध, कंगाल और निलम्बने, अपाहिज और नंगे, बछ और द्रव्य दाई महीने तक निरन्तर पाते रहे। पचहत्तर दिनों तक लगातार अदृढ धनवर्षी होती रही और हर्ष धर्म द्वारा इतना प्रेरित हुआ कि उसने कोप में तो कुछ नहीं ही छोड़ा, अपने शरीर के बजाभूतण भी उसने दान कर दिए और दृढ़न राजधानी से पट्टवुगल माँग धारण किया।

मैने सृदियों भारत की धनी और कंगाल जनता देखो है। भारत की धनी और कंगाल जनता चिरकाल से निरन्तर मेरे संगम पर आती रही है। असीम वैभव के साथ अनन्त अनन्त गरीबों को भी मैने अपने जल प्रसार में गोते लगाते देखा है और मैने उह कंगालधन पर ज्ञान प्रकट किया है, आँखूदाले हैं। हर्ष का यह धन वितरण देखकर मुझे बार बार आश्चर्य हुआ है कि क्या सचमुच देश में इतना धन है? परन्तु निरचय देश में यदि इतना धन न होता, यदि वह सहल करों से छोन कर हर्ष के कोप में एकत्र न हुआ होता तो यह समाट अपने केवल दो दाखों से किस प्रकार इतनी धनराशि उलीचता और व्यों इतने इतने कंगाल मेरे संगम पर उह लूट की प्राप्ति के लिए दीड़ पहते? देश में इतने कंगाल किर होते ही क्यों?

जानता हूँ, सही है, देश में सचमुच इतना धन नहीं, प्रजा सुखी नहीं, जनता के पाल जो कुछ है वह भी भुरक्षित नहीं। देश में अच्छी भली सहकें नहीं, लुटेरे उन पर चलने वालों को दिन दहाड़े लूट लेते हैं। समाट का विदेशी निप्र स्वयं हेनलांग अनेक बार उन सहकों पर लुंट गया था, परन्तु समाट अपने प्रमुख रक्षण कर्म को भी पूर्णतः

न निभा सका । और अब वह अपनी मनःस्तुष्टि, यशःलाभ, स्वीकृतः-
मुख्य और परलोक निर्माण के लिए यह वितरण कर रहा है । राजा
इतना अनुत्तरदायी, इतना गैरजिम्मेदार, कर्त्तव्य से इतना उदासीन,
जीवन के सत्य के प्रति इतना उदासीन भी हो सकता है, यह मैंने आज
जाना । हर्ष का अन्त भी कुछ मुख ते न हुआ । दान और धर्माचारण
के बाबजूद भी वह निःसन्तान भरा और उसका साम्राज्य वितर वितर
हो गया । उसके लिहासन पर मन्त्री ने अधिकार कर लिया । अनेक
लगातार युद्धों से, अपरिमित वितरण से, प्रवैचक और्दाय से कोष कप का
रिक हो चुका था और जो उसने थोड़ा बहुत बचा था, उसे इस
नए विज्ञव ने लूट लिया । हर्ष की स्थाति, उसकी कीर्ति और सहदयता
उसके साथ ही मेरे संगम की बालु में सो गई ।

हिर मैं कन्नीज के नव प्रतिष्ठित राजकुल के शालन में आया ।
यशोवर्मन् कौन था, मैं व्यवं तही सही नहीं कह सकता और उसने जिस
राजकुल का कन्नीज में आरम्भ किया, वह भी कुछ लम्बे काल तक
प्रतिष्ठित न रह सका । परन्तु यशोवर्मन् को मैंने जाना । दो कारणों
से मैंने उसे जाना । एक तो इस कारण कि उसका, दर्जारकृदि जो संस्कृत
साहित्य का असाधारण निर्माण है, गया है, मेरा उपासक था और
अनेक थार मेरे संगम पर उपस्थित होकर उसने वैदिक धर्मों का
उद्घोष किया था । दूसरे इस कारण कि जब कश्मीरी विजेता लक्षितादित्य
मुक्तापीद ने कन्नीज पर आक्रमण कर, उसे जीत लिया था तब उस
विजेता ने अपने पापों के शमन के लिए, मेरे संगम पर स्नान
किया था ।

यशोवर्मन् के बाद आयुधों का कुल कन्नीज में प्रतिष्ठित हुआ
और मैं उनके शालन में आया । चक्रयुध, रन्द्रायुध और वज्रायुध
नाम मात्र को राजा ये । ज्यापीद ने एक को परास्त किया, अमपाल

ने दूसरे दो । कमजोरे आकृमकों के आकर्षण का केन्द्र होती है । कबीज की दुर्बलता ने राजनीतिक साहसिकों को अपने दैनिक से आकृष्ट किया । पाटलिपुत्र का गौरव कुछ काल से कबीज में आ चला था और उसको स्थायत्त करने के लिए भारत के अनेक राजकुल सालाहित रहने लगे थे । अरना प्रनाव कबीज पर स्थापित करने के लिए गुर्जर, प्रतिहारी, पाली और राष्ट्रकूटों का त्रिवर्गीय तंत्र शुरू हो गया था । राष्ट्रकूटों ने उच्चरिता से प्रतिहारी को भगा कर पद्मनीषि में शरण लेने को चाह्य किया, प्रतिहारी ने जोधपुर की ओर से उठ कर कबीज की कमजोर राजनीति पर निर्मल चोट की । पाली ने धर्मपाल से उठ कर युद्ध कबीज की दुर्बलता से, कुछ प्रतिहारी के प्रति हर्षि से, कुछ अपने साम्राज्यरक्षीय गौरव में टैट लगने से, पश्चिम की ओर कदम बढ़ाये । धर्मपाल ने चक्रायुद को हराकर अपने मनोनीत इन्द्रायुध को कबीज की गही दी और अपने इस उत्तर्य के अर्जन के पहले छोड़ होते हुए भी ब्राह्मण की निष्ठा से शशाक की भाँति, उसने मेरे संगम पर स्नान किया था । परन्तु गंगा-बनुना के दोशाव में इन्द्र तृतीय राष्ट्रकूट ने अब उसकी राह रोकी, तब उसकी चपेट से आकूल धर्मपाल को भागने की राह न मिली । छत्र और चैंबर और अपने लीनो अदेय राजचिह्नों को पीछे छोड़ जो वह भागा तो काशी में ही जाकर रुका । इन्द्र ने मेरे तमीमवर्ती देश को लूट कर बीरान कर दिया । मेरे नगर की भी कुछ कम अधोगति न हुई क्योंकि दूसरे की आजादी कुचलनेवाला धर्म और अर्थमें के केन्द्रों से कभी प्रभावित नहीं होता । उस भयानक व्यंग पर मैं हँसा जब इन्द्र ने मेरे ही नगर की सूट का एकांश मेरे संगम पर चढ़ाया और मेरे पुजारियों को उसका कुछ भाग दान किया ।

प्रतिहारों ने अन्ततः कबीज पर अधिकार कर लिया और मैं एक नए साम्राज्य का नगर हुआ । अन्त में मुझे प्रियोचन पाल के मारने

पर उससे नजात मिली। इतर शीन विपुरी के कनचुरी गाँगेयदेव ने मेरे नगर पर अधिकार कर लिया परन्तु वह अधिकार किरण्यार्द्द न हो सका और प्रतिहारों ने फिर कुछ काल बाद मुझ पर अपना स्वत्व जमा लिया। उनके बाद गहडवाल आये—विजयचन्द्र और विशेषकर अन्तिम जयचन्द्र। विजयचन्द्र ने अमाधारण निष्ठा से मेरा निर्माण किया। काशी और मैं, दोनों उसके राज्य के विशिष्ट नगर थे। काशी तो उसकी वूसी पूर्व की राजधानी भी थी, परन्तु मुझे भी उसने कुछ कम गौरव न दिया। और जयचन्द्र का भी मेरे ऊपर निम्नतर अनुमद था रहा। जयचन्द्र जब जश मेरी ओर से होकर गुजरा, जब वह उसने मेरे नगर में डेरे डाले, तब तब मैंने उसकी शक्ति, नीतिमानता और औदार्य का परिचय पाया। भारत में गहडवालों का प्रतिनिधि और कबीज का स्वामी होने के कारण वह सम्माटपदीय था। दिल्ली तब कबीज के गौरव का स्वर्ण देखती थी और उसके राजाओं को गहडवाल रुग्णियों ने सर्वथा मारडलिक राजा माना था। इतिहास में किस प्रकार जयचन्द्र के प्रति कालिक पुत्र गई, मैं नहीं बता सकता। परन्तु इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि योहो ही दूर पर चैंदवारे के मैदान में, जब उस अस्ती वरत के बूढ़े जवान ने अपने मुट्ठी भर वीरों के साथ यहाँकुहीन गोरी का सामना किया था और लड़ते लड़ते वीर नति पाई थी, तब उसके रक्त के अस्ते जलकणों में भिजित हो जाने से मैंने अपने भाग्य को सराहा था। मेरी त्रिवेणी की अन्तःसिलिला सरत्वती ने मुझे मेरे कान में यह कथा कही थी, जब भारतीय कथाओं का बीर पृथ्वीराज पठानों से भागा और उसके टट पर पकड़ा जाकर नारा गया था और मैं इस ऐतिहासिक घटना से क्षुभ्य दोकर, अल्पमुर्द हो गया था।

अब हिन्दुओं का गौरव और उनकी निष्ठा मेरे रक्षा न कर रही

यी, न कर सकती थी। उनकी राजनीति श्रव स्वयं विपक्ष हो गई थी और अन्तर्वेद में पठानों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। गहड़वालों की शक्ति टूट जाने के बाद मैं लुटा और लूट लुटा। जिन पठानों ने काशी के मन्दिरों को विघ्नत कर, वहाँ की धन राशि से अपने कारबों की गति शिखिल कर दी थी, उन्होंने अपने राह में पहने थाले मेरे नगर को भी अद्भूता न छोड़ा था। परन्तु मेरी यह लूट पहली न थी। कमोज के गजनवी ने जब लूटा, तब भी मेरे ऊपर लक्षोट के दो चार हाथ पड़े थे और उसके पहले उसी के पंजाब के शासक नियमितगीन ने भी मुझे लूटने में कुछ कोर कसर न रखी थी। किर भी अबकी जोट निराली थी योकि इस बार मेरे ऊपर केवल लूट ही तक न बीती परन्तु विदेशी आधिकार्य भी कायम हो गया। कुतुबुद्दीन एक मेरे नगर से धूम कर खालियर की ओर मुड़ गया था परन्तु बस्तियार तो मुझे रीढ़वा हुआं बंगाल जा पहुँचा। तब से मेरा इडोस चराचर अक्षर के शासन काल तक दिल्ली की सल्तनत का एक विशिष्ट सूत्र बना रहा, जिसका केन्द्र मेरे पास ही कहा में स्थापित हुआ।

कहा की राजनीति का इतिहास मेरा इतिहास है। और कहा का इतिहास क्रमिक विद्रोहों का इतिहास है। जब तक कि अकबर ने मुगल शासन की शक्ति भारत में दृढ़ न कर सी, तब तक लगातार इस सूत्रे के हाकिम दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध आगायत के भाए उठाते रहे। कतलग खाँ, अखलात खाँ, मब्कुमलिक, मिर्जा, अलाउद्दीन और पिछले दिनों में खुद उक्तीम और खुर्म ने इही आधार पर अपनी शक्ति का अन्दाज़ लगाया।

चाचा जलालउद्दीन की कृति का जो अदला भतीजे अलाउद्दीन ने कहा में दिया उसकी जोड़ का दृष्टान्त भारत के इतिहास में नहीं मिलता। जलालउद्दीन अपने शक्तिमान भतीजे की जीतों से परिष्क

हो उसके स्पर्धा-विदान के नीचे खड़ा हुआ और जब उसका प्रेम से भय हृदय भटीजे की छाती से लगने लगा, जब उसकी आँखें आनन्द के आँख से भर चलीं, जब उसके हाथ भटीजे की पीठ पर प्यार से फिरने लगे, तभी अलाउद्दीन ने उसकी छाती में खंबर छुतेह दी ! मैंने वह कृत्य अपनो आँखों देता, कठार की लप्प मैंने अपने आनों सुनी ।

सल्लीम ने भी अपने पिता से यही बगावत की । मेरे ही किले में उसने अपने नाम के सिर्फ दलवाये । मेरी ही आया से उठ कर अपने बुन्देले सहायक की मदद से उठने अपने पिता के बड़ीर आँखें और प्रिय बन्धु अबुलक़ज़ल की हत्या कराई थी ।

हाँ, मेरे पास अप एक किला भी हो गया था । उस किले को त्वर्य अकबर ने बनवाया था । प्रयाग यद्यपि अब भी मेरा नाम धार्मिकों में घलता था परन्तु कुछ काल से मुझे लोग इलाहाबाद या इलाहाबाद कहने लगे थे । इलाहाबाद मेरा नया संस्करण था और मेरे इस नव निर्माण में स्वयं अकबर दा विरोप हाथ था । उसने जो मेरे संगम पर विशेषदः यमुना के तीर अपने किले का निर्माण किया उसी के बारे और अधिकतर यमुना के टट पर इलाहाबाद की आवादी बती ।

परन्तु इससे पहले कि मैं अपने किले के निर्माण के प्रिय मेरे कुछ कहूँ, बीच की उन सदियों के इतिहास पर भी मैं कुछ कहना चाहूँगा जो मैंने अरनी आँखों घटते देता और जिसे मैंने स्वयं सहा ।

मेरे संगम के उत पार पूरब की ओर झेंडी है जो कभी चन्द्रवर्शीय पुरुखा की राजधानी प्रविष्टान के नाम से प्रतिदृष्ट था । ऐसा पुरुखा अनेक प्रकार से आर्य लंस्कृति का कोर रमझा जाता है । उसकी राजधानी कृष्ण और किल प्रकार बिनष्ट हो गई यह कहना कठिन है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कालान्तर में किसी प्रकार भगों का गणतन्त्र इस

प्रान्त के पूर्वी भाग पर कायम हुआ जो सदियों अपनी न्यायप्रिवक्ता और नागरिक स्वतंत्रता के लिए इतिहास-प्रतिद दुआ। मुद्दे के पहले भगों का शासन विस्तार प्रतिष्ठान से शुशुमारीरि तक—भूंकी से शुनार तक—या। उदयन से कुछ काल पहले वस्तों ने भगों को जीतकर उनका प्रान्त अपने शासन में भिला लिया। तब से वह विषय उदयन के उत्तर-विकारियों के हाथ में तब तक बना रहा जब तब मगध की अद्वीती हुई पूर्वी सीधा ने उसे निगल न लिया। भगों का आस्तेस्त मिर स्तो गया और यद्यपि पूर्वी गणतन्त्रों का विशेष उत्कर्ष आगली सदियों में हुआ। भूंकी का गणतन्त्र प्रताप सदा के लिए इस धरा से मिट गया।

सिर भी प्रतिष्ठान का नगर सर्वथा विलक्ष्य न हो सका और यथारि उसका राजनीतिक प्रभाव जाता रहा, वह नगर सिर भी प्रायः हजार कर्त तक पूर्वास्त्र दंस्कृति का केन्द्र बना रहा। नवीं सदी ईर्ष्यो तक और पीछे तक उसकी सास्कृतिक सत्ता बनी रही और वह विद्या तथा दर्शन का केन्द्र मान्य माना जाता रहा। नवीं सदी में शंकर और कुमारिलभट्ट दोनों वहाँ आये और दोनों ने एक दूसरे से बहाँ साक्षात्कार किया। कुमारिल पूर्व बंगाल से आए थे, शंकर दक्षिण मालावार से। कथा प्रतिद है कि नगर में प्रवेश करते ही शंकर ने जब एक बालक से पूछा कि वह कौन है, तो उसने भट्ट अरने तत्व की दार्शनिक रूप से व्याख्या करते हुए जो इश्वर या उसके पिरोध में कहा—“नाहम मनुष्यो न च देव-यहो न द्राक्षण्यं त्रिवैश्यशूद्दः” और शंकर चकित रह गए थे।

भूंकी का उसके पश्चात् निरन्तर अवसान होता गया और कुछ काल बाद इस्लाम की फौजों ने जो मेरा हाल किया वही उसका किया। तीर्थराज होने के बारण में तो फिर भी उठ लहा हुआ परन्तु भूंकी फिर न उठी। इतना जरूर है कि इस्लाम के शासनकाल में वह फिर भी महत्व का स्थान सभका जाता रहा और दिल्ली के मुस्लिम लगातार

उसे जागीर के रूप में अपने अफसरों को देते रहे। अकबर जब पठने से लौटा और गुजरात की यात्रा से निश्चिन्त हुआ तब एक बार संगम पर लड़े होकर जो उसने अपने चारों ओर देखा तो स्थान की मनोरमता और आकर्षण से चकित रह गया। उसके मन ने हुआ कि राजनीतिक दौर्व पैच के रूपाल से किले के लिए इत्त संगम से बढ़कर दूसरा स्थान नहीं हो सकता। उसने अपने राज बगैर किसी पर जाहिर किए अपने भी मुंशी से पूछा कि आक्षयात का इलाका किसके बिच्चे है। मालूम हुआ कि है तो वह कड़ा के अन्तर्गत परन्तु सापने की भूमि की बागीर एक राजा के जिम्मे है।

अकबर ने राजा को हुरन्त बुला भेजा। राजा ने जब अपना बुलावा सुना तो वह धबरा उठा। उसने सोचा कि अकबर के आने पर जो वह उसके इस्तकशाल के लिए नहीं गया, नजर-भेट नहीं की इससे शायद वह नाराज हो गया है और अब उसकी खेत नहीं। धबराकर उसने अपने सलाहकार से बचने का उपाय पूछा। सलाहकार ग़ज़ब की रूप का आदमी था। उसने कहा एक नाव इंट चूने से भर कर अकबर की नज़र करो, बादशाह की नज़र करो वह सुश हो जाएगा। राजा कुछ भरत्ता उठा पर अपने सलाहकार की सलाह पर उत्ते हमेशा से भरोसा रहा था। नाव में इंट चूना लाद कर वह तंगन में बादशाह के पास जा पहुँचा। बादशाह के सामने जब वह हाजिर हुआ तब उठको इस प्रकार आते देख उहने उत्तम कारण पूछा। राजा फिर धबराया और उसने कहा कि मैं इस दरह आने को तैयार न था मगर होप सारा मेरे सलाहकार का है। बादशाह ने उसको अभय प्रदान करते हुए सलाहकार को झट बुलाने का हुन्न दिया। सलाहकार आया। तब बादशाह ने पूछा, “तुमने मेरे मन की बात कैसे जान ली?” “इसलिए कि अगर बादशाह के संगम पर लड़े होने पर वह बाब न स्फुटी तो मुझे उसकी

अङ्ग में शक हो जाता। जहाँपनाह के से विचलण बादशाह के मन में यहाँ लड़े होकर मुमकिन न था कि ऐसा न थके।” उस्तर मिला। अकबर ने सलाहकार को तत्काल अपना दरबारी बना लिया। वह शीर्षक ले था। शीर्षक तबसे मरने तक भराचर अकबर का अभिज्ञ हृदय मिथ भाना रहा। उसकी बादशाह के साथ काफी चुहल होती रही और अन्त में उसी की सेवा में बागी पठानों के तिलाक लड़ता हुआ राजा शीर्षक मरा।

झौंसी में जहाँगीर के शासनकाल में भी राजनीति के कुछ पैतेरे हुए। खुसरू ने इसी स्थान पर पहले अपने उस अगावत के स्वप्न देखे जिसे उसने लादोर में बाहर चरितार्थ किया। वद्यपि पिता के सामने उसकी एक न चली। सलोम, जिसने खुद अकबर के विशद झौंसी में विद्रोह के कारब्योंत किए थे, स्वयं इस समय दिल्ली के तस्त पर था और उसने बेटे को पकड़ कर फैद कर लिया। किर तो उसे अन्धा करने की जिम्मेदारी जहाँगीर के तीसरे बेटे खुर्रम को गिलो और खुर्रन ने उते ज्योतिहीन करने के साथ ही जीवन से ही विदा फर दिया। इस प्रकार अबने तल्लनशी होने के राह से पहला काँटा उलाह पैका। और जब परवेज को भी उसने किनारे लगा दिया तब वह पिता के विशद खुत्समखुत्स। उठ लड़ा हुआ। उसकी मुठभेड़ बाप से पहले तो पंजाब में हुई, पर जब वह दक्षिण भाग और पूर्व आकर विहार-द्वारा पर कब्जा कर, यिट कर वह किर दक्षिण की ओर लौटा तब झौंसी के मैदान में गंगा बमुना के आरपार शाही फौजों के साथ उठको अनेक घनी चाठं हुईं। उसके तेज और जवाँमदाँ से कुछ बक्क के लिए तो जहाँगीर स्वयं ढर गया था और वह ढर भूठा भी न निकला क्योंकि कुछ ही दिनों बाद जब जहाँगीर शासन से उदालीन हो चला और खुर्रम ने यहाँरी में अपनी साल जमा ली तब यह किर उधर

पहुँचा और अबकी उसने जहाँगीर, नूरजहाँ दोनों को फैद कर लिया । दिल्ली का तख्त अब उठका था ।

आज का इलाहाबाद अकबर का बसाया हुआ है, यह मैं पहले कह चुका हूँ । यह शहर यमुना के किनारे दूर पश्चिम तक बढ़ कर खड़ा हुआ । पूर्व में संगम के पास ही यमुना के पानी को छूता लाल पत्थर का बह विशाल किला खड़ा हुआ जो इधर के बैदानों में अपनी मजबूती और राजनीतिक महत्व के कारण असाधारण था । अकबर ने न केवल यह नगर बसाया बरन् उसने कहा से सूचे का केन्द्र इटा कर इलाहाबाद में ही कर दिया । अब इलाहाबाद न केवल एक बड़ा नगर था बरन् विहार के पश्चिम में दिल्ली सल्तनत का उभसे बड़ा मुकाम । जीनपुर का रुद्धा अधिकतर अब उसे मिला ।

तैमूर का बराना औरंगजेब के साथ नष्ट हो गया परन्तु नष्ट होते होते एक बार उसने मेरे नगर में इल चला दिया । औरंगजेब जो खुद अपने ईमान और भजहब का असाधारण तपस्ती था, दूसरे धर्मों का कहर शमु भी था । मेरे नगर को बराबर करने का उसे विशेष अधेर है । मेरे अनेक मन्दिर उसने जर्मरिज करा दिए और भूसी का बचा खुचा बीचन भी उसने सदा के लिए नष्ट कर दिया । यद्यपि शुजा की हार औरंगजेब के गढ़ी नशीन होने में कुछ कम कारगर न साक्षित हुई और शुजा को औरंगजेब के देटे ने मेरे ही नगर के पश्चिमी कोने पर परास्त किया था । राहगुजा भागा, पहले विहार, फिर बंगाल और अन्त में अनाम की ओर जहाँ के बर्बरों ने उसे सपरिवार मार डाला ।

धीरे धीरे काल के परिवर्तन से मैं कमनी के गज में दालिल हुआ । कमनी का राज्य जब पश्चिम में मेरे उमीप पहुँचा तब तक उसने दक्षिण और पूर्व में अनेक गढ़ जीत लिए थे । अहोवर्दी खाँ के नाती तिराजुदोला का प्लासी के पुढ़ में नाश कर जब ह्लाइप ने

मीरजाहर को बंगाल की गही दी तभी शाहआलम दिल्ली के लख्त पर दैठा । शाहआलम बुजदिल और महत्वाकांक्षी था, पर चैकि बुजदिली और महत्वाकांक्षा साथ नहीं रहते उसे कभी अंग्रेजों, कभी मराठों, कभी अवध के नवाबों के हाथ की पुतली बनकर रहना पड़ा । दालज कुछ ऐसी थी कि आज उसने अंग्रेजों से मुलह की, कल मराठों से, परसों जाटों से । अवध के नवाब जो कानूनन दिल्ली सल्तनत के दबेदार थे धीरेधीरे काफी मजहूत हो गए थे और जहाँ वे एक और रुद्देलखण्ड से लिराज लेते थे वहाँ दूसरी ओर वे जौनपुर और बनारस तक के शासक थे । मैं भी तब अवध के नवाब के ही अधिकार में था । अवध का नवाब शुजाउद्दौला राजनीति में बेजोड़ था । उसने ठग कर शाहआलम को अपने हाथ में कर लिया, परन्तु इसके साथ ही मीरकासिम की मदद में जब उसे बक्सर की लहार में हार कर अवध भागना पड़ा तब शाहआलम को भी अपनी दयनीय परिस्थिति का आभास मिला ।

शाहआलम आकर मेरे नगर के खुसरोबाग में ठहरा । यह बाग एक जमाने से दिल्ली के मुल्तानों का मेरे नगर में किला बनने के पहले देरा चला आता था । किंतु दादराहो ने इसमें पनाह ली, किंतु दबेदारों ने इसमें देरे ढाले । असल में अरुबर के हिन्दू स्वभाव ने अनेक बार मुक्कों सँभालने, सँचारने का प्रयत्न किया था और उसके परिणते दारा ने तो उननिषदों का अनुवाद भी नेरे नगर के पंडितों के ही जिम्मे कर दिया था । दारा अपने समय में दारागढ़ में तो एक बार ठहरा ही था । इस खुसरोबाग में भी उसने कई रातें बिताई थी । शाहआलम ने इसी बाग में अपने बेटे दिन काटे जो क्षेत्र से किसी तरह कम न थे और जिनके अन्त में उसे अंग्रेजों को विहार थ बंगाल की दीवानी बलशनी पड़ी । तब बंगाल का गवर्नर जनरल हुआ था और मुझे बह समारोह

आज भी याद है जब उसने उस दीवानी की सनद मेरी जमीन पर दिल्ली के बादशाह से हासिल की ।

ऐसे ऐसे कम्यनी का राज बढ़ता गया, ऐसे ऐसे उसके पन और प्रभाव की तुंडि होती गयी वैसे ही ऐसे उसके अपसरों के दिल में बेदमानी पर करती गई । गवर्नर जनरल से कम्यनी के अदने खिपाही तक सब बेदमान थे और सब ने हिन्दुस्तान की नौकरी लूट की उम्मीदों से की थी । आखिर किसी न किसी दिन इस लूट और हड्डप की नीति को मुँह की सानी ही थी और जब वह परिस्थिति अस्त थी तो उठी, और स्वतंत्रता की भाग्यनाथों ने साथ ही भारतीयों के हृदय में घर किया तब देश में, विशेषकर उत्तरी भारत, संयुक्त प्रान्त, बिहार और बंगाल में विद्रोह की वह आग भड़की जिसे सन् ५७ का गदर कहते हैं । गदर का आरंभ मेरठ से हुआ था । आग बढ़ती-बढ़ती अवध और घनारस, आरा तक आ पहुँची । मुमकिन न था कि मैं हाथ पर हाथ घरे बैठा रहता । मैंने भी वही आचरण किया जो और नगरों ने किया था । मैं भी विद्रोही हो उठा ।

मेरे लिये के अन्दर भी पद्ममनी कैली और उसके सेनियों ने भी आजादी के नारे तुलन्द किए । मेरे नागरियों ने जेश का फाटक तोड़ दिया और तीन हजार कैरी स्वतन्त्र हो गए । इन्होंने धावनी पर, किले और धाने पर हमला किया और इसमें सन्देह नहीं कि उनकी नजर जहाँ तहाँ ने शहर के भीमानों पर भी पहो । परन्तु मैं बहुत काल तक विद्रोही न रह सका । निरलतर धार्मिक भावनाओं से कुचले रहने के कारण मैं कभी इस प्रकार के जनआन्दोलनों में भाग न ले सकता था और शीघ्र अंग्रेजों की कुमक आने पर मुझे हथियार डाल देने पड़े । पर इतना लर्तर कहूँगा कि यद्यपि गदर के प्रति मेरी उदासीनता ने अधिकार में मुझे मार्य पर इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि मुझे विपत्ति करने

मेरे नगर के रहने और इलाके के जमीदारों का हाथ भी कुछ कम न रहा था। जिसे की अनेक बड़ी जिम्मेदारियाँ मार्की के रूप में जमीदारों को मिलीं। नगर के आज के अनेक रहस्य अपने उसी देशद्रोहिता से रहें रहे।

अंग्रेजों की जीत के बाद मेरा नगर भी कुछ कम तशहूर हुआ। जगह जगह फौजी कचहरियाँ खड़ी हुईं। जगह जगह न्याय के नाम पर लड़ाके छाँसी पाने लगे। चौक के बीच जो कहाँ बृद्ध खड़े हैं उनसे उनके बदले का हाल पूछो। सैकड़ों की तादाद में खलबाई उन पेहों से रस्ती से टाँग दिए गए। इस पर व्यंग के रूप में मलका बिक्टोरिया की दिवा का बरदान आया और एक्सेंड पार्क ने लाई कैरिग ने उसे बड़ी उशराता से पढ़ दुनावा। भारत और साथ ही मैं कमनी के शासन से निकल कर पार्लियामेंट की हुक्मत में आए।

जमाना फिर बदला। इन्दुस्तान ने आजादी का झाड़ा किर उढ़ाया और अब भी भी उसके साथ ही आजाद हूँ। मैंने सदियों देखी हैं, धार्मिकों को उशराता, बंककता देखी है, राजनीतिज्ञों के दौँबर्यें देखे हैं, देशभ्रेत्रियों के बलिदान देखे हैं और आज स्यादबाजारी भी देख रहा हूँ। आजादी के साथ ही आशा यो, इमानदारी और सत्य का तौदा होगा परन्तु जो देख रहा हूँ वह कभी से कुछ कम नहीं। इतना विश्वास है कि यह भी न रहेगा।

उसका अतीत खोलकर रख दिया तब अपनी शुमुप्ता अवस्था में भी कामना हुई कि कोई इलीमान मुक्ते भी खोर कर जगा देता और जाग-कर मैं अपने सदियों के इतिहास को किर याद कर पाती। सर जान के प्रधार ने मुझे किर चेतना दी और यथार्थ ने दिल और दिनांग सही नहीं मैं किर भी अपने उस अतीत को बिन्दू गुजरती दलचीरों की तरह मूर्तिमान कर रही हूँ।

संसार के उर्वर देशों ने दुर्दृढ़ वर्वर जातियों को बराबर आकृष्ट किया है और उसकी उचितता ही उसकी नोच सेट का कारण बन गया। भारत भी इस लिदान्त का शिकार बनने से न बच सका। बल्कुतः इस देश पर जिदने हमले हुए उतने दुनिया के किसी अन्य भूलैंड पर नहीं। और उन हमलों की पहली चोट मुझे सहनी पड़ी क्योंकि मैं भारत का मुख्य चिह्नदार थी। कार्येतिया और काइकोफ, खुराकान और तक्लामान, आमू और सीर दरिया और गोदी और चीन की ओर से बबंर रिसालों की धनक बार बार उठती और मेरे द्वार पर टूटती रही। आर्य और अनार्य, ईरानी और प्रीक, शह और कुवायत और अर्बत में हूश इन्हीं रास्तों से अपने खूनी नें लिए मेरे मैदानों में उतरे और एक को भी मैंने यिन जंग किए जाने न दिया। हाँ आम्भी का व्यवहार निश्चय मेरे व्यापार में एक अपवाद है जिसकी याद कर मैं आज भी अपनी इस उम्मीद दुनिया में अपने गीरवमय आवश्यों के शीघ्र सूत के आँखूं रो लेवी हूँ।

जब अस्त्रवेद के शब्द रखे जा रहे थे, जब आर्यों की कुमक पर कुनक इस भूमि को कुचलती जा रही थी, जब इद्याकों का केन्द्र अद्योत्या निरन्तर एवं पर सभे जीतती जा रही थी तभी राम के अनुज भरत ने गन्धवों की इस भूमि को अपनी धूरी के नीचे रीस दिया। भरत के पुत्रों को पञ्चाव का यह भाग भिला और गन्धवों का यह केन्द्र तक्लिला के नाम से सुलित हुआ। भरत के पुत्र तक्लिल ने मेरी नगरी की पहली



तत्त्वशिला

क्यामत के दिन सहो के उठने की बात कही जाती है। उठकी सच्चाई अब तक किसी ने न देखी पर आज जो मैं बगेर क्यामत के इह बीसवीं सदी में सर जॉन मार्शल की कुदाल से अपनी कम से निकल पही हूँ, यह सच है।

मेरा इतिहास ईसा पूर्व उच्चीसवीं सदी से शुरू होकर ईसा पश्चात् छठी सदी में समाप्त होता है। दाईं इजारवर्षों के इस दीरपत में मैं सात बार बसी और उजड़ी और अन्त में छठी सदी ईसवी में जो मैं उजड़ी तो सिर न बरी। ग्रीकों का द्वीप नगर भी छः बार उजड़ा और बसा था और जब पुलीमान ने उसके स्तर एक के बाद एक उलट कर

नीव ढाली और तब से अनवरत उस पर नहीं परते जमती-उखड़ती गंहे। ग्रन्थवाँ का उत्तर-प्रश्नचर्मा भारत के इतिहास के निर्माण में विशेष हाथ रहा है। अनेक बार उन्होंने इस भू-खड़क का नेतृत्व किया है। अनेक बार मेरे केन्द्र से काशुल और हिन्दुकुश त्रिक की भूमि शासित की है। अनेक बार सिन्धु देश से काश्मीर तक वा भू-खड़क मेरी ओर आदेश और आदा के लिए दाकता रहा है। उन्हीं गन्धवाँ ने रामायण काल में आर्य नेताओं के सामने आसाधारण कठिनाइयाँ उपस्थित कर दी थीं। राघव साम्राज्यवाद के विशद भगवत का पहला भरटा इसी देश ने लहा किया। इसी देश ने विश्वले समय में चन्द्रगुप्त मौर्य के मरते ही आजादी का नारा उन्नेद किया और मुशीम को मेरे नगर से बाहर निकाल दिया। फिर अशोक के बेटे कुशाल के शासन में भी इसने उस साम्राज्य से निकल जाने की कोशिश की जिस पर 'देश नामकीय विषदसो राजा अशोक' का 'प्रितुवद' शासन था। फिर उसके विश्वले साम्राज्य से अलग होने वाला रुद्रा भी गान्धारी ही का था। बार बार साम्राज्यों की रुक्त ने इस नगर पर अपना आतंक जमाना चाहा, बार बार इस नगर ने अपनी सीमाओं के अन्दर गण्डतन्त्र की स्थापना की।

सो गन्धवाँ का कियमाण्य कमठ फठोंर जीवन अपने अरमानों और स्वतन्त्रता की आकांक्षाओं के साथ विन्दा राष्ट्रवाँ को नजरों में लटका और राम ने भरत के नेतृत्व ने अपनी उंहप्री चोट की। विसु महानानन्द ने अयोध्या के आधार से उठकर देश पर देश लाँच समुद्र पर लंका के त्रिकूट के शिखर पर अपने डेरे ढाले थे, उसकी महत्ता के समझ इस गरीब देश का मजाल कि दृश्य भर ठहर सकता। उसे अपनी स्वतन्त्रता खोनी ही पही और तब भरत के पुत्र तद्वशील ने मेरी नीव में पहले पत्थर ढाले।

रामायण काल का इतिहास खुदूर का होने के कारण मेरी बृद्धी

आँखों से असम्पूर्ण दील पड़ता है। उत्तरके अनेक कालकाम सर्वथा अंधेरे में पड़ गए हैं और उनको देख पाना मेरी छूटी आँखों की सामर्थ्यके बाहर है। परन्तु महाभारत काल की घटनाएँ अपनी शक्ति और कूरता से आज किर मेरे सामने मूर्तिमान हो आयी हैं। गन्धर्वों का मेरा केन्द्र एक बार किर सभग हो चला था। राम के पाँच सौ वर्ष बाद ईशापूर्व, फलदृष्टी शताब्दी में किर मेरे नागरिकों ने इस भू-भाग में अपने शक्ति का साका चलाया और यद्यपि अर्जुन की दिग्विजय ने उनके ढाकने भी तोड़ दिए थे, निःसन्देह उनके हाथों से अभी कमल न छूटी थी। रुकुल के नष्ट हो जाने के बाद सदियों मेरे नगर में आजादी के गाने गाए थे। राष्ट्रव साम्राज्य के टूट जाने के बाद मैंने खुली हवा में साँस ली थी, परन्तु कुद्रओं के नए उठते राष्ट्राज्य ने किर एक बार मेरी आजादी का गला दबा दिया। परन्तु नेरी शक्ति द्वा अनुनान उन्हें या और जब महाभारत का युद्ध थिया तब कौरव-पांडव दोनों पक्षों ने मुके अपनी ओर से लड़ने के लिए आपनत्रित किया। नेरे लड़कों ने उस युद्ध में भाग लिया भी परन्तु निःसन्देह वह नेरी लड़ाई न थी, गन्धर्वों की लड़ाई न थी बल्कि साम्राज्यवादी दो कुलों के थे और उनमें से किसी की विजय में नेरी अनिष्टि न थी। अनेक बार चिन्मरथ और उसके सहकारियों ने अपने हस्तक्षायत्र से महाभारत के आर्य-बीयों को चकित कर दिया परन्तु आभागवता अन्तिम विजय किर उनके हाथ रही, और मेरी यह उनकी सेनाएँ किर आ धमकी।

हस्तिनापुर के इस पारिकारिक युद्ध ने सारे भारत को कुचल डाला। सारे भारत का रक्त इस युद्ध में बहा और कुछ काल तक के लिए यह सम्युद्ध धरा कंपाल हो गई। रक्त विग्रह दिग्विजय और अस्तमेष्ट द्वाया, जन-स्वतंत्रता कुचलने वाले पाण्डवों ने किर एक बार उत्तरवाहिन्य की ओर दृढ़ किया। इधर मेरी नगरी में एक बार किर आजादी के

लालाको ने ताल ठोकी थी । गन्धर्वों ने अपने विद्युते अनुभवों से जाना या कि उनका अकेले साम्राज्यों के विवद लड़ा होना कंठिन ही नहीं, असम्भव है । इस आरण उन्होंने अन्य सीना प्राप्तीय दुर्धर्ष जातियों का एक प्रबल संघ इनाने का निश्चय किया । तंब बना भी और नाग उसमें प्रमुख हुए । गन्धर्वों के इस केन्द्र, मेरी नगरी में जो नागों का प्रावस्थ हुआ उसमें मुझे कोई खानि नहीं, कोई लाज़ नहीं क्योंकि मैं जानती थी कि आवादी की लडाई में नागों से अप्रणीती कोई नहीं । उन्हीं नागों ने अर्जुन के पौत्र चक्रवर्ती परीक्षित को एक शर जमोन सुँझा दी । परीक्षित तो उनकी चोट से इस धरा से चल जाता परन्तु अर्जुन द्वारा प्रतिष्ठित कुट वंश के विशाल साम्राज्य पर जो यह कलंक लगा, परीक्षित का वेदा जन्मेज्य उसे खोकार न कर सका । उसे धोने के लिए वह कठिनद तुक्का, साम्राज्य की सारी शक्तियाँ लिए यह तद्विशिला पहुँचा और वेरे ही केन्द्र से उठने दो अश्वमेष किए ।

उतके अश्वमेषों का भी एक राज था । कासी और से प्राचारण-विभिन्न भारत को जमोन पर लड़ते, मिट्टे और संधर्ष करते आए थे । वारिष्ठ और विश्वामित्र की यह संधर्ष परम्परा परीक्षित के इस बेटे के समय और वनता प्राप्त कर गई । जन्मेज्य और उसके पुरोहित तुरकावेष्य में जो संधर्ष चला, वह बर्बरता और नीचता ही सीमाएँ नहीं जानता । दोनों पह्नों ने किसी साधन को अनुकूलित या स्थान्य न माना । सदा दोनों निम्नतम, निकृष्टम साधनों का प्रयोग करते रहे और जन्मेज्य के अश्वमेष के कृतिज की हैतियत से पुरोहित तुरकावेष्य ने जो आचरण किया वह कितना परित था, वह वेरे कहने की जात नहीं ॥१॥ राजमहियी और मृतप्राय अश्व की एकत्र कल्पित भावना प्रनुष्ठ के मस्तिष्क में प्रवेश कर उसको भी गला देती । मैं उसका कथन नहीं करा पाऊँगी । वह इतना जानें कि उससे यह भ्रष्ट है गया और उसकी

आपावनता से छुप्प जन्मेजय के भाइयों उप्रसेन और शुतसेन ने साठ हजार ब्राह्मणों को तलवार के धाट उतार दिया। शेष ब्राह्मण निर्बातित हो गए और उसके प्रायशिच्चत् स्वरूप जन्मेजय को दूसरा अश्वमेष करना पड़ा। रक्त का प्रायशिच्चत् रक्त यह आयों की बच्चे नेबा ही सोच सकती। रक्त और लूट, दिविजय और अश्वमेष के स्वप्नों को चारतार्थ करने वाले इन आयों के प्रतिनिधि जन्मेजय और तुकावयेष ने जो मेरी भूमि पर किया, वह मेरी लड़ाका की जात न होते हुए भी अकथ्य है।

परन्तु जन्मेदय मेरी नगरी में अश्वमेष करने न आया था। उसे गमधर्मों के गणों में अप्रणी उन नागों द्वा सर्वनाश करना था जिन्होंने उसके विता परीक्षित का निधन किया था। जिस प्रकार आयों के बीच गोमेष और अश्वमेष का प्रथलन था उसी प्रकार उसमें नरमेष की भी शीति थी और बस्तुतः नर संहार तो उनके युद्धों की प्रमुख प्रक्रिया ही थी। जन्मेजय भी नरमेष के लिए मेरी नगरी में पड़ा हुआ था। नाग यज्ञ के मनसुबे उसने हस्तिनापुर से ही बौद्ध रखे थे और अब अश्वमेषों से छुट्टी पा, पात की भूमि पर अश्वमेष के आतंक की छाया ढाल, उसने नागयज्ञ का अशुभ आरम्भ किया। एक एक नाग ढाल, युधा, चूद, नारी पकड़ पकड़ यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में ढाल दी गई। उन आकाशचुम्बी लाल लप्टों से कोई नाग न चला। अगर कोई चला तो वे नयनाभिराम नारियों जिनके विपुल परिमाण ने आर्य राजन्यों और ब्राह्मण पुरोहितों के धर्मों को प्रसन्न किया। मेरा यह पहला बलिदान था। भारत में उक्त नगरों की कमी नहीं। उनके गौरवनय कृत्यों की कमी नहीं, उनके धर्मादानों की सीमा नहीं। परन्तु जो बलिदान मैंने अपनी नगरी में किए, जिस परिमाण में मैंने अपने बांके जवानों की आबादी के बहामें आहुति दी, उसका दूसरा दृष्टान्त भारत के तो क्या संसार के किसी देश के इतिहास में नहीं।

महानारत काल का अन्त हुआ। कुछ सामाजिक वाद की शृंखला दूरी और पंचाव किर स्वतंत्र हो, अनेक गण-तन्त्रों में बैठ गया। मैं भी आजाद हुए। मैंने भी अपनी नई शक्ति नए सिरे से तापिल की। जित शक्ति और सीमा को मैंने इस काल स्थायत्र किया, उसकी दुलना पिछले काल में सदियों बाद इटली रा बेसिस नगर ही कर सकता है। ऐसा नहीं कि और राजतन्त्र की प्रतिष्ठा मेरी घरा पर न हुई हो, पर ऐसा भी नहीं कि स्वतंत्रता-प्रिय मेरे नागरिकों ने निष्क्रिय हो, उसे चुपचाप देला हो और उसे निगला हो। बार बार मैंने एकतन्त्री शासन की काया पलट की। बार बार उसे उलटकर मैंने जनतन्त्र की स्थापना की। उत्तरियद काल में देश में जब छवियों ने द्वाष्टसों के हाथ से सास्कृतिक और दार्शनिक नेतृत्व छीन लिया, जब अश्वपति कैकेय, प्रवाहण, जैवलि, अजातशत्रु, काशेय और जनक विदेह, कैकेय, पंचाल, काशी और विदेह में अपने परिषदों का वितन्वन करने लगे और आत्मा परमात्मा के चक्कर में उन्होंने अपनी प्रजा के उन्मुख नेताओं को ढाल दिया तब मैं चुपचार इस दिशा से उनकी देखती, उनके पेंच के मुद्दाकरे सुनती और सुस्करती रही। शब्दादम्बर कितना महनोब हो सकता है, बाजाल कितना प्रलोभक और सांस्कृतिक सामाजिक कितना भयंकर, यह मैं अपने दूर की हियति से देख रहकी थी। मैं उन केन्द्रों से दूर थी। कैकेय यद्यपि नेरा पढ़ोसी था, किर भी मैं उसके कुचक्की से स्वतंत्र थी और बार बार मैंने यह कहा कि आदम्बर उतनी ही सीमा तक सक्षम हो सकता है, जिसनी सीमा तक वहाँ अनभियों का प्रभुत्व हो। मेरे नागरिक तक सम्मत व्यवस्था के प्रतिगादक थे। बाजाल का उन पर प्रभुत्व पाना तो दूर रहा, ऐ उनका उक्ति स्पृश भी न कर सकता थे।

मेरा गणतन्त्र सजग था। पास ही ईरान साम्राज्य समूद्र की ओर लहरा रहा था, जिसने एक ओर चीन और चाल्जी की सीमाएँ छू ली

यीं, दूसरी ओर भूमध्यसागर और ग्रीस की, परन्तु मैं ऐसे भी आजाए थी। ऐसा नहीं कि मुझे उस महासाग्रान्ध सागर से डर न लगता हो, विशेषकर जब धूमान के नगर एक के ग्राम एक उसके सामने गिरते गए मैं संजग, तबक्क अपनी सीमाओं पर रक्षा की मशाल लिए बलिदान के सोपानमार्ग पर लहा परिचम की ओर देखता रहा। उन दिनों यद्यपि मेरे गण्यतन्त्र की सीनाएँ छोटी थीं परन्तु निश्चय गंभीर नगरी की व्याप्ति विश्वव्यापी थी। विद्या का ओर केन्द्र ईसा से सात सौ वर्ष पहले अपने यहाँ स्थापित किया था वह सदियों चलता रहा। ईसा पूर्व छठी सदी में दो मैने वह व्याप्ति अर्जित की जो किंतु विश्वविद्यालय ने कभी न की, शायद याज्ञ भी नहीं। दूर देशों के विद्यार्थी ने यहाँ आते, भारत के कोने काने के और विदेश के। चीन का राजकुमार जब अपनी प्रशाचन सु लिए संसार के सारे चिकित्सा केन्द्रों में घूम आया, तब मेरे ही कुशल जर्तीह ने सफल आपरेशन से उसको दृष्टि दी। मगार के जीवक और कोशल के प्रसेनजित ने मेरी ही विद्यार्थीठ में अपना शानार्जन किया था। पालिनी और चाणक्य ने मेरी ही नगरी में अपने व्याकरण और अर्थशास्त्र के दूतों के आधार समझे थे। मेरी नगरी विश्व की मेधा थी। और यह मेधा निश्चय जनक विदेश अपना प्रवाहण कैबलि नहीं संभाल सकते थे। उसका सूजन आजाए गण्यतन्त्र द्वारा और उसी ने मेरी धरा पर उड़े सम्भव किया था। संसार के तीन महापुरुषों के सहचर अपने काल में मेरी सदकों पर घूमे थे—बुद्ध के उहचर जीवक और प्रसेनजित, मुकुरात और दिग्ग्रीजेनीज का शिष्य ओनेसीक्टिस और ईसा का शिष्य सेन्ट टौमस की कथा कहूँगी।

ईरानी साम्राज्य जिसकी ओर अभी अभी तंकेत कर चुकी है, आर्यों का था और साम्राज्य प्रकृतिः दुरे और कर होते हैं। किंतु यह आर्यों का

या, आधार से ही नृशंस, आरम्भ से ही रक्त विपासु । अरब जिनकी शक्ति और राष्ट्र का योतक ही धनुष जिनके दस्तलाघव का प्रमेश्य हो, कुत्ते जिनकी बहैता के अभिशाप हो, उन आक्रमण विजेताओं की शक्ति का टपदास्त मुझे नहीं करता है । मैं केवल इतिहास शित उनके स्त्री पराक्रम के हाथों देंगी । अमुरों का रक्त सम्भार स्वर्यं कुछ कम न था, सुमेर की सांस्कृतिक सम्बद्धा पर उन्होंने स्वर्यं कभी अपना अभि भौंड उलट दिया था और जब इम्मुराथी के धनुष के टक्कार नील से लिघु तक सुन पढ़ने लगी थी, तब मैं स्वर्यं दहल उठी थी । परन्तु उन अमुरों के विजित पर भी आयों की इस ईरानी शाखा ने मरणात्मक चोट की । आमुरी साम्राज्य के ऊपर ईरानी साम्राज्य का वितान तना । साम्राज्य-बाद कभी अपनों-परायों को नहीं सांचता, नहीं तमन्हता । पढ़ोली उसका पहला शमु होता है जाहे वह पढ़ोली लगोशीय हो, जाहे मिद । ईरानी आयों के सम्राट चर्यापि, बुरूप और दारयशौर (दारा) ने जब अपनी सीमाएँ परिच्छन की और यदानी शुरू की तो ढोरियन ग्रीकों के नगरा-धार हिल गए और उनके अवशेष जिनकी ख्याति, जन बल, स्वातंत्र्य-प्रियता और दार्शनिकता चोटी तक पहुँच चुकी थी, अब उनके सामने खण्ड भर लड़े न रह सके । ईरानियों ने आर्य-अनार्य का विचार ताक पर रख दिया और वे उन्हें कुचल भेड़े । उनरे छुटी पा छुटी सदी ईरा पूर्व के मध्य दारा ने अपनी कठोर दण्डि पूर्व-दक्षिण की ओर भी ढाली और मैं तिलमिला उठी ।

आखिर एक दिन वही हुआ, जिसका मुफे दर था । ईरानी रिशालों की अद्वृत पैकियाँ हिन्दूकुश लांघती खेवर की राह मेरे द्वार पर आ लड़ी हुईं । जहाँ तक बन पहा, मैंने उनका अवरोध किया । परन्तु कहाँ तो संकार के सब से अद्वे साम्राज्य के खूनी साधन और कहाँ मुझ सांस्कृतिक केन्द्र की सीमित शक्ति, मैं उसके गई । पंजाब और सिन्ध ईरानी साम्राज्य

की बीसवीं 'हक्की' (सूचा) में गिने जाने लगे। मेरी नगरी को मी सोने की धूल की एक तीज ईरानी वार्षिक आय के रूप में देनी पड़ती थी। परन्तु साम्राज्य स्वयं जो एक संगठित विरोधाभास है, उससे उसका अपने आप टूट जाना भी स्थानाधिक है और ईरानी साम्राज्य की चूलें भी धीरे-धीरे ढिल गईं। इधर उस पकड़ के कमज़ोर पड़ते ही, मैंने फिर बाबत का भूटड़ा अपने हाथ में लिया और न केवल मैं आजाद हुई बहिक साथ ही मैंने तिन्हुं को भी आजाद किया।

मानती हूँ, यह आजादी बहुत दिनों कायम न रह सकी। इस अवसर पर इसी प्रसंग में तवारीख नवीसों के लिए भी एक शात कह देनी मुनासिब उम्मती हूँ और यह बात मेरे इतिहासकार भजाक में न लै दूसरे मैं उन्हें होशियार किए देती हूँ। कारण यह है कि जो भूट-खच घटनाएँ वे आरनी दफ़ और कहना से बनाते रहे हैं, उनको और केवल सच्चाइयों को मैंने खुद देखा और भोगा है, सो मैं कहती हूँ कि एक देशीय इतिहास लिखने वाले इस बात को सर्वथा भूल जायें कि अपने देश की सीमाओं में घटने वाली घटनाओं को लिखकर वे इतिहास लिखने के अवय को अंगत कर रहे हैं। घटनाएँ आशिक और प्रादेशिक कम होती हैं, अन्तर्देशिक अधिक। कौन कह सकता था, भला किसे गुगान भी था कि इंजिन तक के स्वतंत्र नगर अंखता के उत्तर में मक्क-बूनिया के ते नितान्त लम्जु, पहाड़ी और बर्मर भू-खरड से जो आँधी उठेगी वह संसार के सारे प्राचीन साम्राज्य आधारों को हिला देगी, उन्हें बेकाबू कर जीत लेगी? कौन बानता था कि वह आँधी बारी-बारी से मिथ्र और ईरान पर चोट करेगी और उनके प्रान्त देखते-देखते खिल जायेंगे? पर हुआ ऐसा ही। किलिप के उस तपस्ती वंशधर ने जिसने अरत्तू के दर्शन को एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल दिया था, जिसने पिता की प्रसार नीति को खुद श्रीक नगरों के शामने जब तक

कुपिठत, होते देल अपने तेवर बदल दिये थे, जिसने मकदूनिया के सीमित साथों को अपने लिए रख, उसके नवाजित बैमव को मित्रों में, वॉट-दिया था, दूरी को अलंगत कर साम्राज्यों का अन्त कर दिया। मकदूनिया से निकल मिथ्र और सीरिया होता, ईरानी साम्राज्य को अपनी ठोकरी से गिराता, पसेंपोलिस को अपनी प्रेयसी ताया के इशारे से भस्म-सात करता, हिन्दुकुश की ऊँचाइयों को भी एकाएक लाँघ गया। जब भर के लिए सीरियक शासक को कन्या लहाना और ईरानी सज्जाट की कन्या आर्तकाया के मोह में भूल जब तक उसने आपान के रस लिए तब तक ईरानी रणनेताओं ने भाग कर बाल्की को अपना गढ़ बना लिया, परन्तु सिकन्दर लौटा। हिन्दुकुश लाँघ वस्तु के तट पर उसने एक बार प्रलय लीला मचा दी और फिर हिन्दुकुश लाँघ प्राचीन आयों के सततिन्धु की परिचनी चोटी पर सहं होकर उसने पूरप की ओर ऊँगली उठाई। प्रीकवाहिनी अपने भाइयों के नीचे संसार की लूट और मार के नाम पर दीड़ पड़ने वाली जातियों के भयानक साहिकों को लिए पूर्व की ओर उस ऊँगली की सीध में छल पड़ी।

ईरान का दूट जाना कुछ आसान न था। टसकी खबर जादू की तरह दुनिया में फैल गई थी। पंजाब के प्राचीन गणतन्त्र शक्ति हो उठे थे। प्राचीन प्रगत का पाटलिपुत्र दम साथे परिचम की ओर रुक किए देल रहा था। मैंने भी दो सदियों बाद ईंडा पूर्व चौथी सदी की इस आँधी को फेलने के लिए कमर कसी। परन्तु वह मेरे भव की चात न थी। जन गल मेरा न था। मेरा गणतन्त्र दाल ही में स्वस्त हो गया था। तद्विशिला ने उसके नेताओं को कुचल कर, एकत्रिय शावन का फिर से आरम्भ किया था, और उसका पुत्र आभी इस समय मेरा प्रहु था। सिकन्दर आया और मेरे स्त्रामी ने दयियार ढाल दिए। उसके दूटों ने किन्धु पार जाकर उसका स्वागत किया। पराजित मैं पहले भी

तुरं थी, पीछे भी हुई । परन्तु अपनी पराजयों के लिए मुक्ते कभी गतानि न हुई, जो चढ़ता है वही गिरता है, जिना चढ़े कोई क्या गिरेगा । शुद्धों के बहु चलने वाला निश्चय कभी मैदानेज़ेंग में नहीं गिरता । हार-जीत लहार के दो पहलू हैं, जिनको अंगीकार कर ही लड़ाका मैदान में उतरता है । मैं अपनी हार-जीत से दुःखी या खुली नहीं हूँ । परन्तु जिस संघर्ष में प्रयत्न का अभाव हो, जहाँ मैदान में उतरने की नीति आए और ही भाग्य का निपटारा हो जाय, वहाँ मैं अपने लिए स्थान न माँगूँगी; इतिहास की पंक्तियों में इस प्रसंग में नाम आने पर मैं भर-सक उसे काट भी देने का प्रयत्न करूँगी । परन्तु अनाग्रह । वही हुआ जिससे मुक्ते घृणा थी । राजा तद्दशील का बेटा आम्भी आखिर वह जिनीना आचरण कर ही चैठा, जिससे मेरे मुँह स्थाही पुत गढ़—एक बार फक्त एक बार, तिकन्दर आया । अटक के पात श्रीहिन्द को लाँध तीन दिन की यात्रा कर वह मेरे नगर में पहुँचा, जहाँ जांदी और सोने की राशि, भेड़ों और सुन्दर बैलों की अनन्त संख्या, विजेता को प्रदान की गई और जब तक अपनी नारियों और सुशासित शराब के विलास में सिकन्दर मन बहाता रहा; जब तक प्रोक्त सैनिक खेत-कूद में, पिभाम और प्रीक देवताओं की पूजा में अपना व्यतन करते रहे, आम्भी परदिक्षा को लिए मेरे चतुर्दिंक जनयद को जीतने निकल पड़ा । जब मनुष्य गिरता है तब गिरता ही जाता है । परन्तु सम्भवतः उसका कोई तल हांवा ही है । पर जब राजा गिरता है जो शायद मनुष्य से इतर है तो उसके पतन का कोई अनुकूल नहीं होता; उसे शायद कोई तल नहीं मिलता । आम्भी के लिए इतना इतना था कि वह स्वयं अत्यसमर्पण कर देवा बरन् उसने अपने देश को विदेशी भारत के छाये में जीतने का भी दौँड़ा उठाया । यह राजा द्वाय ही सम्भव था । कुछ ही समय बाद मैंने कठों को मालबी और छुदकों को शिविरीधेय को घग-घग पर

विदेशी विजेता की राष्ट्र दोकते देता । इस दृश्य की जमीन अपने रक्त से सींचते देता और मैं उम्रक उठी कि मुझे इतने का भी श्रेय न मिला । मैं कह रही थी कि राजा जब गिरता है, गिरता ही जाता है । आज यदि मेरा गणतन्त्र जीवित होता तो मैं भी वही करती जो मालव कुट्टीको ने किया, कठ, बीधेयों ने किया, पर मेरे ऊपर अंकुश लिए जो आम्भी बैठा था, उसने मेरे अस्तानों का गला छोट दिया । मेरे पाँच हजार लुने जबानों ने आम्भी के नेतृत्व में राजा पौरव को हराने में लिकन्दर की मदद की । राजा पौरव स्वयं उसी राजनीति का शिकार और पोशक था, जिसमें राजा अपने राष्ट्र को व्यक्तिगत रूप से भोगने की बख्तु मानता है और उसने भी वही आवश्यक किया जो आम्भी ने किया था । कठों के अध्यवसाय ने ग्रीकों को प्रायः जोत लिया था कि पौरव ने अपने लुने जबानों के साथ उन पर आक्रमण कर उन्हें कुचल डाला था ।

आईं आई और गईं । मैं यद्यपि कुचल गई थी, पर उस और से उदासीन न थी । कुट्टीकालीन भारत के गणतन्त्रों में पूर्व की और यज्ञी लिच्छवियों ने जिस आजादी की रक्षा का भार अपने हाथ में लिया था उसी का रक्षा भार उत्तर-पश्चिम में मैंने लिया था । उमय समय पर मेरी छाती पर निःसन्देह राजतन्त्र सवार होता गया, परन्तु निर भी मैंने उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया जारी रखी और किरनकिर मैंने उसके विरुद्ध दृथिधार उठाया । आम्भी का व्यवहार ने लिए मेरी अटूट गतानि का कारण तिद हुआ और मैं पहले अवतर का साक में सजग हो गई । अवहर मिला, लिकन्दर लौठा और लौटने के पहले उसने मुझको खिंच और मेरे गला आम्भी को उसका रक्षक । तीन वर्ष बाद सिकन्दर के भाषुक में मरने की खबर आई और उस खबर ने केवल मृत्यु का सन्देश

ही नहीं बदन किया बहिक पंजाब के गण राज्यों में एक नई स्फुर्ति भर दी। पहले से ही सिक्खदर के पीठ फेरते हो विज्जव होने लगे थे। उसके कई ज्ञानीयों की हत्या भी पंजाब और उसके तमीमवर्ती प्रदेश में हो चुकी थी। परन्तु अब तो श्रीको का निष्काशन नये सिरे से शुरू हो गया। इसी बीच, मैत्रै भी आम्भी और उसके राजकुल को उलाह फेंका।

अब मैं फिर गगतन्त्र थी। फिर आजादी का एक नया अंकुर मेरी जमीन में लगा। परन्तु मैं यह साह बता देना चाहती हूँ कि जितना अपकार विदेशी मेरी राजनीति का न कर सके थे, उसना मेरे खदेशी राजाओं ने किया। असल शात तो यह है- जैसा कि पहले कह चुकी हूँ, साम्राज्यवाद अपना पराया नहीं देखता। मैं भी, कोई कारण न या कि भारतीय उठते हुए साम्राज्य का प्रिय वाप सन सकती। चन्द्रगुप्त मौर्य ने मगध में एक नए कुल का आरम्भ किया था। नन्दों के राजकुल को समूल नह कर उसकी नहीं पर कठोर मानस साम्राज्य चालाक्य ने चन्द्रगुप्त को प्रतिष्ठित किया था। चालाक्य अप्रतिम साम्राज्यवादी था और अपने अर्थशास्त्र में उसने एक सर्वथा मारक, विधंतक एकछत्र साम्राज्य का प्रणयन किया। उसकी मेधा की दो भुजाएँ थीं, चन्द्रगुप्त के रूप में अनुग्राहित और उनके योग से पाटलिपुत्र में बैठा हुआ ही उसने भारत के प्रान्त के प्रान्त लौंच लिए। पंजाब ने उनकी सहायता के लिए धन-जन, साधन सभों कुछ दिए थे। उससे बढ़कर उसने उन्हें मगध साम्राज्य की गहरी दी थी। परन्तु उसका उन्होंने उल्टा प्रयोग किया। हमारी नैकी का बदला उन्होंने ब्रह्म से दिया और एक के बाद एक पश्चिमी भू-स्तर भगव की बढ़ती सीमाओं में समाते गए। इस काल पंजाब में अनन्त गण-तन्त्रों की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। प्रत्येक गण-तन्त्र अपनी सीमाओं में स्थित और संतुष्ट था। मैं भी अपनी हाल की हालत से लौट कर स्वास्थ्य

लाभ कर रही थी, परन्तु मगध की संहती चोट ने मुके पर धूल चटाई।

अन्य गण-तत्त्वों की ही भाँति मैं भी ममांहत हुई। मैं भी पंजाब के अन्य प्रदेशों के साथ ही, मध्य साम्राज्य का एक प्रान्त थी। मेरी नगरी में उत्तर-पश्चिम का शासन केन्द्र प्रतिष्ठित हुआ। सिकन्दर ने सन्तान न छोड़ी थी। उसका विशाल लाप्ताज्य उसके मरते ही उसके सेनापतियों में बैठ गया। प्रिय तौलेमी ने लिया, सीरिया सेल्यूक्स ने और पूर्वी प्रान्तों पर अधिकार के लिए एन्टीगोनस और सेल्यूक्स में लंग छिप गया। गागामेला के युद्ध के बाद सेल्यूक्स अपने स्वामी के जीते भारतीय प्रान्तों की ओर जश बढ़ा तब मुके ऐसा लगा कि मगध और सीरिया के इस कशमकश में, मैं निश्चय स्वतंत्र हो जाऊँगी। पर स्वतंत्र हो न सकी मैं, क्योंकि सेल्यूक्स को यह लदाई महँगी पही और मगध सप्ताट ने उसके प्रयाप को रीद तोड़ दी। उसके हिन्दूकुश के पूर्व के चारों प्रान्त मगध के हिस्से पही और मुके उनका अनिभावक रहना पड़ा। सीना प्रान्तीय राजनीति का केन्द्र मैं पहले ही हो चुकी थी। अब इन चारों प्रान्तों के शासन का उत्तरदायित्व भी मेरे ही कंधों पर पड़ा।

यह न भूलना चाहिए कि मैं इस समय भारत के एक विशाल भू-खण्ड की स्वामिनी थी। एक समृद्ध प्रदेश की, जिसमें नितान्त सम्पद और असन्य बर्दर एक साथ बसते थे। सारा पंजाब, तिन्ध, काईमीर, और अब कानूल-कंधार बलुचिस्तान और हैरात भी मेरे शासन में आ गए। इन विद्वले चार दूजों में वसने वाली जातियों पर कभी कोई शासन न कर सका था। उन भयानक जातियों पर अब मुके शासन करना पड़ा।

मैं समझती हूँ, मेरे पतन का एक विशेष कारण भी था। इसमें सन्देह नहीं, मेरी राजनीति कुछ काल से छिप-भिप हो गई थी, विशेष कर तब से अधिक उस पर राजसत्ता का प्रादुर्भाव हुआ था। परन्तु

इसमें भी सन्देह नहीं कि राजनीति उदा सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम हुआ करती है, और मेरा समाज नितान्त क्लुप्टित हो गया था। सिक्खदर ने स्वयं मेरे बाजारों में कंगाल पिताओं द्वारा कम्याशांति को बेचते देखा था। मेरे मृत नागरिकों के शव जहाँ तहाँ दाल दिए जाते थे, जिन पर गिर और चीले मैंडराती थी, श्रु विवाह ने नारियों की इच्छत साक में मिला दी थी। पुरुष का शौर्य अपनी मान रक्षा से हट कर बीर की सेवा में जा लगा था। पहले ऐनिक बीर का पार्श्ववस्था समान अधिकारी था, अब वह उसका अनुचर हुआ। इनके असिरिक्त अनेक सामाजिक दुर्ब्यवस्था मेरे जन-ब्रह्म को और उससे कहीं बढ़ कर उसकी मानसिक आजादी को खाने लगी थी। यह सम्भव न था कि दुर्ब्यवस्था के बाबजूद भी मेरी राजनीति पूर्ववत् आजादी की रक्षा में खंलग रहती है। जो भी हो, आजादी के छिन जाने से मेरा सर्वस्व छिन गया और मैं मगध साम्राज्य की चेरी बन गई।

मैं अपर कह आई हूँ कि जिन जातियों का नियंत्रण मेरे जिम्मे पड़ा था, उनका नियंत्रण कुछ आसान न था। जीवन में नियंत्रण में रहना उन्होंने सीखा ही न था। दौत के बदले दौत और आँस के बदले आँस—पही उदा से उनकी नीति रही थी और यही नव साम्राज्य के नव विधान नहीं रहने देना चाहते थे। हिर संघर्ष शुरू हो गया और उत्तर-पश्चिमी सीमा पर युद्धजहाँ और काफिरस्तान की संधि पर दोन के काले बाल मैंडराने लगे। चन्द्रगुप्त मर चुका था। चालक्य की राजनीति भी येच में यह गई थी। बिन्दुसार तलवार उठाने में यद्यपि मिता से कुछ कम प्रवीण न था, परन्तु उसमें न तो चन्द्रगुप्त की महत्वाकांक्षा थी और न उसे चालक्य का मंज तो उपलब्ध था। यद्यपि उसमें अपने फो 'अभिनन्दन' कहा, पर वह करवार सेवी था। सिक्खदर की सेनाओं ने 'भारता' के लिए पश्चिम की

राह खोल दी थी । । परिचमी राजाओं के साथ राजनीतिक दीत सर्वधर्म स्थापित हो गया था । विनुसार पश्चिमी राजाओं से अंग्रीर मदिरा और दार्शनिक भाँगता था । विक्कन्दर के साथ जो अनेक दार्शनिक आए थे, उन्होंने मेरी नगरी की रहकों पर भी दर्शन के कोलाहल लुने और अनेक तर्क से द्रवित हुए । अोनेहोकीतर तो झुकरात और डिओडनीन का शिष्य ही था, अफलातुन का गुहभाई और उसने भारतीय दार्शनिकों के चमत्कार की आत परिचमी विदेशों में पैलाई थी । परन्तु दर्शन इस एकांकी निष्पक्ष दार्शनिक विभ्वन में मेरी आजादी का गला खोट दिया । उदासीनता इव दार्शनिकता का प्राण है और जो इसका प्राण है, वही राजनीति के लिए भी है । सो यद्यपि मुझे इसकी कम खुरी नहीं कि अोनेसीकीतर का सा दार्शनिक मेरी रहकों पर धूना, मेरे दार्शनिकों से उसने शास्त्रार्थ किए, विजित और चमलकृत दुश्मा, यह आत मुझे कुछ कम नहीं खलती कि इस दार्शनिकता के पुट ने मेरा कमी सर्वस्व छीन लिया था । परन्तु उठी दार्शनिकता को धुन की तरह मगाथ केन्द्र में लगते लगते देख मैं भीतर ही भीतर कुछ प्रसन्न भी हुई । दूरस्थ प्रान्तों में उदासीन विनुसार अपनी पकड़ मुझ पर भी कमज़ोर कर देगा, इससे आश्वस्त होकर मैं उन दुर्दर्श जातियों की ओर रुक्त कर दैठी, जिनका बर्वर आजादी के प्रति माह मुझ अंगे का सहारा हुआ और रुक्त करना सचमुच व्यर्थ भी सिद्ध न हुआ । तुरन्त विद्रेह की आग भढ़की ।

मुत्तीम मगाथ के रुक्ताट का प्रतिनिधि या और वह आपने मंत्रिमंडल के साथ, मेरे ही नदी में निवास करता था । यहीं से वह पंजाब, सीमाप्राप्ति, सिंध और काश्मीर के प्रदेशों पर शासन करता था । यहीं से वह उन दुर्दान्त जातियों को नियन्त्रित रखता था जो विनूकूरा के के साथे में उठती गिरती रहती थीं । उन्हीं जातियों ने विक्रोह की आग

भद्रकार्ड जो सिन्ध से काश्मीर तक लगातार भद्रकर्ती चली गई। मगांच की स्थानीय सेनाओं ने सारे प्रवान फिर। प्रवान कर कर वह यह यह गई, पर विद्रोह शांत न हुआ। कुछ समय के लिए मुख्यमंत्री और मन्त्रिमण्डल को मेरा नगर छोड़ कर भागना तक पहा और साम्राज्य का उत्तर परिच्छन्नी सीमाप्रान्त संकट में पड़ गया। अन्त में लाचार सघाट बिन्दुसार को उड़वेनी के रातक अपने हूसरे पुत्र अशोक को मेरे दमनार्थ भेजना पड़ा। अशोक अपने पितानह को ही भाँति ही उदात्त और शकुनाशक था। उसने भट विद्रोहियों को कुचल डाला। मेरी प्राचीरों के पीछे थों एक नए स्वतंत्र संघ ने जन्म लिया था, जिसकी आजादी की आकांक्षाओं ने पठानों के विद्रोह को शक्ति दी थी, छिप-निप हो गया। अशोक कुछ काल तक बही जमा रहा फिर जब विद्रोह सर्वथा शांत ही गया, तब वह यहाँ चा यथोचित प्रबन्ध कर पाटलिपुत्र लौटा।

किस प्रकार पिता के मरने के बाद भाइयों में संघर्ष छिड़ा, किस प्रकार उनके रक्त से होली लेल अशोक ने तिहातन की ओर अपने कदम बढ़ाये, किस प्रकार दिल्लीय की कामना से कलिंग को कुचलकर अशोक ने अन्ते साम्राज्य में मिला लिया, किस प्रकार उसने लाखों का नाश कर अपनों शक्ति का सूख दिया, किस प्रकार फिर उसकी प्रतिक्रिया के वशी-भूत हो उसने बोझ धर्म में दीखा ली और किस प्रकार देवा नानकीय के प्रियदस्ती बन इसने उस धर्म का प्रकार लिया, प्रजा की नई सेवा की वह धारती में मगांच और पाटलिपुत्र की कहानी है, मेरी नहीं और मैं उसे न कहूँगी। इतना अक्षर कहूँगी कि यद्यपि उस महान् दृष्टि में अनेक गुण थे, दया और औदार्य था, परन्तु जहाँ तक स्वतंत्रता की बात थी, उसने भी उस दिशा में कोई प्रयात न किया। जीते जी प्रान्तों के ऊपर उसने अन्नी पकड़ ढीली न होने दी और यद्यपि उसके उपदेशों से मुक्ते कुछ राहत मिली थी। मैने सोचा या कि सम्भवतः विभिन्न जातियों को वह

आशादी भृत्या दे परन्तु आरप्यात् खड़े उसके उपदेश स्तम्भों के यावज्ञाह भी मैंने उस दिशा ने कोई गति न देखी और चित्र मार भैड़ा रहा।

अशोक देवताओं का प्रिय, प्रजा का प्रियदशी अशोक निश्चय महान था। पितामह को कठोर राजनीति को बदला भी उसने बहुत कुछ, परन्तु यह स्वयं अन्ततोगत्वा अपनी कन्जोरियों का शिकार हो गया। अब भी मैं उसके उत्तरणशिचनी तीमान्त की राजधानी थी; अब भी सम्राट् का प्रतिनिधि शासक अपने मंत्रिमण्डल के साथ मेरे केन्द्र से इधर के प्रान्तों पर शासन करता था। अशोक ने सम्राट् होने के बाद अपने पुत्र कुशाल को मेरे नगर में अपना प्रतिनिधि शासक बनाकर भेजा। कुशाल शिष्ट और बुन्दर था, चीर और आचारधान, परन्तु यही युण उसके सर्वनाम के भी कारण हुए। इदावरथा में अशोक ने तिष्ठरचिता से विवाह कर लिया था। तिष्ठरचिता वृश्णि थी, मुम्हरी थी, ब्राकर्पंक थी, कामुकी थे। उसका घटा ला उटता यौवन राजा के बृद्ध पौरुष पर व्यंग का अहृदास था। तिष्ठरचिता को सम्भालना अशोक के लिए सम्भव न था, और अपने काम की अभियुक्ति के लाभों से बहुत नित्य पाटलियुत्र के प्राप्तादों में अपना अभिरंजन करने सही। मन्त्रिया के लिए इस दूसरी तीव्रता के बेटे कुशाल को जो उसने प्राप्ताद ने पिता के साथ देखा तो दोनों के अलगान सौन्दर्य, विषम पीरुष को देख वह कुशाल पर लट्टू हो गई। कुशाल के खंडन नेत्रों ने उसे अनजाने अपनी ओर लौंचा और मनस्त्रियि तिष्ठरचिता उसके बाहुपाश में बैध जाने को उद्दिष्ट हो उठी। कुशाल के अंगीचित्य ने उसे खिकार कर दुकरा दिया, परन्तु गर्वियों चोट खाए नाग को भाँति फुकाकर उठी। और उसे उसने के अवश्य दूँड़ने लगी। एक दिन उसने अपनी दुरुभि-सन्धि चरितार्थ भी कर ली।

बृद्ध प्रलय में विवेक की मात्रा कम से कम ब्रेवली के प्रति उत्तरोत्तर कर होती जाती है। अशोक ने उस कल्पित कथा को सत्य माना जां

तिष्ठरक्षिता न कुण्डल के बिन्दु उसके कान में ढाली और उसने अपनी मुद्रा उस शासन-पत्र पर अंकित कर दी, जिसमें कुण्डल के बौद्ध के प्राची उसके खंजन नेत्रों को निकाल लेने का आदेश था। मेरी ही नगरी में, मेरे ही प्राचार में, मेरे देशते ही देशते उस कर्मठ बीमान् आचार-पूत कुमार के नेत्र कोटरों से निकाल लिए गए। तिष्ठरक्षिता ने उसको देखा और अभितुति लान की।

आशोक के मरते ही साम्राज्य के प्रान्त विखर चले। फिर मैंने आजादी के सपने तत्त्व किए और शीघ्र काकुल तक के भू-खदाद के साथ मैं स्वतंत्र हो गई। फिर मैंने अपनी प्राचीरों के भीतर गणतन्त्र कायन किया। यद्यपि काकुल के राजा की शक्ति का लोहा मुझे लब तथ मानना पड़ा। इसी बीच मध्य ऐश्वर्या में स्वतंत्रता की एक नई लहर उठी थी, इसकी पूर्व तीसरी सदी के मध्य में। सीरियक साम्राज्य के दो विशाल प्रान्तों पार्थव और वारुणी ने सहसा स्वतंत्रता की पोषणा कर दी थी और यद्यपि सीरियक सप्राट पार्थिवा और वैक्रिया दोनों पर निरन्तर चोटें करता रहा, उसके लोए दुए प्रान्त फिर साम्राज्य को न लौटे। वारुणी में हो वह महीनों अपनी सेना लिए उड़ाकूद मचाता रहा, परन्तु यूथिदेमो के सामने उसकी चली एक नहीं। मन्त्रपूर होकर उस नए राव-कुल के साथ सन्धि करनी पड़ी और यूथिदेमो के पुत्र कुशल राजनीति दिनिक्य को उसे अपनी कल्या देनी पड़ी। फिर अपनी हार की मौत मिटाने के लिए वह हिन्दू-कुश लाघ भारत की ओर चला। भारत का उत्तर-शिवमी प्रान्त मेरे केन्द्र के साथ ही मगध से बाहर निकल गया। या और अब उसका शासन कुभागदेन नामक एक भारतीय पठान करता था। कुभागदेन श्रावण को रोक न सका और उसकी हेनाएँ मेरे मैदान में सहसा आ धमर्की। इस देश का सिंहदार होने के कारण मुझे विजेता से लोहा लेना पड़ा और मेरी सेनाओं ने जो सिंधु लाघ सेल्यूक्स

के उस रंशधर को अपने शौर्य का स्वृत दिया तो उसे उजडे पाँय स्वदेश लौटना पड़ा ।

हाँ, बाल्की के दिमित्रिय के सामने मेरी एक न चली । मेरे ही मैदानों में उसने भारत जीतने के उपकरण किए । वही उसने अपनी सेना के दो भाग किए । एक उसने जामाता मेनामदर को दे पूरब की राह से पाटलिपुत्र भेजा, दूसरा स्वर्य लेकर सिन्ध और राजपुताने की राह मगध की राजधानी में जा धमका । परन्तु वह कहानी पाटलिपुत्र की है, मेरी नहीं । मैं उसे न कहूँगी ।

जिस शासन में जनता का हाथ नहीं होता उसकी रिपति किंतनी बाबौं-बोल होती है, इसका प्रमाण बाल्की का विश्वर राजकुल ही देगा ।

दिमित्रिय प्रथल था, महान था, नीतिश था, प्रजावस्तुल और प्रजाप्रिय था, परन्तु उसके पीठ किसे ही, उसकी राजधानी में जो बटना बड़ी वह मेरे वक्तव्य के सत्यता की साज्जी है । दिमित्रिय के प्रिय पात्र युक्तेतिद ने न केवल उसकी गही, राजधानी और राज्य ही इस परियावरन् उत्तरी रानी भी स्वावल कर ली । और अब जब इस यह बंचकता का सन्देह पा दिमित्रिय पाटलिपुत्र से स्वदेश की ओर वायुयेन से लौटा तब युक्तेतिद ने री ही नगर में उसकी राह रोकने आ लहा हुआ । चुने हुए सुष्टु भर जबानों से छः महीने तक मेरे ही प्राचीरों के पीछे युक्तेतिद जमा रहा परन्तु दिमित्रिय उसका आल बँका न कर लका और उसे अपना प्रयास छोड़ देना पड़ा । सिन्ध और पूर्वी पंजाब का राज्य दिमित्रिय और उसके जामाता को मिला । वैकिंद्रिया और पश्चिमी पंजाब का युक्तेतिद और उसके धंशधरों को ।

युक्तेतिद के वंशधर—जो बंचकता युक्तेतिद ने अपने स्वामी के विश्वद की थी उसका कल उसको हाथों हाथ भोगना पड़ा । उसके पूर्वी शासन की मै राजधानी थी । दिमित्रिय के कुचकों का उत्तर देने के लिए युक्तेतिद

एक बार भारत आया । मेरे महलों में उसने डेरा डाला, पर जब शत्रुघ्नी से प्रश्न प्रतिशोध ले, वह विजयी लीटा तब मेरे ही मैदानों में वह कृत्य हुआ जो इतिहास के पश्चीमे अनोखा है । ऐलिक्ट्रोकल्स युक्तेतिर का पुत्र था । उसने पिता को मार कर उसके शव और रक्त पर अपना रथ दौड़ाया और गही हड्प चैठा ।

मेरे नगर ने शब श्रीको का राज्य था । श्रीको के कुछ नगर और ये—बूथिदेसो, दत्तामित्रिय, पतल और शाकल । परन्तु जो वैभव मुक्ते मिला वह उनको कर्नी न मिला । बाहुनी की राजधानी को छोड़ पूर्ण में श्रीको का सबसे प्रसिद्ध केन्द्र मैं ही थी । श्रीक शान्ति के दिनों में निश्चय नितान्त कलाप्रिय जाति थे । व्यायाम, श्रोदस्वी सेल और शाल संचालन उनको जितने प्रिय थे, उतने ही दार्शनिक चिन्तन और काव्य प्रणयन । मेरी नगरी में उन्होंने अनेक अखादे, अनेक खेल के मैदान, अनेक विद्यापीठ और नाटकीय रंगमंच लड़े किए । उनके दार्शनिकों के चिन्तन पर अन्येयण और विचार विनियम निरन्तर होने लगे थे । निरन्तर मेरे रंगमंचों पर श्रीक नाटक खेले जाने सगे थे । होमर की इलियड के गान-ध्यायन से मेरा वाकावरण गुज़ने लगा था । एटिक तिक्कों से मेरा भंडार भर चला था । श्रीक स्थापत्य और वास्तु के नए नमूने नित्य मेरे नगर में लड़े होने लगे । मैं अब चौथी बार नए सिरे से बस रही थी और मेरा नया रूप उड़ स्थल पर सँबारा जाने लगा था, जो रुदियों भीरटीजे के नाम से प्रसिद्ध रहा है । इसी अपने नए आधार से मैं भारत को एक नया सांस्कृतिक जीवन देने लगी । दर्शन और चिन्तन में नया दृष्टिकोण, साहित्य की रचना से नवीन प्रयोग, कला के कक्षण में नवीन अभिप्राय मैत्रे भारत को दिया ।

श्रीको का प्रमुख राजनीतिक द्वेष में कुछ काल तक और प्रबल बना

रहा। यद्यपि बालकी के अनेक प्रदेश अब और धीरे शकों की चोट से उनके हाथ ले निकलते जा रहे थे, अन्तलिखित और और उदार नृपति या जिसने शकों की बढ़ती शक्ति के विहृद मगथ की मैत्री चाही। मगथ में काशीपुर भागमन्द राज करता था। उसको अपनी ओर करने के लिए उठने अपने राजनूत दियपुत्र हेलिओदोर को भेजा। हेलिओदोर वरम वैष्णव था और उसने तपल दौत्य के शाद वेस नगर में विष्णु का स्तम्भ सदा किया। अन्तलिखित स्वयं भागवत धर्म में अभिरुचि रहता था। अन्तलिखित का राज्य विशेष दूर तक न था परन्तु प्रभुता उसकी अद्वीयी थी और एंजात्र में उसका प्रभुत्व प्रायः अप्रतिरथ था। मुख और काल तक उन ग्रीकों की राजवानी भेरे प्राचीरों के पीछे जीवित रही। परन्तु शीघ्र शकों की चोट ने इरनियस के शासनकाल में न केवल बालकी को बरन् उसके पूर्वी केन्द्र और राजवानी, मुख तद्वशिला को भी स्वायत्त कर लिया। ग्रीक राज्य भारत से उठ गया, यद्यपि उसने जो अपने सौरकृतिक चिह्न छोड़े, उसकी छाप अनेक दिशाओं में सदियों जीवित रही।

शक अर्धेंदी की तरह उठे थे और उन्होंने प्रायः सारे देश पर अपनी शक्ति और कूरता की छाया ढाली। यद्यपि वे पहले पहल किन्ध में उतरे थे। किन्ध में ही उन्होंने अपना वह आधार कायम किया जो विरोधी जनता के बीच द्वीप की भाँति लगा। और इसस्वरूप वह एक द्वीप कहलाया भी, परन्तु उसकी कीमावें वही सीमित न रह सकी और धीरेभीरे शकों ने अपने अनेक केन्द्र इस देश में स्थापित किये—मधुरा, उच्चेन और मदाराष्ट्र और किन्ध के अतिरिक्त तमसे विशिष्ट भैं, स्वयं तद्वशिला। भारत में शक यद्यपि विजेता थे परन्तु वे अपने को इंरानी सम्मानों के ही प्रतिनिधि मानते थे। इसी कारण इस देश में उन्होंने

केवल द्वन्द्व और महाद्वन्द्व अथवा प्रान्तीयशासकों की ही उपाधि धारण की।

शकों के आक्रमण ने मेरा एक शर किर विघ्नकृत किया और मैं नए सिरे से सिरकप के चतुर्दिंग बनाई गई। महाद्वन्द्व राजा मय तिन्ध के मुक्त पर शासन करता था और उसने महाद्वन्द्वप लियक कुसुमलक तथा उसके बेटे द्वन्द्व पतिक के अधीन मुक्ते केन्द्र बना अपने पूर्वी इलाकों पर हुक्मत की। मय के बाद अपने ने मुक्त पर शासन किया। मेरी अमुता किर एक बार बद चली थी। किर मैं पंजाब की राजधानी पोवित हो चुकी थी। बात यह है कि मेरा विष्वकृत चार्ट कोई भले ही कर दे, वह यदि पंजाब और काहुल पर शासन करना चाहता, काश्मीर और तिन्ध पर यदि वह अपनी हुक्मत कायम रखना चाहता तो वह अवश्य था कि वह मुक्ते अपना राजनीतिक केन्द्र बनावे। मैं न केवल राजनीतिक दृष्टि से आवश्यक और महत्वपूर्ण भी वर्लिंग मध्य पश्चिम से दक्षिण भारत की ओर जाने वाले स्थल के व्यापार मार्ग पर मेरी रियति थी। दोनों मार्ग मेरे ही बाजारों में मिलते थे और इसी कारण किसी प्रकार मेरी उपेक्षा नहीं हो सकती थी।

शक विदेशी थे। असभ्य और वर्धर थे। उनका कोई दर्शन नहीं था। कोई सांस्कृतिक जीवन न था। इसी से वे इस देश की जनता में शुल मिल भी गए, परन्तु ऐसा भी नहीं कि उन्होंने अपने चिन्ह भारत की संस्कृति पर न छोड़े हों। मूर्ति सूर्य की पूजा। उन्होंने ही इस देश में प्रचलित की। पुराणों का कथन है कि शाम्ब ने इस देश में सूर्य का पहला मंदिर सिन्ध में बनाया। परन्तु जब वह मंदिर बन चुका तब आवश्यकता हुई उस देवता के पुजारी ब्राह्मण की ओर भारत के ब्राह्मण को सूर्य की पूजा का शान न था। विश्वा होकर शाम्ब को विदेश से शक ब्राह्मण युलाने पहुँचे जो सूर्य की पूजा कर सके। शाम्ब का सिन्ध में

दी सूर्य का मंदिर बनवाना और पूजा के निमित्त ब्राह्मण न पा सकने पर शक पुरोहित बुलाना एक राज रखता है जिसे पुराणों के पढ़ने वाले श्रावके भारतीय न समझ सकते हैं। पर जब पुराणकार उस सत्य की लीला पोती कर रहा था, तब मैं मन ही मन मुख्यरा रही थी क्योंकि वह रहस्य मेरा जाना था। शकदीप के ब्राह्मण जो आब तक देरी ब्राह्मणों में न मिल सके, जिनका छुआ जल तक पुराण पर्याय ब्राह्मण नहीं पोता, उन्होंने न केवल अपने लोकसंघ से भारतीय ब्राह्मणों का विरोध किया बल्कि उनके आपार में भी उनकी रोज़ी तक में उन्होंने हिस्ता बटाया और रोज़ी में हिस्ता बटाने वालों के साथ कभी किसी देश में किती ने भाईचारा न निभाया। उनके प्रति देशी ब्राह्मणों का अस्पृश्य आचरण निश्चय उसी नव विधान का प्रमाण है। साथ ही वह नी शर्य रखता है कि सूर्य की प्राचीन भारतीय मूर्तियाँ अपनी वेशभूता में सर्वथा अभारतीय हैं। सिर पर उनके पगड़ी है, बदने में लम्बा चोंगा, कमर में तलचार और दोनों में घुटनों तक कैंचे दृट और काल में कटार जो अधिकतर शक और कुपाल संनिक का बेप था। इस वेशभूता में सूर्य को पूजते हुए भारतीयों ने कभी आपसि न की।

शकों के बाद धीरे-धीरे मेरी हस्ती फिर मिट चली और एक अल्पायु शक्ति ने आकर मेरे प्राक्षादों में डेरा डाला। वह शक्ति पहलकों की थी। छोटे मोटे बनेक राजा मेरी धरा पर राज करते रहे, परन्तु नितान्त अशक्य होने के कारण उनकी स्मृति मुझे मिट चुकी है। हाँ, उनके प्रचलन नरेरा गोम्दोकर की याद मुझे निश्चय बनी है।

इस याद का एक कारण और है। इस काल इल द्वीप में वह ददांद तेज उत्तर दुआ था, जिसने घर-घर गरीबों की शक्ति की चेतना जगाई। उनमें उसने नवे प्राण कुँके और वह उचित ही मसोहा कहलाने लगा। वह 'इसा' था, जिसके बनाये मार्ग पर चलने का कम

से कम सारा योरोप और अमेरिका दम भरते हैं। श्रीमानों के ऐभव को उत्तन उठने वाली और उनकी समृद्धि की पाया दरिद्र बनता उनके भाई से दीक्षा जा रही थी, जब इस महात्मा ने भूटे देवताओं और श्रीमानों के विस्त्र अपनी आवाज उठाई। श्रीमानों के सम्बन्ध में उसने कहा कि जितनी सम्नावना ऊँट को सुई की नोक से निकल जाने की है उसनी ही सम्नावना श्रीमानों को विहिष्ट के राज्य में प्रवेश पाने की है। विहिष्ट का राज्य वो केवल गरीबों के लिए है। इस पृथ्वी पर ही उस राज्य का विस्तार होगा जब स्वयं खुदा का वेटा इस दुनिया के राज्य पर शासन फरेगा। इसलिए जनन्जन में प्रेम हो, दया और सौहार्द का प्रचार हो। काश। विहिष्ट के उस भावों राज्य की आशा न दिलाए कर उस महात्मा ने इस धरा पर ही परिस्थिति बदलने का प्रयत्न किया होता ! जो भी हो अत्यन्त प्रेम और निर्भीकता से उठने आये नए साम्राज्य की पोषणा की, नई चेतना का प्रचार किया, और फलस्वरूप वह तली पर चढ़ा दिया गया। मरते दम उठने प्रार्थना का—“खुदा इन्हें बना सर, यह आजानी है।” अहिंसा और प्रेम का दूसरा प्रचारक उस देश के इतिहास में कभी न सुना गया था और उसके मरते ही अनेक शिष्य उसके उद्देश लेकर विदेशों को चल पड़े थे।

इन्हीं धर्म प्रतिनिधियों में सन्त टीमर भी था जो उस संदेश को लिये दिलों में उसका प्रचार करता, उन्हें भावी विहिष्ट के राज्य की आशा दिलाता, श्रीमानों को कोशता, चिक्कारता, गोन्दोफर की राजधानी मेरे नगर में पहुँचा। गोन्दोफर उसकी तेजस्विदा और बचन की अद्वृट शृंखला से सर्वथा मुश्य हो गया। संत टीमर का मेरी सहकों पर अपने नये धर्म की धोषणा करते थे आब भी ऐसे कुन रही हैं। राजा से उठने कहा-राजन् भुक्ते लाल सप्ते दो, मैं तुम्हारे लिये महल बनवाऊँगा। राजा ने उसे लाल सप्ते दिये उसने उन्हें गरीबों को ऊँट दिया। राजा

ने उससे कुछ दिन बाद पूछा कहाँ है तुम्हारा बनाया मेरा वह अनुपम महल। उंत ने कहा विशिष्ट में जहाँ निश्चय तुम्हें सद्गति मिलेगी और उस प्राप्ताद में तुम्हारा निवास होगा जिसके पाये दरियों के उस आशीर्वाद पर खड़े हैं जो उन्होंने मेरे धन वितरण पर दिये थे।

गोन्दोरर चकित रह गया था। उसे धन का इड-प्रकार कहना उपयुक्त किसी प्रकार न जैना था और उसने उस महामना संत को कारागार में डलवा दिया था परन्तु निश्चय स्वर्य उसका बैमब चिरका-लित न हो सका। शीघ्र कुशाणों की बढ़ती हुई सीमाओं ने उसको आप्लावित कर लिया और मैं एक नये मारकाट की आवाज अरनी प्राचीरों के द्वारा पार सुनने लगी। नये सिरे से चोटें मेरी दृटी हड्डियों पर फूटने लगी। नये सिरे के पुरुष जँचे तगड़े दानव से नेरी धरा पर उत्तर आये। सिर पर कुलाह और पगड़ी, चदन में चौगा, कनर में तलवार, पैरों में जँचे छुटनों तक जूते पहने, ये मल्लधारी जीव न पहले देखे गये थे न हुने।

ये ज़मीक थे, जिन्हें इतिहासकारों ने यूद्धी संहा प्रदान की है। ज़मीकों ने पश्चिमी जीन से उठकर मध्य एशिया होते बाहरी में डेरा डाला था। कुन्न नद के उस तीर पर जहाँ पहले कभी ग्रीकों का निवास था, किर शकों का और अब उस आधार से उठकर अपने पंचजनों को एकत्र कर जेदार कुशाणों के नेतृत्व में वे काबुल जीत तिन्हु लौंब आये थे। उनके नेता कुजुल ने पहले काबुल पर अधिकार किया किर मुक्त पर। मेरे सारे आधार अन्द कुछ काल के लिये छिन्न-मिन्न हो गये। मेरी सारी ग्रीक संस्कृति तार-तार चिलर पड़ी। मेरी बस्ती किर बीरान हुई परन्तु बीन के उत्तराधिकारी कनिष्ठ ने किर मुक्ते जीवनदान दिया। और सिरकुल के चतुर्दिक एक बार किर मैं नये आलंकारों से सज कर खड़ी हुई।

कनिष्ठ ने अपनी राजधानी पुण्ड्रायता में स्वी आगुनिक चार-सदा में परंतु मेरे गीरव की रीति की भी कुछ अवनाभवा न हुई और कनिष्ठ निरन्तर अपने नये जीते दैनव से मेरा मरहन करता रहा। मुझे आव भी याद है कि पाटलिपुत्र से छोन कर लाये प्रख्यात चौद दार्शनिक और काष्यकार अश्वधोष ने पहले ने ही नगर ने हेरा ढाला था। मेरे ही नगर में उसने अपने अनेक प्रबचन किये थे। साथ ही पार्श्व और बमुनित्र ने भी। चल्य ने भी इसी अपनी रसायनशाला मेरे ही नगर में कायय की थी। नार्मद्जुन ने यहाँ अपने नवीन सम्बद्धय महायान के प्रबचन किये थे और जय काश्मीर के चौथे महासंघ का अधिवेशन समात हुआ, तब यहाँ घरों के द्वगत विख्यात दार्शनिकों का समारोह हुआ। उस नई शार्मिक चेतना से आश्वस्त होकर कनिष्ठ ने अपने उत्साह का प्रभाश इसी नगर में आशोक द्वारा बनवाये। धर्मराजिक सूर की भग्न रिति को मुद्द कराई।

मैं कनिष्ठ के औद्यार्य, उसके पौरव अध्यवा विद्यों को बात धिरेय न कहूँगी। अब मैं केवल उस नई संस्कृति की बात कहूँगी, जितका विस्तार कनिष्ठ ने किया। यथापि जितका आरम्भ कुशाणों की मेषा के परे था। भारत का आज का राष्ट्रीय देश, अचलन और पाजामा—कुशाणों का दी दिया हुआ है। उनका चोगा मुगलों ने शेखानी के रूप में लंबाला जिसे अवब के नवाब ने आज की अचकन बनाया उन्हीं का सलवार ढीला और चुस्त पाजामा बनाए और ग्रीकों का अध्यनिक भारतीयों का कुतां।

परन्तु इस दिशा में इससे कहीं विशिष्ट बात कशा संबंध की है। दूर्तिकला की, जिसमें ग्रीकों के सम्बंधक ने नए प्राय पूँके पे, एक नई शैली चलाई थी। जिस शैली का विस्तार विशेषतः कुशाणों ने किया। इस ग्रीक शैली को भारतीय कला में गन्धार लंगा दी गई। गन्धार शैली

का केन्द्र मैं ही थी । मेरे ही आधार से उठ उठ कर सैकड़ों कलाविज्ञ और आचार्य देश के दूतर प्रान्तों में विलो, देशावर और कानून शास्त्र और मधुरा रचने । ग्रीकों का सम्पूर्ण पंजाब से और विशेषकार मेरी नगरों से प्रायः दो सौ वर्ष रहा या और उनकी सेवा में मेरे दरबार में एक से एक कला कुशल ग्रीक के नगरों से आकर संरक्षित हुए थे । आपनी कला के माप उन्होंने भारतीय अभिन्नायों में रखे थे । भारतीय मूर्तियों में आपनी शैली का उन्होंने मूर्तिन किया था । अनेक बार भारतीय दार्शनिकों की मूर्ति बनाते आपनी अभिन्नषुष्ट काया में वे मुकुराव और अरत् का आकार कोरते, दाढ़ी और परिवेष्टन विशेष प्रकार से उन मूर्तियों पर तक्षित होते ।

जिस नार्गजुन ने हीनयान व्यापी बौद्ध धर्म की कठोर प्रवृत्ति में महायान की एक नवीन भक्तिधारा का उद्घोष किया था, उसी ने बुद्ध के मूर्ति निर्माण की शत भी चलाई थी । बुद्ध का कला में प्रदर्शन तब तक केवल उनके उष्णीश धर्म-चक्र, छत्र पद, बोधिशब्द आदि के सद्वरणों से किया जाता था । परन्तु अब साक्षात् मूर्ति का कला छेत्र में अवतरण हुआ और बुद्ध की पहली मूर्ति मेरे ही नगर में कोरी गई, यह मेरे लिए कुछ कम गई थी बात नहीं । फिर धीरे धीरे कुशाणों के ही मध्य काल में चलिक कनिक के ही शासन काल में गान्धार शैली का एक पूर्णी केन्द्र मधुरा में भी प्रतिष्ठित हुआ । इसमें सन्देह नहीं कि उसी आधार से गान्धार शैली में जन्मे ग्रीक सद्वरणों का भारतीकरण भी आरम्भ हुआ जो गुप्त काल तक सर्वथा स्वदेशी कर लिया गया । परन्तु मेरी शैली बहुत काल तक भारत में चलती रही और किसी न किसी रूप में वह बब तब विकसित होती रही ।

मैं तो भारतीय संस्कृति में मैने अनेक विदेशी जयों और प्रक्रियाओं को बहा कर संस्कृति का बहुस्त्रोतिक रूप दिया । वितना भी सांस्कृतिक

मिथण भारतीय संस्कृति में हुआ है अधिकतर उसकी धाराएँ मेरे ही अधार में निजों। मैं तब की दृग्मिया में संस्कृतियों का अभूतपूर्व संगम थी।

कुपाणों का साम्राज्य पूर्व में काशी तक जा पहुँचा था। परन्तु याकटकों और विशेषकर नागों की चोट ले उसे पीछे हटना पड़ा। यैं वो पाटलिपुत्र की चोट भेरी सर्वया अनजानी न थी पुरुषमित्र शुंग के पौत्र बुधमित्र ने प्रीकों को देश से निकालते हुये सिन्धु तट के आपने महासमर के पहले मेरे ही नगर में दौरा डाला था। परंतु उच्चर से मेरा विशेष परामर्श युतों द्वारा हुआ। समुद्रगुप्त के काली पहले जब कुपाणों को पंजाब से भाग काशुल में शरण लेनी पड़ी थी तभी मैं एक बार किर स्वर्तन्त्र हो गई थी। परंतु समुद्रगुप्त के चानने मुझे भी भुक्तना पड़ा। समुद्रगुप्त अपने प्रतिदूतों की लह कर्नो बदौश्त न कर सकता था और उसकी दिग्यजय के सम्बन्ध में मैंने अनेक राज्यों का मूलोच्छन सुना था। पंजाब के अनेक गण राजाओं ने चुप चाप उसकी महत्ता स्वीकार कर ली थी। दूर के शक मुरशदों ने भी उसे बेट भेजे थे। मैंने भी चुपचाप उसके सामने सिर कुक्का दिया। परन्तु मेरा विशेष परामर्श उसके पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने किया। शकों को मालवा से निकाल उसने शार्काय विश्व धरण किया था और बंगाल के शकुंप को तोड़ जब वह बायुवेग ले पंजाब के नदी को लांघता कोबक अरमान पढ़ाइों की छापा से निकल ईरानिनों को द्राक्षावलय से लदी दक्षिण-पूर्वी भूमि दो गौदता पामीरी पठार के बहु नद के तीर गा खड़ा हुआ तब मैं स्तम्भित रह गई। इतने लम्बे भू-प्रसार पर इतने लम्बे डग भरते किसी विजेता को मैंने न देखा था। चन्द्रगुप्त की तलबार मुझ पर भी पड़ी और वैसे पंजाब के नशतन्त्र नष्ट हुये मैं भी विनष्ट हो गई। परन्तु मैं औरों की भाँति भिट्ठी में देर तक पड़ो न रह सकी। चन्द्रगुप्त के लौटते ही मैंने

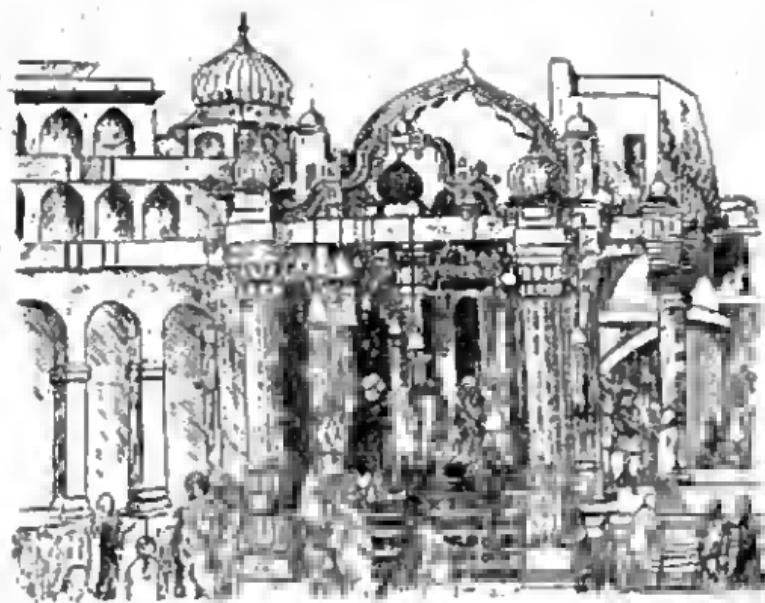
किर एक बार अपनी शक्ति अर्जित की । किर में उत्तरापथ के राजमार्ग की महरी बनी ।

परन्तु अब मेरा अवकाश और विनाश क्रमशः पास आते जा रहे थे । आगे जो चौट पहने वाली थी उठने सदा के लिये मुझको भूमिकात कर दिया । चीन के उत्तर-पश्चिम में काँसु नामक एक प्रान्त है जहाँ कभी हिंगल नाम की यह भव्यता रहती थी जो पश्चात् बाल में हृष्ण नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुई । नंगे, विकाल, अर्द्ध, हृष्ण रक्ष और लूट में मजा लेते थे । लहू और आग उनका साध्य करती थीं । वे ही हृष्ण अकाल के समय जो अपने आधार से बिछले तो पढ़ोमी श्रृंगों पर जा दूड़े । श्रृंगों जो अपने स्थान से बिछरे तो शकों से जा कटारये और शकों ने स्वयं अपना दबला और कर्यत का काँड़ा छोड़ बालूनी और हिन्दुस्तान की राह ली । हृष्णों ने न जाना कि उनकी गति ने कितना दूरस्थानी संकट डाला है । उनके कबीले के कबीले आग लगाते, गाँव के गाँव बलाते, उड़के लाशों से पाटते जिल दिशा में निकल पड़ते उत्तर हाशकार मच जाता । उनके नेता अतिला ने जो योरोप की ओर रुक किया तो रोम साम्राज्य की कमर दूट गई और वह किर 'दूसरी' बार खड़ा न हुआ । उन्हीं हृष्णों की एक धारा भारत की ओर भी भुड़ी । तब मगध में स्कन्दगुप्त का शासन था । भारतीय सीमा प्रान्त यद्यपि उत्तर का था परन्तु अनागत भूत द्वी आशंका से मुट्ठा होकर वह भागान्भाग मेरे नगर में पहुँचा और हृष्णों के बढ़ते हुये घोड़ों की बाग उठने लहूता रोक ली ।

उस काल तो निश्चय हृष्णों को गति कुछ वर्षों के लिये वक गई परन्तु उनकी बाद की भारा एक न थीं, अनेक थीं और धीरे-धीरे सारा उत्तर भारत उनके पदों से अकान्त हो गया । स्वयं स्कन्दगुप्त उनके साथ लड़ता हुआ जूँक गया परन्तु उसका तप और दृढ़ता स्वदेश की

उनसे रक्षा न कर सकी । और जब इतना बड़ा राष्ट्र उस महामलंयकारी धारा को न रोक सका तो नेरी क्या विस्तार थी । धीरे-धीरे काशुल और पंजाब, पंजुह और मध्यदेश, गुजरात और मालवा खुतन और काश्मीर हूँणों के राज्य में हो गये । चौदह हजार लँची बर्गों लोटियों को लाँपते थे विस्ते भर के जवान जो मैदानों में उतर आते तो पठान और पंजाबी डर से उनका पानी भरते ।

मैं भी उनके सामने खड़ी न रह सकी और लड़खड़ा फर्जो अब की गिरी तो सिर न उठ सकी । वह प्रायः पाँच सौ ईसवी की आत है आज से कठीब डेढ़ हजार वर्ष पहले । सिर तो जो खोई तो भूमि में देसी रहनाहै, ऐसी सोई कि इन डेढ़ हजार वर्षों तक किसी ने मुझे न जाना, मेरे अवशिष्ट की समाप्तिस्वरूप टीलों पर गाँव बसे । सेनाओं ने इस्लाम का झंडा लिये अनेक यार कूच किया पर उन्होंने न जाना कि इन टीलों के नीचे मेरी प्राचीन विनूतियाँ सोई हैं । चौदह सौ वर्ष बाद अब मेरी नीद खुली है परन्तु जोड़-जोड़ अलग हैं प्राण विसर गये हैं । जो देखा था, वह अब नहीं, जो अब है, वह तब न था ।



मथुरा

भारत के सात नगरों में मेरा भी नाम है। मैंने भी उन्हीं की भाँति अनेक उपल युथल 'देखी हैं। मेरा प्राचीन नाम मथुरा था पर किसने उसे दिया था किस प्रकार और कब वह नाम बदल कर मथुरा हो गया मैं नहीं कह सकती। इतना निश्चय है कि मैं भारत के उन योद्धे नगरों में से हूँ जिन्हें आयों ने नहीं बताया और जो उनकी विजय से पहले ही चल चुके थे। उनसे बहुत पहले यमुना के मनोरम दृष्ट पर मेरी नींव पहुँची थी और जिसे पिछले दिनों में शर्करत कहने लगे थे, उस देश की मैं कब ते त्वामिनी हो चुकी थी।

अनेक बार मेरे मैदानों में आयों ने मेरे निवासियों से उद किया

और उन्होंने भी मुझे उसी प्रकार लूटा और अरनानित किया जिस प्रकार हूँगों और गवर्नी के मुस्तान ने लूटा । मिथुले काल तक मेरी जनता के प्रिय और अधीश्वर कृष्ण ने आर्यों से लोहा लिया या परन्तु बैसा देश के और नगरों के साथ हुआ, मेरे साथ भी बैसा ही हुआ । और धीरे धीरे मैं विजित हो गई । श्रावणीदिक आर्यों के यदुओं ने पहले पहल मेरी नगरी और प्रदेश में पहले आर्य आवास स्थापित किए । यदुओं के यहाँ बस जाने के बाद लगातार आर्यों की आपादी बढ़ती गई । यदु उत्तरकाल में यादव कहलाए और उन्होंने ही बैदियों ने रा इतिहास निर्मित किया । उनकी अनेक शास्त्रादृश देश में फूली फूली । उन्हीं की एक शास्त्र शूरसेन भी यी जिसने मेरे प्रान्तों को अपना नाम दिया । रामायणकाल में उसी कुल के राजा ने सीता के स्वर्यंशर में भाग लिया यद्यपि राम के छोटे भाई शशुभ्र को नेरे आदिन निवासियों के विशद भी बार बार लाहना पड़ा । महाभारतकाल में अन्यकृष्णियों के कुल तथा संघ यहाँ स्थापित हो चुके थे, यद्यपि तभी उन्होंने काठियावाड़ में आरने नए उपनिवेश बनाए और कृष्ण ने वहाँ द्वारका बसाई ।

प्राचीन इतिहास मुझे स्मरण नहीं, मेरा जाना भी नहीं क्योंकि उदियों का बुँद्रा उसे अपने अंधकार में छिपाए हुए है पर कुछ न कुछ उसकी याद आती ही है और जो कुछ याद आता है वह अच मैं कह रही हूँ । शूरसेनों का एक राजकुल कुछ काल से नेरी नगरी में तथ प्रतिष्ठित हो चुका था, जब उसने नेरे आस पास के गाँवों में बननेवाले अनार्य गोपों के साथ अपना विवाह सम्बन्ध स्थापित किया । उन गोपों का भी अपना एक इतिहास था, अपने 'उत्तर्य' की कुछ दोषियों थीं, अपने नायक थे । उन नायकों में लब्जे प्रबल हृष्ण हुआ, यामुदेव हृष्ण जो गोपनन्दन का पुत्र था और जो रोमांचक ललित कथाओं का नायक है । इतना मैं आरम्भ में ही कह देना चाहती हूँ और वह कुछ

मुनो हुई नहीं अपनी देली हुई थात है कि बज के गोपों में विवाह संबंध कुछ स्थाई न थे । उनका वह संबंध वास्तव में कमजोर और दृष्टिक या जिसे वैवाहिक कमजोरियाँ भी उनमें कुछ कम न थी । जीवन उनका उदात्त और स्वत्थ निश्चय था परन्तु उनके नर नारियों को विशेषकर तरण गोप गोपियों को नेरे जंगल और मैदान भेड़े प्रिय थे और एक बार जब वे उत्तर निकल गए तब विवाह की कृतिम अंखलायें उनको शायद ही कभी रोक सकीं । बासुदेव कृष्ण ने जौ लाक्षण, शकि और नीति में अद्वितीय था इस सचिकर जीवन को और उदावा दिया ।

अपने जनप्रिय जीवन के कारण ही वह शूरसेनों के पासुर राजकुल का अप्रिय हो चुका था क्योंकि देश की बनता उत्तमी थी, उपर्युक्त के बेटे कूरकमीं कंत की नहीं । जब दोनों का मनोमालिन्य पराशाठा को पहुँच गया तब उस ने कृष्ण को छोखे से मरवा देना चाहा परन्तु पासा उलटा पड़ा और कृष्ण द्वारा वह स्वयं मारा गया । उसका वह राज-कुत्तों के लिए खतरे की भंडी थी और वह भी ऐसे नेता द्वारा जिसका कुल अद्वितीय और अज्ञात था । कंत मगध के विकान्त सप्ताठ जरासन्ध का दामाद था और उसके बध की उत्तर सुन जरासन्ध अपनी विशाल देना लिए मेरी नगरी पर चढ़ आया । मेरी स्थिति अराजक हो गई थी और मुझ पर अनेक प्रकार छोटे पड़ने लगी थीं और अब वह छोट तो कुछ ऐसी थीं जिसे संभाल सकना सम्भव न था । कृष्ण जनप्रिय अवश्य था परन्तु जनता को वह संगठित न कर सका और जरासन्ध के सामने बज छोड़ उसे देश की परिवर्ती सीमा पर समुद्र के किनारे सीराप्र भागना पड़ा वहाँ उसने द्वारका नगरी छोड़, परन्तु असने इस संघर्ष से कृष्ण ने जान लिया कि आर्य उंकूति से वह लोहा तभी से सकेगा और उसको ऐड़ दृश्यियों के गढ़ में तभी हो सकेगी जब वह स्वयं अपने को स्वत्तिय विद कर दे । उत्तमी एक महत्वाकांक्षा थी, वह वह कि वह

देश में श्रावों अनायों दोनों द्वारा देवता की भाँति पूजा द्वाय। उस समय के संसार के इतिहास में निश्चय ऐसी महत्वाकांक्षा कुछ अजब न थी। अनुरोद्ध ने इमुण्डी, निधियों में रामसेवा शारि की महत्वाकांक्षा कुछ इसी प्रकार की रही थी और उन्होंने अपने विजित किए नन्दिरों में देवमूर्तियों को इटा कर अपनी मूर्तियाँ पश्चात् थीं। कृष्ण भी कुछ ऐसा ही चाहता था यद्यपि यह कुछ आसान न था क्योंकि इसके न केवल शख्सपर क्षत्रिय ही वाधक थे वरन् नीति के पंडित ब्राह्मण भी महान अवरोध थे। कृष्ण की महत्वाकांक्षा के सफल होने का अर्थ था ब्राह्मण देवताओं का अन्त, उनके बग, इन्होंने का अन्त, उनकी दक्षिणा रोकी का अन्त। पर कृष्ण भी कुछ वाधारण साधनों का पुरुष न था। उसकी नेवा में वृहस्पति को निवार कर देने की शक्ति थी और उसने ब्राह्मणों के देवता इन्द्र तक को देश की विश्वात परम्परा से उत्थाप केकरने का निश्चय किया।

क्षत्रियों की अनन्त उसकी सहाता में वाधक होनी, यह सोचकर उसने नीति का सहारा लिया। पहले उसने क्षत्रिय बनना निश्चित किया। क्षत्रिय बनना कुछ आसान न था विशेषकर इसलिए कि वह नेरे नगर के क्षत्रिय राजकुल के दाय अपने एक दूर के संग्रन्थ के अतिरिक्त कुछ और न दिला सकता था, पर इससे निवासाहित न होकर उसने नए राजकुलों से संग्रन्थ जोड़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया। तब दो राजकुल भारत में विशिष्ट थे, जिनके साथ विवाह संग्रन्थ भाग्य और गौतम की दात समझी जाती थी। उनमें से एक विद्यमान का राजकुल था, जहाँ प्राचीन काल में विवाह कर राम के पितामह अज ने अपने को धन्य माना था, दूसरा वह कुरुकुल जो भारत के तत्कालीन राजवंशों का चूड़ामणि था। कृष्ण ने विद्युत गति से काम किया। लोग उसके अद्वितीय कुल और अद्वितीय कार्यों पर उँगली उठाते थे। उसने उस

चत्रिय और विशेषतः ज्ञानिय कृत्य को समझ किया जो उस प्राचीन काल में भी प्रायः श्रसाधारण समझा जाने लगा था। विद्यर्थी राजकुमारी चेदि शिशुगाल को व्याही जाने वाली थी, कृष्ण ने वहाँ अचानक पहुँच रक्षापूर्वक इर लिया और उसे व्याह उस कुल से अपना संक्षेप स्थापित किया। इसी प्रकार अपने मिश्र पाण्डव आर्जुन को वह अपने द्वर चढ़ा लाया और उसके साथ अपनी शहन मुमद्रा को भगा दिया। यह दोनों विद्याह आमुरी समझे जाते थे और अतिकालक ज्ञानियों द्वारा भी कष्ट साध्य। इसके अतिरिक्त पांडवों के राजमूल में वह परम आदरणीय और पूज्य इन पैठा और जय हस्तिमणि दंचित शिशुगाल ने उसके अंत फुलशील की शाव उडार्द तब उन्नने उसे चक्र से सनातनल पर हो मार कर उसका मुँह बन्द कर दिया। इस प्रकार उन्नने अपने को ज्ञानिय घोषित किया।

महाभारत के युद्ध में उसने जो कृत्य किए वह असाधारण मनुष्य के थे और ब्राह्मणों तक को उनका विरोध कर सकना असम्भव हो गया। न केवल वह ज्ञान धर्म में तेजस्वी निकला बरन् उन्नने एक चितन की नई परिपाठी का आरम्भ किया, जिससे ब्राह्मण भी चकित रह गए। धीरे-धीरे इन्द्र का आसन दिला। उसने वहीं स्वयं प्रतिडा पाई और उसके जीते जी जनता उसे पूजने लगी। भारत के सात्कृतिक इतिहास में जनता के इहते जीवन पर किसी ने इतनी गहरी ध्याप न डाली जितनी मेरे उत वाष्पेय वायुदेव कृष्ण ने और आज हिन्दुओं की विशाल संस्था येष्वाय है उसको 'सचिवदानन्द' समझनेवाली और जो जैव्य नहीं भी है वह भी उसके नाम का आदर करता है। कृष्ण की सूृति मेरो सूृतियों में सबसे रुचिकर है, सबसे रोमांचक, सबसे परिच्छिवाह

उस युग की जिसे ऐतिहासिक काल बहते हैं, मुझे वह एक घटना चाद है—छठी उदी ईस्ती पूर्व की जब अवन्ती के प्रदोत्कुल ज्यि विद्याह

सम्बन्ध मेरे शूरसेन कुल से हुआ था । उसके बाद दीर्घकाल तक मेरा इतिहास अनिश्चित रूप से बनता रहा और मैं बहती हुई राजनीतिक और्ध्वी की मूल शाक्तियाँ बनी रही । मीरों ने जब हिन्दुकुरा तक अपने साम्राज्य की सीनाएँ बढ़ा लीं तब मैं भी उसमें शामिल हुई और यद्यपि पाटलिपुत्र उठ साम्राज्य की राजधानी थी, वहाँ मेरों ही कथाओं के गीत गाए जाते रहे । अशोक के बाद जब उनका साम्राज्य कमज़ोर कर्पों पर टिके होने के कारण खिल चला तब मैं स्वतंत्र हो गई ।

उन्हीं दिनों बाल्की के ग्रीकों ने भारत पर आक्रमण किया और तब उनकी एक शाखा मेरी ही ओर से मुझ पर आँखों पर अधिकार करती साकेत की राह कुसुमपुर गई थी । तभी गृह्युद की खबर पा उनके नेता दिमित्रिय ने मगध से लौटकर मेरी ही प्राचीरों के पीछे डेरा डाला या और बाद जब उसके जामाता मेनान्दर ने शाकल को अपनी राजधानी बनाया तब मैं भी ग्रीकों के अधिकार में थाई परन्तु विशेष गौरव मुझे शब्दों और कुशलों ने दिया । भृष्टदेश के पश्चिम में बैला मैं वैष्णवधर्म का केन्द्र हो गई थी वैसे ही उठ काल बीद और जैन सम्प्रदायों का केन्द्र भी हुई । ऐसा नहीं कि इन तीनों में परस्पर वैभवत्य न हो । वैभवत्य तो एक बार इतना बड़ा कि बीद मेनान्दर तक को पुष्यमित्र शुंग के विहद चढ़ा ले गए परन्तु साधारणतः तीनों धर्मों के अनुयायी और विशेषकर उनके गृहस्थ उपासक आपस में शातिष्ठीयक रहते थे । मेरे नमर में सैकड़ों देव मन्दिर थे और अनेक बीद तथा बैन विहार ।

बैला मैं कह कुको हूँ, मुझे गौरव शको और कुशलों ने दिया । पहली सदी ईस्ती पूर्व में उनके जो पाँच राजकुल भारत में स्थापित हुए उन्हीं में से एक मेरा शकराज कुल भी था । जब सिन्ध और पश्चिमी धर्माव में, प्रय और तत्त्वशिला में लियककुसुलक तथा उसके पुत्र परिक

महाक्षत्र प्र और द्वंपये तभी मुझ पर आगान और हगमास का शासन था। शक द्वंपय आपने को ईरानी पार्थ उप्राटो का प्रतिनिधि शासक क्यों मानते थे यह बता रखना कुछ कठिन नहीं पर मैं इतना दी कह कर सन्तोष करूँगी कि मेरे शासक भी आपने को द्वंपय कहते थे और ईरानी उप्राट को उससे दूर होकर भी सिद्धांतः अधीश्वर मानते थे, यद्यपि मेरी स्वाधीनता पर इसका कुछ कभी प्रभाव न पहा। मैं स्वतंत्र राष्ट्र की राजधानी की भाँति ब्राह्म आचरण करती रही और मध्यदेश के पश्चिमी प्रहरी की भाँति मेरे स्थामी शक और विदेशी होकर भी उसकी रक्षा में सर्तक रहे।

मेरा उत्कर्ष विशेषतः रन्जुदल और उठके पुत्र महाक्षत्र सोडास के समय प्रथम शाती ईस्ती पूर्व में हुआ। मैं न केवल स्वाधीन थी बरन् पूर्वी पंजाब, पश्चिमी मध्यदेश और मालवा तक के प्रदेश मेरे प्रापाद से सन्तोष प्रकट करते और भृकुटि भंग से काँप जाते थे। मेरे ही इस राजकुल के निकटवम बन्दु चट्टन ने उज्जरिनी में मालवा शक कुल की प्रतिष्ठा की और तब मैं आपना वह प्रदेश उस यशस्वी शासक को दौँप उधर से निश्चन्त हुई। कुछ दी काल बाद मेरी ही और से और नेरे राजकुल से सम्बन्धी लोहिताद्य अस्त्रात ने मध्यदेश को आपनी शक्ति का खाद खालाया था और पाटलिपुत्र में रक्षाशाही किया था। सोडास ने भारतीय धर्म में दीचित होकर मेरी नगरी में अनेक विहार और देव मन्दिर बनवाए।

कुपाणों ने शकों से ईस्ता की पहली सदी में पश्चिमी भारत के सबे छीन लिए। कुदुल और विम ने ढालुल, पश्चिमी पंजाब, कारमीर, बालूत्री, काशगर, मारकन्द और लुत्तन पर अधिकार कर लिया। मैं तभी कुपाणों के नेता वीन के कब्जे में आ गई और पेशावर से पाटलि-पुत्र जाते समय कनिष्ठ ने मेरी ही नगरी में डेया डाला था। शक सूर्य

के द्वासक रहे थे और कुपाण समिलित रूप से अनेक धर्मों के देवताओं के । स्वयं कनिष्ठ कुछ काल बाद शीढ़ हो गया था, परन्तु अपने सिस्तों पर उतने बराह जरदूश्ती रोमन हिन्दू और शीढ़ देवताओं को आकृतियाँ खुद बायीं ।

कनिष्ठ ने अपनी मुख्य राजधानी तो पेशावर में ही रखी परन्तु उसने अपने पूर्व की राजधानी मुझे बनाया क्योंकि पूर्व के प्रान्ती के मध्य देश के सिंह-द्वार पर बसी होने के कारण देस्त-भाल मैं ही कर सकती थी । मेरी ही नगरी से होकर विलक्षण शीढ़ दार्शनिक और छाव्यकार अश्यवोप कनिष्ठ के साथ शीढ़ों की चीथी तंगीति में भाग लेने काश्मीर गया था । मेरी ही नगरी में अधिकतर उस नागार्जुन ने अपने भक्तमार्गीय उपदेश किए जिसमें शीढ़ों के मदायान सम्प्रदाय का प्रचार किया ।

कनिष्ठ की पूर्वी राजधानी हाँने के अतिरिक्त यैं कुपाणों का देव-कुल भी थी । देवकुल तथ राजाओं के मूर्तिलंग्रहालय को कहते थे । मेरे माट नामक बिस गाँथ से कुपाण राजाओं को भूतकहीन मूर्तियाँ इधर कुछ काल हुए मिली हैं, वही कुपाणों का देवकुल था । उसी में उस चब्दन की मूर्ति भी पधराई गई थी जो पीछे मालवा का ज्ञात्र बना । इन कुपाण और शक राजाओं की मूर्तियों पर जो वज्र आज हम देखते हैं वे निश्चय आज के हमारी अचर्कन और पाजामे के पूर्व-वर्ती हैं । लग्ने कुर्से और चांगे और साथ ही ऊँचे बृट इन मूर्तियों के पदनावे हैं और उन सर्व मूर्तियों के भी जिनकी पूजा का प्रचलन शकों-कुपाणों ने ही भारत में किया था । सर्व की मूर्तियों की पोशाक मध्य एशिया की वह पोशाक है जो शकों और कुपाणों ने पहले पहनी और द्विं पठानो-मुग्लों ने । आज मैं उसी पोशाक को भारत की

राष्ट्रीय पोषाक बनते देख सन्तुष्ट होती हैं। परन्तु मेरी जनता उसके अन्तर्गत को काश पहचान पाती।

कुपाण्डों ने इस प्रकार भारतीय संकृति को अपना कर उसमें अपने नए विदेशी लोगों का योग दिया और उस योग का कुछ केन्द्र में रही। मेरे ही आधार से मध्यनारत और दक्षिण की कला में भी विदेशी पुट पहुँची। एक लूण ने अब उस भारतीय कला की ओर संकेत कराँगी जो विदेशी समर्पण और संरक्षण में फूली-फूली थी। भारतीय मूर्तिकला में जिसे गन्धार शैली कहते हैं, उसका केन्द्र पहले तक्षशिला परियोजना-वर हुआ। दूसरी ओर पहली ईसा पूर्व की सदियों में तक्षशिला ने ग्रीकों का यज्ञ कायम था और वहाँ से वे सनूचे पंजाब और काबुल की धारी पर शासन करते थे। उसका शासन केवल तक्षशिला का शासन न था बरन् शान्ति के दिनों में उसके शासित प्रदेशों में ग्रीक तक्षक अपनी छुनियाँ से कला की अभियान मूर्तियाँ काटते थे और उनके रंगमंच के अभिनेता इस्काइलस, सोसाइटीज और मेनामान के नाटक सेजते थे। उन्हीं ग्रीकों ने भारत की मूर्तिकला में गन्धार शैली का आरम्भ किया जिसमें भारतीय विद्यां की ग्रीक शैली से पत्तर में अनुपायित किया गया। वही शैली शब्दों और कुपाण्डों के शासन काल में भी चलती रही और बुद्ध की पहली मूर्ति नहामान तन्त्रदाय के चल निकलने पर वही बनी। वह पहली मूर्ति सर्वथा ग्रीक आकृति की थी। परन्तु शोप ही बाद उसके स्वयं का भारतीयकरण होने लगा और उस भारतीयहरण का केन्द्र में थी। स्वयं कुपाण्डों के शासनकाल में ही वैसे जैसे उनकी सांस्कृतिक वेतना भारतीय होती गई वैसे ही वैसे इन मूर्तियों का भारतीय-करण भी इस भरता गया, और युनों के समय तो उसकी पराकाण्ठा ही हो गई। तब की बुद्ध मूर्तियाँ ग्रीक आदर्शों से सृष्ट होने पर भी सर्वथा भारतीय हैं।

कनिष्ठ का शासन कावृल से मगध के पश्चिमी इलाकों तक था और जब हमी यह स्वयं भेरी नगरी में न रहता पश्चिमी मध्यदेश और पूर्वी पंजाब का शासन मेरे केन्द्र में स्थित उसका लक्ष्य खरपटान करता थैसे पूर्वी ग्रान्तों का काशी में स्थित शासक बनस्तर। कनिष्ठ के बाद बाशिष्ठ हुआ और बाशिष्ठ के पश्चात् हुविष्ठ। हुविष्ठ के बनाए अनेक औद्योगिक और देव-मन्दिर आज भी भेरी धूल में मिले जुले हैं। बासुदेव तो सर्वया हिन्दू और वैष्णव हो गया। उसके शासन काल में हिन्दुओं का प्रभाव धीरे-धीरे घटने लगा और उसके वंशधरों की दुर्बलता ने तो वाकाटकों और नागों को अपनी महत्वाकांक्षा चरितार्थ करने में वही सहायता की। दूसरी सदी ईस्वी में नागों ने न केवल कुशाणों के दुर्बल दायें से शक्ति छीन ली बरन् उनको पंजाब में भगा अपना राज्य मध्यदेश में स्थापित किया। शीघ्र मैं तब कुशाणों के दाय से निकल कर नागों की शक्ति का पश्चिमी केन्द्र बनी। भारशिव नाग वीरसेन ने तो मुझे ही श्रावः अरनी राजधानी बना ली थी यद्यपि अनेक राजनीतिक केन्द्र दूसरे भी थे—कान्तिपुर और पश्चावती। पश्चावती तो उनकी विशिष्ट राजधानी ही थी।

कुशाणों का अधिकार तो नेरे ऊपर से उठ गया परन्तु जो गौरव मुझे उनके सम्बन्ध से प्राप्त हुआ था, वह फिर कभी मुझे न मिला। मैं उनकी न केवल राजनीतिक पूर्वी राजधानी थी बरन् उस काल की कला का भी मैं मुख्य केन्द्र थी। कुशाण काल भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में विशेष प्रसिद्ध हो गया है और उस कला की मैं ही विशिष्ट राजधानी थी। बुद्ध की अनन्त मूर्तियाँ मेरे तत्त्वक कलाकृतों ने कोरी, और देश के कोने कोने के विहारों में वे पश्चात् गईं। नेरे आँगन में निर्मित स्तूपों की बेदिकाएँ (रेलिंग) तो विशेष प्रसिद्ध हुई और उनके स्ताम्भों पर उत्तीर्ण वक्षी मूर्तियों ने तो भरहुत और उँची की रेलिंगों की शुंगकालीन

यद्यु आकृतियों को लजा दिया । उनके फैले हृतिम लाल्हाशिक मूर्तियों के ऊपर मेरी चेदिकाओं की यद्यु मूर्तियों ने अपना अहृतिम सर्वेषां प्राकृतिक रूप पाया । नम, आकर्षक, तम्मोहक यद्यु मूर्तियों अपने सौंदर्य, अल्लहपन और पार्थिव आचरण ते हर कला केव में अप्रतिम है । सैकड़ों की संख्या में भग्न और अभग्न रूपों में वे नेरे लगड़हरों में पारंगाँ हैं और उनको आज का कला समीक्षक जो देखता है तो दाँतों लक्षे उँगली दबा लेता है ।

पत्थर का साधन तो कुपाश कला में प्रमुख हुआ ही मिट्टी के लिलोंनो के असंख्य नमूने मेरे भग्नाबशेषों में निले हैं जिनसे तत्कालिक कुन्हारों की कला का भी पता चलता है । आब भारत के अनेक संग्रहालयों में जो नेरो भूमि से खुदी सैकड़ों भृगुनृतियों सुरक्षित है उनको कभी मेरी नगरी के कुशल कुन्हारों ने अपने बनाए साँचे में ढाला था । अनन्त व अनन्त उनकी संख्याएँ मेरी नगरी में प्रस्तुत हुई और दूर दूर के देशों और प्रान्तों में उनके पेमी उन्हें ले गए । आज जो मैं कच्चों के नोंडे खिलौने देखती हूँ तो अपने प्राचीन नागरिकों की छचि पर उचित अर्हकार होता है । भारशिव नागों ने अपनी विजय के उपलक्ष्म में अश्वमेष तो काशी ने किए परन्तु मेरी नगरी भी उनकी पश्चिमी सीमा का केन्द्र बन गई । नागों ने कुषाणों को भगा कर कम से कम अन्तर्यंद में ऐसी राजनीतिक स्थिति पैदा कर दी कि बहाँ एक समृद्ध राज्य स्थापित हो सके और हुथा भी ऐसा ही । उस अन्तर्यंद और साकेत और मगध में गुप्तों का एहसे वह राज्य काव्यम हुआ जो फिर बढ़ कर साम्राज्य हो गया और जिसमें भी समा गई । गुप्तों ने तीर्थस्थानों की साधारण अदा के अतिरिक्त मुक्ते अधिक गौरव तो न दिया, परन्तु मैं अपनी प्रतिभा से उनके काल ने भी कला की राजधानी बनी रही । इसी काल मैंने विदेशी ग्रीक लक्षणों से संयुक्त कर्ता के आदर्शों का भारतीकरण

दूरा किया और इत फाल पत्थर और मिट्टी के जो नमूने इत देव में मैंने प्रस्तुत किए, वैसे न पहले कभी हुए थे न पीछे हो सके।

दूरों ने जब गुप्त साम्राज्य को तोड़ दाला तब मुझ पर भी उन्होंने अन्वरत चोटें की और मेरे मन्दिर, उनको मूर्तियाँ सभी खण्ड-खण्ड हो गए। दूरों का सर्व मृत्यु का सर्व या और एक बार तो मैं बुरी तरह उनकी दृश्यता से उज़इ कर नंगी हो गई।

हर्ष ने किर बुझ पर अधिकार किया और उसके बाद यशोवन्दन ने। यशोवन्दन के सवय जब काश्मीर के ललितादित्य मुक्तापीद ने कन्नौज पर आक्रमण किया तब उसने अपनी सेना के पड़ाप मेरी ही नगरी में ढाले थे। कुछ ही काल बाद अन्तिम आयुष नृपति से कन्नौज क्षेत्र जब गर्भी लेही तब मैं उनके शासन में शामिल हुई। प्रतिहारों ने मुझे रम्भ और बन धान्य दिया परन्तु किर भी मैं शकों और दुष्पाणों का गौरव उनके शासन में प्राप्त न कर सकी। हाँ आक्रमण के लिए इधर-उधर दौड़ती सेनाओं की घमक मैंने निश्चय लिया।

प्रतिहारों के अन्त्य काल में उत्तर पश्चिम से गजनी के महमूद का इमला हुआ। महमूद कन्नौज जाने के पहले मेरे द्वार आया। मेरी प्राचीरों के द्वार बन्द थे। उन पर उसकी चोटें शुरू हुईं। महमूद ने जिस प्रकार नगरकोट के मन्दिर लूटे थे वह मैं सुन चुकी थी और जब हर्ष मेरी ओर बढ़ा तब मेरे प्राण खत्त गए। मेरे मन्दिरों के देवता निष्ठाय पत्थर के तो ये ही उनसे अपनी रक्षा की आशा मैं क्या कर सकती थी और निस्तर बिलास से मेरे नागरिक इतने बुजादिल हो गए थे कि उनसे भी कुछ आशा नहीं की जा सकती थी। मेरी नगरी यूजा-पाठ की नगरी कब की हां चुकी थी और शब्द ग्रहण करने की तार किसी में न थी। विशेषकर जब वह एक्स्ट्रार 'बुलशिष्टन' गाड़ी महमूद अपने लूट के इतिहास और रक्षणात की कहानियों के धुरें में लिपटा

सामने लक्षा था। नगर के द्वारा वैले ही दृट रहे थे, अब भागने वालों ने उन्हें सीधा खोल दिया और महमूद की चोटें भेरे मंदिरों पर उनमें प्रतिष्ठित मूर्तियों पर पढ़ने लगीं। होने की विशाल मूर्तियाँ रलों से जड़ी थीं। इतनी विशाल थीं कि उनको तीलने के लिए बार-बार लोड़ना पड़ा। सदियों से सिवा मन्दिरों के भरडार भरने के हिन्दुओं ने चन्नी उनको छुआ तक न था, विनेताओं तक नै नहीं। वह सारा रत्न संभार महनूद ले गया। दिसम्बर का महीना था। जाहा कहाँके का पढ़ रहा था, जो प्रमादी नागरिक भाग न सके अपनी रजाइयों ने दुबके पढ़े रहे और उन लपटों के शिकार हुए जो पड़ने ने नगर में प्रब्लेमित कर दी थीं, मुझे उन चीलते-चिलते, तहपते-जलते बुद्धिलों से कोई हमदर्दी नहीं जिन्होंने मेरी आजादी बचाने के लिए उँगली तक न उठाई। मुझे उम्मीद थी कि उज्जयिनी का शिद्द लड़ाका परगार भोज मेरी रक्षा को आएगा पर मह राजा की अनुस्तिर्पति में उस काल अनिलवाइ को लूटने में व्यरुत था।

बाद के पचचीसों वर्ष जुहप और तकलीक के थे। उत्तर-दक्षिण की हिन्दू-मुस्लिम सेनाएँ दोनों मुझे आक्रान्त करती रहीं। काशी की ओर जाते हुए पहले नियतिगीन ने मुझे लूटा, फिर हाजिब हुगतिगीन ने, फिर अनीर खुमरो ने। तब कहीं गहडवाल। ने नेरी रक्षा का प्रबन्ध सोचा। गहडवाल ब्लौब, काशी और दिल्ली के सामी हो जुके थे और मैं भी उनके अधिकार ने आ गई थी। फिर विजयचन्द्र से जब चौहान दृष्टि विश्वराज बीसलदेव ने दिल्ली छीन, सी तब मैं भी गहडवालों के हाथ से निकल कर चाहमानों के शासन में चली आई। तब दिल्ली के भाष्य के द्वाय मेरा भाष्य गुण गया। राम पियोरा जब शहदुरीन के हाथ दूतरी मुठभेड़ में विनष्ट हुआ तब मुझ पर भी काफी चोटें पड़ी और कुतुबुद्दीन ऐक ने जब दिल्ली सी तब

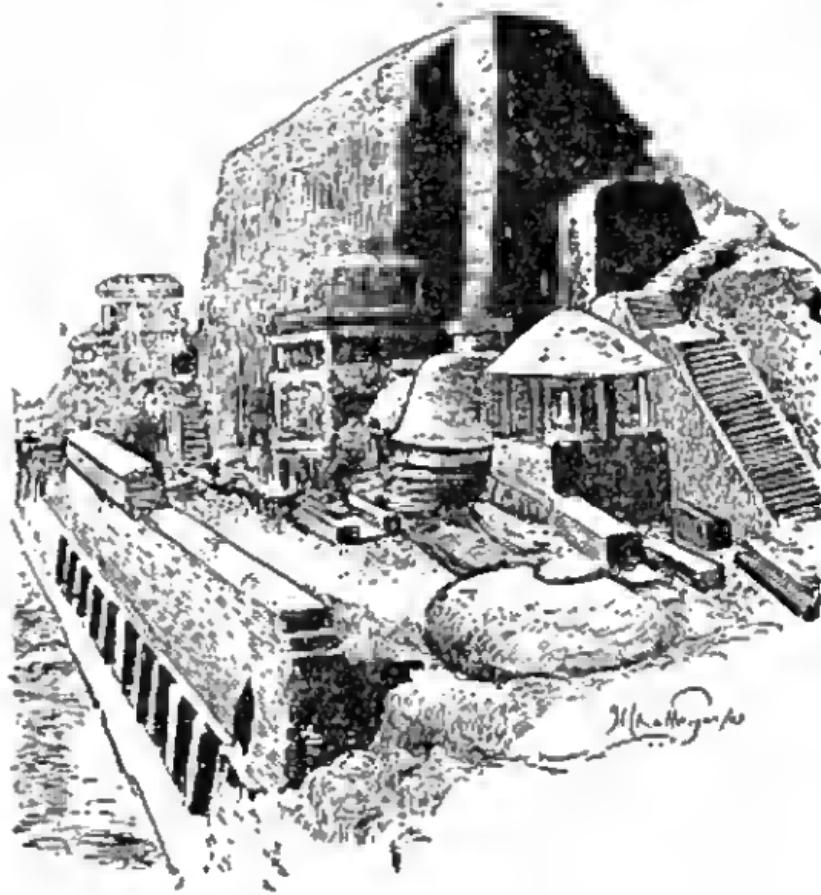
मुझ पर भी अधिकार कर लिया । कुदुदूहीन जितना ही फल्याज़ था उत्तम ही पूर भी था । और मेरे नगर में सिरों का उत्तम अमार लड़ा कर दिया जो दिल्ली ने बनती उसकी मीनार से किती कदर नीचा न था ।

अल्लमरा और बलद्वन ने भी वह जाने की कोशिशें कीं और मुझे सर्वपा बीरान कर दिया । चित्तोर के राजा साँगा ने अब मालवा और गुजरात पर अधिकार कर लिया और इब्राहीम लोदी को दो दो शार दरावा तथा मुझे आशा बँधी कि दिल्ली के साथ ही राणा मुझे भी आजाद कर देगा । पर जब मैंने उसे बाबर को दिल्ली का तस्त दान करते देता तब मैंने शर्म से मुँह छिपा लिया । सीकरी के मैदान में बाबर ने राजपूतों पर हमला किया और वह लडाई मुझसे थोड़ी ही दूर पर इतनी अम कर हुई, राजपूतों ने अपने परम्परागत शीर्य का इतना अनजाना सद्वृत दिया कि मैं साँच रोक उस मैदान की ओर देखती रही, जितने हिन्दुस्तान की किस्मत के साथ ही मेरी किस्मत भी दिल्ली के नए बिजेता के साथ बाँध दी ।

बाबर उस तैमूर का बैशाधर था जिसने एक बार अल्लाउहीन और मुहम्मद तुग़लक की चोटें अपनी कूरता से भुला दी थीं, बाबर ने दिल्ली में तैमूरिया सान्दान की नींव डाली और उसके पोते अकबर ने उसका साक्षात्कार किया । हुमायूं की देश बाजी से मुझे शेरशाह की हुक्मत ने कुछ नजात दी और जब हिन्दू हैमूं विनायोजित की उपाधि भारण कर, पानीपत के मैदान की ओर बढ़ा तो मुझे ऐसा लगा कि शायद मेरे नगर में यह वेद धोष होगा । परन्तु वैरमलाँ के हैमूं का तोनखाना हड्डप होने के बाद मेरी आशा किर खिट गई । यद्यपि अकबर की उदिष्ट्युनीति ने मुझे अपने मन्दिरों को खड़ा करने का यह अवसर दिया ।

आस-पास की भूमि की मैं स्वामिनी थी । तब से नहीं बहुत प्राचीन काल से और देश ने फिर मुझे समृद्धि और धर्मिक गौरव दिया । परन्तु शाहजहाँ ने जब ग़ाजी बनने की प्रतिशा की तब फिर मैं उजड़ चली और उसके बेटे आलमदीर ने तो मुझे उजाड़ ही दिया । विष्णु का मेरा वह विशाल मन्दिर औरंगजेब ने तोड़ डाला और उसकी जगह उसी के पश्यरो से अपनी मस्जिद की विशाल इमारत सड़ी की । मैं फिर लुट गई और बुरी तरह, और वह गई हुई तमृद्धि फिर न लौटी । जब औरंगजेब की कैद से भाग कर शिवाजी स्वरेश की ओर चले तो मैंने ही उन्हें पनाह दी और उसके बदले, मराठों ने आगे चल कर मुझे गौरव दिया । परन्तु अबदाली की चोट मुझे अब भी याद है और कभी न भूलेगी । दिल्ली को लूट कर अफगान अहमदशाह जब मेरे नगर में आया तब जाटों ने मेरी रक्षा के लिए भरतपुर से मेरे द्वारा बक लाये थिल्ला दीं और खुद बिनष्ट हो गए पर फिर भी नेरी रक्षा न ही छोड़ी और मैं एक बार फिर उजड़ गई । ऐसा नहीं कि दिन्दू मुझे न लूटते हों । इस काल अनेक बार मराठों ने भी मुझ से बोय ली और मेरे भीमानों को लूटा ।

जमाना गुजर गया, लम्हा जमाना यह शतान्दियों का, सहस्र-शतान्दियों का है । यमुना के किनारे खड़ी मैंने ब्रज की 'समृद्धि पाई और निस्त्वर मैंने महत्वाकांक्षा के पैंतेरे राजमार्ग पर खड़े होकर देखे । अतीत स्थभावतः ही बीत चुका है, बर्तमान चोटी पर है, परन्तु मैं नहीं समझती कि मेरा भविष्य कुछ विशेष रूचिकर होगा ।



राजगृह

राजगुह विन्ध्यमेस्कला का उत्तरी प्रसार गया के उत्तर दीदाता है। पहाड़ियाँ बहुत लंबी तो नहीं पर बोद्ध जल्लर है और उनके बीहड़न ने अनेक बार मानव और बनेले भगेहों को शात्य दी है। आयों ने जब अपनी कठोर ठोकरी से सिन्धु काटे की द्रविद सम्पत्ति तोड़ डाली तब वहाँ

से नागे हुये अनेक जनों ने इन्हीं पहाड़ियों में शरण ली थी और अपना आवास बनाया था। परन्तु वह कहानी बड़ी पुरानी है, महाभारत के दिनों से भी प्राचीन विदेहवनक से भी प्राचीन, यैशाली के जगमगाते हीरकोद्वयत आचरण से कहीं प्राचीन।

उन्हीं पहाड़ियों में काँचों के उत्कर्ष से कुछ पूर्व आर्यजन मनुष्यों ने पश्चिम से आकर देखा ढाला। इन पहाड़ियों की छाया मुख्य और शीतल थी। इनको कन्दराओं में अनेक विष-स्वप्न स्थ्य हुये, इन्हों के अनेक उदगार जो मैदानों में कुंठित पड़े थे इन गिर गड्ठों ने होकर वह चले। पहाड़ियों पांच थीं और इन पांचों के ऊपर अपने देसे स्वन् मनुष्य ने साक्षात् किये। इन्हीं पहाड़ियों की कहानी आज में कह रहा हूँ, जिन पहाड़ियों के शिलरों पर खिंचे प्राचीरों के पीछे नरेरा अग्रसाद वसे और मेरा राजगृह नाम सायंक हुआ।

परन्तु मेरा रुद में पुराना नाम राजगृह नहीं गिरिब्रज है जिससे दूर से आकर वह जाने वालों का, आने जाने वालों के सांते का आर्य ध्वनित है। गिरिब्रज वह पश्चाड़ी दुनिया थीं जट्ठों मैदानों से भाग कर लोग आ यते थे। एक बब मधुरा के चतुर्दिक या जहाँ शर्करेनों के शावन में वासुदेव कृष्ण ने मानव लिप्ता की अनेक रूपार्थं चरितार्थ की। दूसरा ब्रज यद्यथा विन्ध्यमेलला के इस उत्तर प्रसार में था—गिरिब्रज।

अपने जन्म की कहानी सदा सब को जात नहीं। मुझे भी उसका पूरा जान नहीं। कितने मुझे इन शिलरों पर वसाया मैं सह नहीं कह सकता पर वह गिरिब्रज की बात है राजगृह की नहीं क्योंकि इस अपने राजगृह का आरम्भ मुझे सहज़तः याद है जो गिरिब्रज के भग्न सूपों पर खड़ा हुआ था और जो भग्न सूप भूमिसात होने के पहले भारतीय सम्प्रता के कनक कंगूतों की भाँति कभी देवीपूजान रहा था। भारतीय इतिहास का महाभारत काल उर्जस्वी आर्यस्व का काल है। यहि दी

सीमायें तब वीरबरों ने अपनी दाहुओं से खींची थीं। उसी काल, सम्भवतः उससे कुछ पूर्य गिरिज का आरम्भ हुआ था और महाभारत के युद्ध के समय निश्चय मगध को शक्ति स्वरूपीय हो गई थी, इतनी कि कौरव पांडवों के दोनों दलों ने कभी मगध के प्रतिष्ठित व्याहिद्य राजकुल को सहायता माँगी थी।

मगध तब कुछ लम्बा चौहा राष्ट्राभ्य न था, उसका विस्तार आज के पटना, गया जिला भाग तक सीमित था परन्तु शक्ति उसकी प्रचुर थी इतनी कि उसके सहायता की प्रार्थना की जा सके। महाभारत कालीन वृद्धक और उसके पुत्र जरासन्द ने तो शक्ति का इतना संचय किया कि दूरस्थ शूरसेनों का जनमद्र प्राचीन ब्रज तक उसके भय से कोर उठा।

कहते हैं जरासन्द लक्ष्मिदत शालक के लड़ में उसने हुआ था परन्तु जरासन्द की धाय ने उसके लक्ष्मिदत ब्रांगों को एकत्र कर उसका जरासन्द नाम साधीक किया। हिर तो उन ब्रांगों में दानव की शक्ति भर गई, मानव की चोट जिस पर पहङङ कर स्थरे कुरित हो जाती। महाभारत के समय जरासन्द कब्र का अवेद हो चुका था। ब्रज के कंग ने उसकी कम्या ब्याही थी और जब उस महायुद्ध का आरम्भ हुआ तब तक जरासन्द भारत की अमानुषिक ऊँचाइयों पाले बीरों की पंक्ति में खड़ा हो चुका था। कंस और जरासन्द का संयोग आंधी और आग का संयोग था और दोनों ने परिचनी कुरुक्षेत्र को छोड़ बाढ़ी उत्तर भारत और मध्य देश को प्रायः बाँट लिया और यद्यपि उनके साम्राज्य सीमाओं की प्राचीरें बल्कुतः पार्थिव लूप से न लिखी उन राजाओं का प्रभाव देश-व्यापी निश्चय हो गया। गिरिज का प्रभाव भी उसी दाना में बढ़ चला। गिरिज मगध की पहली राजधानी थी।

ब्रज और मगध का यह सम्बन्ध इतना बना सिद्ध हुआ कि एक रुप परामर्श दूसरे ने अपना परामर्श माना और जब प्रजापीड़क आर्य लक्ष्मीय

कंत के कुकर्मों से भुज्य होकर आभीर कृष्ण ने उसे मार डाला तब जरासन्ध अपनी विशाल मगध सेना लिये मध्यदेश को रीढ़ता ब्रज में आ धमका और कृष्ण को ब्रज छोड़ कर भागना पढ़ा। जरासन्ध की सेनाओं ने ब्रज पर अधिकार कर लिया। जरासन्ध का आतंक देश पर दृढ़ता गहरा था कि विकान्त कुरुओं को भी कृष्ण को शरण देने का साइर न हुआ और देव की नन्दन को सारा देश लांब पश्चिम सुदूरतट पर द्वारका असा, वहाँ शरण लेनी पड़ी। गिरिज का प्रभाव इत्य प्रकार दिन-दिन बढ़ता गया बद्यति यह प्रभाव मात्र था और मगध का साम्राज्य वसुतः साप्राज्य न हो पाया। उसकी शासन को प्राचीरे अब भी एक आंतर अंग और दूसरी और चारी द्वारा मरिहत थी।

गिरिज के राजा जरासन्ध के द्वारा यह अपमान कृष्ण की न भूल सका। द्वारका से वह लौटा परन्तु अचेता नहीं, महाभारत के पांडव वीरों के लाथ। संहार में उसके तीन प्रेत शत्रु थे, कृष्ण, गिरुपाल और जरासन्ध। कंत का वह कब का नाश कर लुका था। इन्द्रप्रस्थ के भृत्यों में गिरुगाज का भी वह उस रीति से वध कर लुका था, जिसे किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता था। वह वास्तव में न्याय तर्क के उत्तर ने नाभायज्ज्वल था। तीक्ष्ण शम्भु जरासन्ध अब भी बच रहा था। कृष्ण ने सोचा यदि जरासन्ध कुरुचेत्र में अपनी सेना लिये आ धमका तो न उसकी सैर होगी न पारदृष्टों की और यदि वह मारा भी गया तो उसका भय कृष्ण को न होगा उसना समवेत पारदृष्ट पद्म को होगा और ब्रज से भागते समय उसकी पीठ लगी धूत प्रतिशोष की विजय द्वारा पुंछ न सकेगी। ब्रज से भागते समय जो कालिका लगी थी, उसका धोना निवान्त आपस्यक था और वह इस प्रकार की जैसे ब्रज के अपने घर में कृष्ण के बह लगी थी, गिरिज के अपने घर में जरासन्ध को लगे। भीमसेन और अर्जुन को लिये कृष्ण गिरिज के

राजप्रापाद में पहुँचा लहाँ कि बैठक में जरातन्ध का अलादा, या जिस अलादे की भिट्ठी वह दूध से गोली करता था। जरातन्ध की बैठक अधीक्षी भूमिकात हो चुकी, परन्तु उसके आधार पर लहाँ उल्की नाम से जाने वाली पत्तयों की एक भग्न बैठक आज भी मेरे प्राचीर्यों के पीछे पैले मैदान में लही है।

जरातन्ध और भीम में जैसी निष्ठी उसको सक्षितार कहना मर्यादा अभीष्ट नहीं, इतना निश्चय है कि जरातन्ध अपने ही पर में मारा गया और जिस प्रवत्तन से वह मारा गया, वह कुछ उसी प्रकार का था जिस प्रकार शियुगाल का था ! कृष्ण को जरातन्ध के जोहाँ का पता पा और भीमसेन को वह राज मालूम होता ही जरातन्ध के धांग-धांग बिल्लर गये, अपने ही राजप्रापाद में अपनी ही प्राचीर्यों के नीचे। यह कृष्ण का अभियान या जरातन्ध के विरुद्ध, ग्रन्थ का गिरिज के विरुद्ध और इस अभियान में सेना न गई थी, प्रवत्तन धांग चतुर्विंश्या राजनीति भाव इसमें विजयिनी सिद्ध हुई।

गिरिज पता नहीं कब तक और किस रूप में अरनी शक्ति को अक्षुरय उनको रख सका, परन्तु एक बात मुझे आज भी याद है और वह यह कि इसा से प्रायः ६०० वर्ष पूर्व वार्षदिव्यों की इस पार्वतीय प्रदेश से निष्ठी ढठ गई। जिस नये राजकुल ने प्रगति की राजस्तु दंभाली, उल्का नाम हयेकुल था। हयंको ने इसकी प्रशस्ता ने उस महाभारत प्रयित मागव राजकुल का अंत किया जिसकी कीर्ति क्या जरातन्ध ने अपनी बाहुओं से लिला था, परन्तु इसमें सम्बद्ध नहीं कि प्रारम्भिक हयंको में प्रमुख भट्टीय का पुत्र विमिक्षार हुआ। इसी विमिक्षार के उत्थान के साथ ही मेरे उत्थान की रुक्षा भी सम्बद्ध है।

एक और बट्ठा इस कुल के आरम्भ और चाहाँदिव्य कुल के अंत के बीच की याद आती है जिसको कहना मैं नहीं भूल सकता।

महाभारत के बाद आयों की शक्ति दूटी गयी। सर्वत्र वे आपने में लह पढ़े थे; जो विशेष तो कुरुक्षेत्र के मैदान में ही परस्त निपट चुके थे जो बहाँ से लौटे थे, प्रायः और 'शुकुकाल तक उंसी कुरुक्षेत्र की शक्ति को अमने-अरने के छों में जगाये रहे। आयों के अपकर्ष के साथ ही अनेक स्थलों में अनायों की शक्ति फिर एक शर बनी। अब की नारियों को दारका ले जाते हुए अर्जुन के हाथ से गाँड़ीव के रहते हुए शबरी ने छीन लिया। एक नारी परिज्ञी के अपमान के परिणाम में इतना जड़ा महाभारत हो गया था, परन्तु इतनी संख्या ने कृष्ण की नारियों को लोकर भी और वह भी अनायों के विरुद्ध, महाभारत के बचे बीर हाथ न उठा सके। यही घटना अन्य रूप में गिरिजा ने भी अटी अब आर्द्धिष्ठ कुल के कमज़ोर भूटों से बलवार पहुँचे वाले आर्य दंशवरों के जान के लाले पड़ गये। उनसे भागते न बना। और गिरिजा के खड़ी में वे सदा के हिये दो गये। कालान्तर में हर्यक कुल का उत्कर्ष हुआ और राजा भद्रीय ने गिरिजा के दृटे प्राचीयों को फिर से खड़ा किया। विनिवार उसी भद्रीय का पुत्र था और उसने मगध का लुप्त गोरक्ष फिर से स्वायत्त करने के हिये कमर लकी।

गिरिजा की प्राचीन प्राचीरों के बाहर उत्तर की ओर उसने अपना विशाल राजप्रासाद खड़ा किया। राजप्रासाद के खड़े होते ही उसके चारों ओर अनन्त घनी, मानी, सेठ, साहुकार मगध के विविध नगरों से उसके चतुर्दिक आ बसे। यह एक नयी नगरी उठ रही, थी प्राचीन गिरिजा की ही छाया में, परन्तु उससे कही दृढ़ मन्त्रमयों की भाषणा लिये भद्रीय ने ही आस-पास के अनायों को कुचल दाला था। अब केवल विस्तार की आवश्यकता थी और उस विस्तार के हिये विनिवार कठिनद दुश्मा।

विभिन्नार न तो कोई बड़ा लड़ाका था और न विशिष्ट राजनीतिक परन्तु दूरदर्शी यह निश्चय था, पास पहोड़ की गतिविधि गहरायी के साथ निरलने और बस्तुरियति को समझनेवाला। उसने इह निश्चय कर लिया कि मगध की सीमाएँ अब केवल पुराने परिवार में ही सीमित न रह सकेंगी। परन्तु अभियान के बजाय उसने वैवाहिक नीतिको अपनी राजनीति में स्थान दिया। भारतीय राजनीति में वैवाहिक सम्बन्ध से उत्कर्ष की अभिप्राप्ति का यह पहला प्रमाण था। मैंने ऐसा कुछ कभी पहले देखा न था, परन्तु जो देखा उससे नेरी औले भी खुश गर्दे और मैंने जाना कि यिना तज्ज्वार के भी गढ़ जीते जा सकते हैं। तब की राज शक्तियों में चार प्रबल थे, मगध के हर्यक, भावती के कोशलक, कोशाम्बी के बाल और अवन्ति के प्रदोत। कोशाम्बी के बत्सों और उच्चज्ञी के प्रयोतों से मगध कुल का दैर था। विभिन्नार दोनों से अलग बना रहा। कोशल की मैत्री उनके विरोध में आवश्यक थी, इसलिये उनके राजा प्रसेनजित की बहन कोशल देवी से उसने अपना विवाह किया। काशी को तब की कोशल के अन्तराल में समा चुकी थी अब कोशल देवी के यीतुक में विभिन्नार को मिली। एक लाल की यह वार्षिक झाय मेरे लिये अनजानी थी और काशी की सी प्राचीन नगरी नेही चेती हुई, यह कुछ कन गौरव की बात न थी। गिरिज कब का भिट चुका था। मेरा नाम राजगृह विभिन्नार के राजप्राचार के सम्बन्ध से सार्थक हुआ और अब काशी की परिचयों से मैं उभग उठा। विभिन्नार ने मिर गंगा पार देखा। उस पार जहाँ बड़ी लिच्छवियों ने जनक विदेह का राज्य ऐशाली में गणतान्त्र कर लिया था। गंगा से दिमालय की तराई तक उनकी दूरी ढोलती थी और उनकी सहायता पाने को थारे राजकुल लालायित रहते थे। लिच्छवियों के छाठ गणों में विशिष्ट लिच्छवियों का था प्रबलतम

और उसमें चेटक का कुल असाधारण था। उसी चेटक की कल्या चेलना को विन्ध्यार ने व्याहा जिसकी भगिनी विशला उन धर्म के प्रवर्तक वर्द्धमान महात्री की माता द्वी। इस विवाह सम्बन्ध से मेरी शक्ति बढ़ी और मेरी मर्यादा की सीमाये मुदूर विशृंत हुई। अनेक राजकुल तब मेरे राजकुल में विवाह सम्बन्ध स्थापित करने को उत्सुक हो उठे। उनमें जिसकी आशा सफल हुई, वह गोभार का राजकुल था। गोभारो की मादी मेरे राजप्राप्ताद में पधारी। इस सम्बन्ध से मेरी लामाजिक मर्यादा असामान्य हो गई।

मेरे खानी ने तब एक और बढ़कर काशी के पश्चिम में बस्त की प्राचीरों तक अपने बह्ले गाड़े, दूसरी ओर अंग को आत्मसात कर लिया यद्यपि कोशार्मी के कामुक वृपति उदयन ने अंग के राजा ब्रह्मदत्त की कल्या को व्याह अपने सन्तुर को अंग का कुछ भाग निर से लीटाया परन्तु उस कामुक की चेष्टा कब तक सबल रह रहती थी? ब्रह्मदत्त अंग की प्राचीरों के साथ मेरी सीमाओं में खो गया।

इन्हीं दिनों मध्यम, कोशल और विदेह में एक नये जीवन का संचार हुआ। धर्म के नाम पर एक जमाने से जो वलात्कार होता आया था उसके विहृद कुछ द्वयों नेताओं ने विद्रोह किया। वास्तव में वह विद्रोह पुराना था—द्वयियों का ब्राह्मणों के विहृद और उस विद्रोह के अप्रणी पहले विश्वामित्र, देवापि, भीष्म, जनमेजय, अर्जुपति कैकेय, प्रवाहरण वैवलि, अजातशत्रु कांदेय, जनक विदेह रह जुके ये परन्तु इधर के काल ने भी इन क्षयों विद्रोहियों की भी कुछ कमी न रही थी। काशी के राजकुल के उदात्त राजकुमार पार्श्व ने केवल सौ कर्ण पूर्व उस विद्रोह का भूमा लहा किया था और उसके बाद अब दैशाली में वर्द्धमान ने उसको किर कहराया। शक्तियों में प्रतिष्ठित शुद्धोधन के पुत्र गोतम ने भी उस विद्रोह के नाले बुलान्द किये। उन

नालों की आवाज अनेक बार मेरे पर्वत शिखरों से टकरा टकरा कर
मेरे अंतर में भी गूँजी थी और अब मैं उसी शाक्य सिंह की गर्जन की
आत आप से कहूँगा ।

कपिलस्थल से महाभिनिष्कमण कर रात की नीरवता में अपने प्रिय
पुत्र पल्ली को छोड़ क्रांत्य दर्शकों के उत्तर से अत्युत्स सिद्धार्थ गौतम जब
अनामा पार कर कोलियों के गणतन्त्र को लाँच गंगा की ओर वैशाली
की राह चल पहा या तब मैं अवाक दम साथे कौदूलपूर्वक उत्तरा यह
पदक्रम देख रहा था । गंगा लाँच तम्बोधि की तलाश में सिद्धार्थ
राजगृह पहुँचा । आलारकालाम और रुद्रकराम पुत्र के दार्शनिक
वित्तन उस सत्य की खोजी को उसका समुचित उत्तर न दे सके । भुव्य
अत्युत्स वह मेरे राजनामों पर तीव्रता से निकल जाता और धुम्ब अत्युत्स
वह फिर लौट पहता । उसके उन्नत भाल की संकुचित रेतार्थे उसके
हृदय की जागरूकता को प्रदर्शित करती पर धरा पर तप कीन वह दार्श-
निक था जो उसके भीतर बुमड़ती गुरुथियों को मुलभा सकता । एक बार
की कथा मुझे आज भी याद है जब वह महामना मेरी सहकों पर
प्रशान्त तेज को लिए निकल पहा था । मेरा स्वामी विभिन्नार तब
राजप्राप्ताद की ऊँची छत पर लहड़ा उसे तम्बय देख रहा था । उसा
उसके हृदय में असाधारण चरिता का उदय हुआ और ग्रामाद के
सांपानमार्ग से वह सहसा दौड़ पहा । शाक्य कुमार के सामने लड़े होते
ही उसे अपने कुल की दयनीय दशा याद आई । अपने पुत्र अजातशत्रु
की बगायत याद कर उसने सोचा था कि यह तेजस्वी कुमार मगध की
गर्भी पर आरुद हो जाय तो उसकी भावी मुरद्दा संदिग्ध न रह जायगी ।
वह सदस्य बोल उठा—“भद्रन्त, आप हठ नगरी के राजनार्ग पर निष्प
चिन्तित क्यों भटका करते हैं और आज निष्पवत आपकी मुद्रा प्रशान्त
क्यों नहीं ?” उत्तर मिला—“सम्बोधि के निमित्त वाहर निकला था ।

मनुष्य दुली क्यों है ? उसके त्याग और तर का परिणाम दुःख और मृत्यु क्यों है ? धून और चाँदनी को मेवों की छाया मलिन क्यों कर देती है ? —इसी की तलाश में कल्पितवस्तु से निकला था । आश्रमों के दर्शन में उसे दूँदता किया हूँ । आज शह द्वारा उनके पात मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं । जन-जन में विरोध क्यों है ? जन-जन कँचा नीचा क्यों है ? सब के अधिकार समान क्यों नहीं ? दुल, जरा और मरण समान हैं, कैशोर और तारुण समान हैं ! —जोलो राजन्, स्या कुछ तुम इनका समाधान करोगे ? भिलुदान के अर्थ तुम्हारे सामने लड़ा है क्या दोगे ?” चकिति विभिन्नार उस महातेजस्वी को ज्ञान भर देख दोला —“महा, सो तो न दे सकँगा । परन्तु मात्र को नित्य फैलती सोमायै आगके चत्तों में डालता हूँ; इसे खोकार करौं ।” राज्यभारतों आरके फैले कंधों पर डाल मैं निर्दन्द हो जाऊँगा । परिवाजक दोला —“सो तो न ले सकँगा राजन् ! शाक्यों का भूमि विलार कुछ कम नहीं, पिता शुद्धोधन का शासन चेद उससे भी विस्तृत है और यशोधरा के प्रममक मनोराज्य का विस्तार उससे भी नहीं । तीनों को सांख्य आया हूँ, न ले सकँगा प्रगत की उन नित्य यदृती सीनाओं का भार । मैं तो सम्यक सम्बोधी की खोज में चला ।” मैं मुनता रहा । नगर के प्राप्ताद धातायन वह मधुमरिद्वत वाणी कुछ काल गुंजाते रहे । वायु के आर्द भोके उस याकविन्यास को मेरे गिरिगुड़ों में ले उठे । मैंने ऐसा दान कभी तुना न था और न उठका परित्याग इस ओजपूर्ण आचरण में ही देखा तुना था ।

देखते ही देखते मेरे दम्भिन की लड़ी कँचाइयाँ लौंघ गौठम महा-कान्तार में डतर गया उच्चेला की ओर ।

फिर जब तमुद होकर वह मेरे नगर में लौटा तब तक घर के पह्यन्नों से नेरी रियति डाबाँडोल हो चली थी । शाक्य लिह के प्रतिदून्दी देवदत्त ने हमारे राज्यप्रालाद में एक नए घर्म का उद्घोष किया

या जो दोनों से निज़ था । निर्गन्ध महाबीर के से भी, सम्यक सम्बुद्ध के से भी । महाबीर के प्रवचन विभिन्नार ने सुने थे । अब शाक्य मिह के सुने । दोनों के प्रति वह अदालु या परन्तु बुद्ध के बढ़ते प्रभाव ने देवदत के हृदय में हलचल मचा दी और जब वह विभिन्नार के कान न जा सका तब वह उसके पुनर अजातशत्रु के कानों जा लगा । वहाँ उसे निराशा न हुई क्योंकि राजपुत्र रिता के दीर्घीक्षण से उब लुका था । राजदरब को पकड़ने के लिए वह अधीर हो उठा था और देवदत के अदुकूल आचरण के सिवा उसने और कोई राह न देती । किर क्या था, मेरी ही प्राचीरों के भीतर विभिन्नार के उस राजप्रासाद में रहा की व्यवस्था हुई । अजातशत्रु ने हत्यारे की दुरी अपने हाथ में ली परन्तु संयोगवश पड़्यन्त्र निष्कल गया और विभिन्नार बाल बाल अच गया । मेग प्रासाद रक्त के ढींडों से कलुहित होते होते बच गया । किर भी अन्य विधि से अजातशत्रु ने अपना हित बाध ही लिया । देवदत का मानसिक मन्त्रव्य पराभव से झुम्ब हो उठा था । उसने नई नीति की व्याख्या की । धर्म के नाम पर हत्यारे ने विर और रज्जु दाध में ली । विभिन्नार अपने ही अनाए राजप्रासाद में बन्दी हो गया । शीघ्र बन्दी के उच्छ्वास हवा में विलीन हो गए । विष ने उसका काम तमाम कर दिया । उसकी कराह आज भी भग्न प्रासाद की नींव से जब तब उठकर हवा में विलीन हो जाती है । मिट्टी में मिला हुआ मैं स्वर्य जब तब उस पथरीली भवव्यंजित आवाज को दुनता हूँ और धूल में मस्तक टिका देता हूँ ।

अजातशत्रु मगध की गद्दी पर बैठा । रिता की मृत्यु पर उने लवघोष किया, उसका प्रायशिच्छत भी । प्रायशिच्छत के लिए उसने एक विशाल यज्ञ की आयोजना की जिसमें अनन्त पशुओं की आकृति दी जाने वाली थी । असंख्य पशु मेरी यहशाला के प्राङ्गण में यूंपों से आ बंधे और तभी वह भी आया जिसकी गर्जन ने देरा के मिल्लावादियों

के हृदय ने कंप उठा दिया था—वह तथागत्। राह में यशशाला की ओर अपनी मेहँ दौँकते हुए गड़रिये ने शुद्ध के अचारण पर इसलिए मुस्करा दिया था कि यह जब नेमने के हल्के बाब पर इत प्रकार द्रवित हो गया था तब अजातशत्रु के वश में अनन्त पशुओं के हवन व्यापार का उत्त पर क्या प्रभाव पड़ेगा, जो उस पितृहंता का ईड है और तथागत् उसके अवरोध के लिए चल पड़ा था।

शोप शाद जो व्यापार में अपनी आँखों देखा, जो मिहनाद अपने कानों मुना, वह मेरे बालाकरण की आज भी अमदि गूँज है—“राजन्, वह क्या व्यापार है !” “तथागत्, पितृहस्या का अपराधी हूँ। वश से पिता की आत्मा तृप्त होगी। मेरे पाप का छनन होगा !” पाप का तिनका उठाकर तथागत् ने राजा के सामने फेंक कर कहा—“राजन्, तनिक इसे तोड़ो तो !” राजा ने शुटकी के कंपन मात्र से तिनका तोड़ दिया। भिजु बोला—“राजन्, तनिक इन्हें जोड़ो तो !” चक्कित अजातशत्रु अँखें काढ़ उस महायात्री को देखने लगा। पैतीस धर्यों से जिसकी गति कहीं न रक्षी थी महायात्री फिर बोला—“राजन्, दूरे तृण को जोड़ने की दुर्भाग्ये शक्ति नहीं और इन लासों पशुओं को मारकर तुम क्योंकर पिता के प्रति अपराध का मार्जन कर सकोगे ? यदि ऐसा ही है तो इत दम्यक समुद्र की यह में आहुति दे इष्ट सम्बन्ध करो !” यह बन्द हो गया। लाल लाल दूर वह पशु स्वतन्त्र हो गये। तथागत् किर अपनी राह चला।

तथागत् लौटा। उसने उस वेश्यान में डेरा डाला जिसे दिवंगत् विन्दिसार ने संघ के निमित दान कर दिया था। यज्ञियों का गणतन्त्र अजातशत्रु के प्रसर में ऊँचा अवरोध था। तथागत् से अजातशत्रु के मन्त्री ने उनके पराभव का साधन पूँछा। तथागत् ने कहा—“जब तक यज्ञियों के गणतन्त्र की बेठकें निरन्टर अविलम्ब होती हैं, जब तक उनके दृदों के प्रति तरशों की भद्रा नहीं है, जबतक उनके विधान

परम्परा की रद्दा उनका ईश है, जबतक उनमें फूट और ईर्ष्या नहीं, जब तक उनकी नारियों की इज्जत उनके दिलों में बनी है तब तक उनका परामर्श सम्भव नहीं ।”

अज्ञातशत्रु ने उनमें फूट फैलाने की नीति सोची। अपने प्रनियों को उसने वैशाली भैजा जिन्हें ने उनकी शैठकों में उनके राजकों में फूट के दीज थोये। उसके मामा चेटक ने उसके यैमाशिक भाइयों हूल्ल बेहल्ल को शरण दी थी, जिन्हें वो ने चाँदी की लान को अकेला भोगा था, अज्ञातशत्रु ने तहसा उनपर आक्रमण किया। वैशाली जूफ़ कर भी हार गयी। आरुपास के यदोंस को मैंने ईर्ष्या से देखा था और उनको आत्मसात् करते मेरी मुख्यभी इतनी उज्ज्वल न हुई थी जितनी आव हुई। प्राचीन काशी जब नेरे अन्तराल में आई तब निश्चय में सन्तुष्ट हुआ था, परन्तु वैशाली की शक्ति और गौरव स्वायत कर मैंने जो तुमि लाभ करे वह कर्त्त्या अनुगम थी। वैशाली का पतन होते ही मेरी सीमाएँ गंगा लांब हिमालय के चरण तक जा पहुँची। समस्त उत्तर बिहार मेरा उत्तरी प्रान्त बना ।

अज्ञातशत्रु गंधार के यजा कुकुसाति का नाती था। उसको पुत्री लेना का पुनर था। उसकी नसों में उत्तरी दुर्दृष्ट पठानों का रक्त प्रवाहित हो रहा था। सम्भव न था कि वह इतने से ही सन्तुष्ट हो बैठता। कोशल और बत्त से लोहा लेना उसे श्रमी बाकी था और उज्जैनी की शटी हुई सीमाएँ बराबर उसके हृदय में शंका और भय का संचार करती थी। जब तब बिनियों का कांटा उसके पाइव में चुभता था वह चुप था, परन्तु आव जब उसने उसे श्रवनी बगल से निकाल किया था तब उसके डरने का कोई कारण न था। आव वह कोशल और काशी की ओर बढ़ा। काशी की आय उसके त्रिनाता कोशलदेवी के देहें में मिली थी। पिता का जब उसने लूट किया था तब कोशल-

देवी ने अब नह छोड़ अपने प्राण दे दिये थे और तभी उसके भाई कोशल के राजा प्रसेनजीत ने धुम्प होकर काशी की आय से मगध को ध्वित कर दिया था । अजातशत्रु के लिये इस अपमान को निगल सकना अनुमत्य था परन्तु बृद्धों के परामर्श तक वह तुप रहा । उस और से निश्चिन्त होते ही अब वह पश्चिम की ओर बढ़ा और कोशल पर उसने प्रचण्ड हमला किया । मैं युद्ध का मनशः ईश और अनिष्ट परिणाम देखता रहा । कभी विद्यु शावस्ती की होती, कभी मेरी । अन्त में प्रसेनजित ने हार मान ही और न केवल काशी फिर मेरे अधिकार में आई बल्कि अजातशत्रु ने प्रसेनजित की कन्या यजिरा का पाणिप्रहण भी किया ।

प्रसेनजित स्थयं अपने राज्य में दुखी न था । उसके पुत्र विल्लम के विद्रोह ने उसे दुर्बल कर दिया था । पुत्र के विद्रोह में उसका मर्दी दीर्घधारायण भी सम्रत था और दोनों के पड़यन्त्र ने पिता को लंब्या दुखी और कमज़ोर कर दिया । इनके अतिरिक्त शावस्ती के बंगलों में अंगुलिमाल ने जो उपद्रव कर रखा था, वह उस राज्य को ज्वल्त करने में कुछ कम तिद न हुआ । मैं अपने गौरव से दिन दिन सल्लुष्ट होता जा रहा था । पर अवन्ती को बढ़ती हुई सीमायें मेरे लिये कुछ कम अन्दरे की बात न थी । प्रसेनजित से तो छुटकारा हो गया था । विशेष कर जब पुत्र के गही दंडप लेने से यह गरीब राजा मदद के लिये नेरी और बढ़ा और अमरतया भूल से कलान्त उसने मेरे ही गिरहार पर अपना दम तोड़ दिया । प्रभावशाली तक्षशिला के उस सातक और मुसंस्कृत नुदनित्र प्रसेनजित को अपने द्वार की भूमि चूमते मैं कुछ कम दुखी न हुआ, परन्तु राजनीति को अपना अखादा बनाने वाले गजाश्रो और राजधानियों को उसमें गिरने वाले व्यक्तियों का कब मोह रहा ।

अवन्ती को सोमायें बढ़ती था रही थीं। उनसे मुके भी डर था और जब चरह प्रयोत महासेन ने उजेनी में पेठे ही ऐडे यान्त्रिक हाथी के सहारे कामुक उदयन को धन्दीकर कौशाम्बी पर अधिकार कर लिया, तब तो अजातशत्रु के हृदय में शंका और इद तुरं और यद्यपि उदयन-प्रयोत की कृत्या बासबद्धा को हर कर कौशाम्बी तिर लौटा अजातशत्रु को उज्जैनी के डर से मेरी प्राचीरें मबबूत करनी ही पड़ी। अजातशत्रु का गौरव मेरा गौरव था, उसके अनौचित्य पर मैंने आँख नहीं बढ़ाये परन्तु उठके बाद ही यद्यपि मगध दिनों-दिन बढ़ता गया, मेरी मृत्यु की घटियाँ धीरे-धीरे पास आने लगीं। अजातशत्रु के बाद मेरी शक्ति कं। बड़ा धक्का लगा क्योंकि यद्यपि उसका पुत्र दर्शक और पीत्र उदयी हमसे संरक्षक बनाये हएं मुझ राजगृह था गौरव शोषणा से मैदानों में गंगा शोण के कोण में नये सड़े होते पाटलिपुत्र के भवन कीर्त्ति की ओर यह चला।

पाटलि के लाल फूलों के गाँव में तथागत ने अनेक प्रवचन दिये दे। वहीं माफियों की आजादी द्वाकर उदावी भट्ठ ने एक नई राजधानी का निर्माण आरम्भ किया। पुराने भला किनको भाते हैं! मेरा कलेवर यद्यपि सबमुच नया था परन्तु जोर्ण गिरिजन के समर्क से निश्चय बीर्ण का आभास देता था। उसका नवीकरण नितान्त आवश्यक था परन्तु उठाए कहीं आवश्यक उस नये केन्द्र की थी जो मध्यदेश के मैदानों में फैलती मगध की सीमाओं का नेतृत्व कर सकता। पाटलिपुत्र उसी की पूर्ति के लिये उठ लड़ा हुआ और मेरा गौरव लड़खुना बढ़कर उसके शासादों में पैठा।

अब मैं बीरान हो चला था परन्तु कुछ ही काल बाद एक बार किर एक सामरिक ने मेरी ओर दृष्टि की। अमात्य शिशुनाग ने सहना दृष्टि कुल का नाश कर लिया और मगध के बढ़ते साम्राज्य पर अधि-

कार रुर लिया । काशी पर तो उसने एक प्रान्तीय शासक नियुक्त किया और राजधानी उठने किर मेरी प्राचीरों के पीछे सुरक्षित की । फिर भी उसका यह व्यापार दीरक की उम्मी अंतिम लौ की तरह थी जो प्रायः मृत्यु का स्वरक होती है । वस्तुतः मेरा वैभव फिर न लौटा और आगे मेरी कहानी दुःख दर्द की है, ईर्ष्या और शर्दृशत की । उचर दिशा में मेरा प्रतिद्वन्द्वी पाटलिपुत्र नित्य नये उत्कर्ष ने कदम डटाता गया और नित्य उठते कदमों के नीचे भारत के प्रान्त के ग्राम्य कुचलते गये । समय तभ्य पर उठके विरुद्ध जनता के आचरण हुए परन्तु उसने अपने शक्तिमान दक्षिणपश्चों से उन विद्रोहीं को कुचल ही डाला । पाटलिपुत्र का आचरण स्वेच्छाचारी निरंकुश विजेता का आचरण रहा है और मैं दूर से उठके रक्तरंजित व्यापार देताता रहा हूँ ।

जब विदेशी प्रीक दिमित ने पाटलिपुत्र में विजय हुँकार के लाय प्रवेश किया तब मुझे कुछ दादस बैंधा । मेरी ईर्ष्या वृत्ति को कुछ सन्तोष मिला, जब सोमशर्मन पाटलिपुत्र से भाग मेरे पदादियों के पीछे गया के महाकान्तार में उत्तर गया तब मैंने ईर्ष्या की हँसी हँसी, जब लोहिताघ अमज्जात ने पाटलिपुत्र की सड़कों पर जनता के क्रम्बन के साथ रक्त का तारडव किया तब मैं भी मुस्करा पहा यह जनता हुआ कि यह अनुचित है । पर निश्चय ईर्ष्या उचित-अनुचित नहीं जानती ।

धेरे धेरे छड़ी सदी से उत्तर महा विद्यारीठ का उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ जो नालंद में मेरी ही छाया में छहा हुआ । यद्यपि राजनीति का वैनव श्रव युक्त हो दूर हो जुका था । यह सांस्कृतिक गौरव नेरी प्रदत्तता का विशेष कारण हुआ । गुमों के ढाले बीज ने बढ़कर हर्ष के समय में और कुछ पीछे दिशाल बट वृक्ष का रूप धारण किया । अनन्त दिशाओं से भारत और विदेश के कोने कोने से विदायी और आचार्य इस विशेष विहार के शरणार्थी हुए । मेरी भग्न प्राचीरों को उन्होंने उत्तुकता जिडासा

और अदा के साथ देखा मैं भी पुलकित हुआ परन्तु मेरा यह सांस्कृतिक वैभव ही बहुत दिनों जीवित न रह सका। उसको जीवित रखने में मैंने भी अनेक उपाय किये थे। बंगाल के देवपाल ने उस विद्यापीठ को समृद्ध करने के लिये जब नेरी और देखा तथा मैंने अपने चार गाँव ढसे प्रदान किये परन्तु उस बनीले बहित्यार को क्या पता था कि मेरा रग रग नालंद के प्रकाश से आलोकित है। उसने उसके प्रव्यागार में आग लगा दी और ब्राह्मणों को तलाश के घाट उतार दिया। आर्चार्यों ने दक्षिण भारत और तिब्बत में शरख़ ली। नालंद बीराम हो गया और अब नहांद और मैं दोनों ही अपने भग्न इतिहास को लिये अन्तर मुन्ह हो आये रहे हैं। दोनों एक बूतरे को देख सन्तोष लाभ करते हैं। मेरी इष्यां अब अनिनृप्त है क्योंकि यद्यपि पाटलिपुत्र पटने के नाम से आज भी बिहार की राजधानी है, यिर भी सन्तोष है कि मगध के उस साधारण साक्षात्य की राजधानी का गौत्र यिर लौट कर उसके प्रासादों में न बसा। यह भी सन्तोष की बात सोचता है पर पाटलिपुत्र को जो देखता है उसकी दुर्गन्धयुक्त गलियों के बाद किर फुड़ नहीं सोचता। मैं अपनी अन्य परित्यक परिस्थिति से परिवृष्ट हूँ।



उज्जयिनी

मैं भी प्राचीना हूँ। काशी, काशी, अनोप्या के साथ भारत की सात प्राचीन नगरियों में मेरी भी गणना है। मैं अबन्ती से उज्जयिनी कव और कैसे बनी, यह मुझे याद नहीं। परन्तु इतना कहूँगी कि भारत में यथापि नगर एक से एक हैं परन्तु जितनी उत्तरांशुथल मेरी स्थिति में हुई है, जितना बदलता हुआ जमाना मैंने देखा है, उतना शायद ही किसी और ने देखा हो।

मुझे देशी विदेशी दोनों स्वामियों ने भोगा है। मेरे आँगन में राज्य और गणनन्द दोनों लड़े हुये हैं। देशी विदेशी प्रभुओं ने आपल में चाहे जितने चाह किये हों, मेरे कलेश्वर को उन्होंने बराबर बढ़ाया है और उसे बढ़ा कर मेरी 'विशाला' संज्ञा सार्थक की है। प्रधोर और नन्द, मौर्य और शुंग, मालवा और शक, माकाटक और गुप्त, हृष

और राष्ट्रकूट, प्रतिशार और परमार तब ने सदियों के दौरान में मेरे प्राचीनों में अपना आवास बनाया है, तब ने अपनी शक्ति का आवार ने मेरी समर्द्धि को बनाया है।

मैं कितनी प्राचीना हूँ, यद मैं नहीं कह सकती, परन्तु इसा से प्रायः सात वर्ष यर्द पहले, प्रायः तभी जब पश्चिम में रोम की नींव पही थी मेरी शक्ति भी खुल कर फैल चली। निश्चय यह मेरा आरम्भ न था, आरम्भ तो युरोप अतीत में कथ का हो गया था, वह बस्तुतः नेरा वह शक्तिम काल या जब मेरे प्रसर का राजगृह दिल्लिपर उठ चला था। सालवीं तदी ईस्ती पूर्व में प्रद्योतों का कुल प्रतिष्ठित हुआ और धीरे-धीरे वह अपनी शक्ति का संचय करने लगा। मगध का साम्राज्य निश्चय पुराना था परन्तु जब शेषुनागों ने महाभारत काल के बाहादरों का अन्त कर गिरिधर से गौरव छोन आगे नई राजवानी राजगृह को दी तब मेरा राजकुल भी अपने साम्राज्य का स्वप्न देखने लगा था और तभी से नेरे इतिहास के अध्याय काल ने जो लिखने आरम्भ किये वे आब भी मेरे अस्तों के तापने हैं। मैं प्रद्योतों का धीरे-धीरे उठना देख रही हूँ और देख रही हूँ उत्तरी भारत के उन प्रकृतात राजकुलों की धंकिं में उसका लहड़ा हांना जो राजगृह, भावहृती और कौशाम्बी में कब के प्रतिष्ठित हो चुके थे। राजगृह के शेषुनाग, कौशल के इच्छाकु और कौशाम्बी के बत्त इतिहास में काही प्रसिद्ध हो गए हैं। उन्हीं की अंगी में प्रद्योतों का राजकुल जड़युद्ध के जीवनकाल में जा लहड़ा हुआ तब बस्तुतः शंकित वह न था बल्कि उत्तर भारत के ही राजकुल ही शंकित थे।

तब मेरा प्रमुख चण्डप्रबोत महासेन आगे कठोरता और सैयद शक्ति दोनों के कारण विशेष प्रसिद्ध हुआ। आस पास की भूमि पर उठने पूरा अधिकार कर लिया और अब वह उत्तर को भी जोदने के स्वप्न देखने लगा। उत्तर का जीवना कुछ आसान न था, परन्तु आशा इससे हो

आई थी कि तीनों राजकुल सदा आपस में टकरा रहे थे । कौशल उत्तर में या अधिक दूर, प्रद्योत ने इत्तिए पहले कौशान्वी और मगध के साथ निरट लेने का निश्चय किया । उसकी प्रसर नीति से उसकी उत्तरी सीमा वत्स की दक्षिणी सीमा के लंगलों से जा लगी थी । यदोंसी प्रकृत्य शत्रु होते हैं इससे मेरे और कौशान्वी के संश्रम में ज्ञोम होना स्थानिक और अनिवार्य था । एक एक दूष्य युद्ध जा अन्देशा लगा रहता था और दोनों राज्यों को सेनाएँ ब्रावर एक दूसरे पर टूट जाने को समझ रहती थी । ८८ वर्ष के राजा उदयन को जीवना कुछ सेज न था । यद्यपि विजाती के रूप में वह प्रसिद्ध था, वीणावादन में परम निषुण उदयन के हाथ जिन प्रकार उक्तकों पोशा के तारों पर अवाध गति से दौड़ते थे उसी प्रकार उनमें निरन्तर शक्ति संचालन की भी अद्भुत दृमता थी । हार कर मेरे स्त्रीमी ने छत का प्रयोग निश्चित किया और कृत्रिम हायो के जरिये घड़ के उदयन को कैद कर लिया । कौशान्वी पर कुछ महीनों के लिये मेरा अधिकार हो गया और मेरी शक्ति से विद्विमार के पुत्र मगधराज अजातशत्रु को इतनी शंका हुई कि उसने घट्टा घर अपनी राजधानी की प्राचीरें मुहृद करा ली, परन्तु प्रद्योत के हाथ कैते थे और वत्स पर पूरा अधिकार जमा लेने के पहले मगध की ओर घटना उठने मुनातिब न समझा । उदयन को उठने अपनी कन्या वासवदत्ता को वीणावादन में निषुण करने के लिए शिद्धक निषुक्त किया परन्तु वत्स राजा वासवदत्ता को ले भागा और कौशान्वी सहसा हिर स्वतन्त्र हो गई । उदयन के उत्कट शौर्य से प्रभावित हो कर प्रद्योत ने वत्स की ओर से अपना हाथ लीच लिया ।

परन्तु मेरा और कौशान्वी का संचर चलता रहा । कभी वह जीती, कभी मैं जीती और अन्त में मैंने उसे दबोच लिया । पालक ने उस पर अधिकार कर लिया, यद्यपि घर की लदाई मेरे यहाँ भी कुछ मामूली न थी ।

गोपाल पुत्र आर्योक ने पालक से मुझे छोन लिया यद्यपि वह स्वर्य मुझे भोग न सका । प्रदोतों का अन्तिम राजा अथनियदर्शन था जिसे महापद्मनन्द की सर्वस्वप्रांतक चोट सहनी पड़ी और मैं नन्दों की चेरी हो गई ।

नन्दों का चाणक्य की महद से सर्वनाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य ने जब मगध का साम्राज्य प्रान्तों की नित्य की जीत से दिन-दिन अदना शुरू किया तब मैं विशेष प्रकार से पाटलिपुत्र की अवधिता होकर भी प्रसिद्ध हुई । मगध का साम्राज्य इतना फैल गया था कि एक राजधानी से उसका शासन इस वृद्ध चौथी तटी में सम्भव न था और उसके लिये उसे अनेक शासन केन्द्र द्वारा प्राप्ति करने पड़े । पश्चिमी प्रान्तों का जितमें गुजरात तौरपर तक शामिल थे, शासन केन्द्र मैं बनी । विन्दुसार के समग्र जब इन केन्द्रों के राजकुल के कुमार प्रान्तों पर शासन करने लगे तब मेरे प्राकाद में उस अशोक ने निवार्त किया जिसका नाम संसार के प्रतीक बन राजाओं ने गिना जाने वाला था । तब उसका कुशल शासन राज-कुमारों के लिये दृष्टान्त बन गया । तद्विशिला में उसका बड़ा भाई सुकीम शासन किया और जब वहाँ के दुर्वर्द्ध व्यातियों ने विद्रोह किया और उसे सुकीम सम्भाल न सका, तब विन्दुसार ने उसके दमन के लिये मेरे शाक अशोक को ही वहाँ भेजा । अशोक ने विद्रोह रान्त कर दिया और मेरी ल्याति तद्विशिला के ऊपर प्रतिष्ठित हुई । मेरी ही भाँति भौंकों के तथा दो और शासन केन्द्र थे, उत्तर में तद्विशिला और दक्षिण में मुख्यंगिरि जिनसे मेरी स्वदाँ दोती रहती थी । अशोक जब राजा हुआ तब भी वह मुझे भुला न सका और उसके उत्तराधिकारी सम्पत्ति ने तो मुझे प्राप्तः अपनी राजधानी ही बना सी ।

वास्तव में मेरी स्थिति कुछ ऐसी थी कि मुझे भुलाया जा ही नहीं सकता था । राजनीति दो मेरी प्रबल थी ही परन्तु उससे बढ़कर मेरी अर्थनीति यी जो सदा राजनीति का आधार रहा करती है और रहती

आई है। मैं उस समय यशिया की आर्थिक हाविट से राजधानी थी, मेरी समृद्धि का मुकाबला तट का कोई नगर, पाटलिपुत्र तक नहीं कर सकता था। मैं उस काल के संसार की सबसे बड़ी मन्दी थी। याशिय का थेन्ड्र इतना बड़ा दूरुरा न था। चीन और द्वीप तमूहों से ताम्रलिपि से होकर आने वाला सारा वाशिय के मेरे ही बाजारों में दृटता था। रोम, निश, दाबुल और अरब की ओर से कल्याणी शूरुपारक और भगुक्त्य से हांकर आने वाला सारा तिजारती सामान मेरी ही सद्कों पर उतरता था। इसी प्रकार उत्तराधिकार और मध्याधिया के बारे स्थल मार्ग मेरे ही आँगन में समाप्त होते थे। प्रशत्त यशिकपथ मेरे आधार है उठकर कीशामी की राह एक और मधुरा तक्षशिला की ओर जाते थे, दूसरी ओर काशी पाटलिपुत्र की ओर। तीसरी ओर किंगपत्तन ताम्रलिपि की ओर और चौथी ओर पश्चिम के समुद्र तट की ओर। मैं इन बणिक पथों की निस्तीम स्वामिनों थी। अशोक का पाटलिपुत्र का निरन्तर मेरी ओर आँख लगाए रखना स्वाभाविक ही था।

अशोक के बाद मीयों का साम्राज्य जो बिल्लरा तो बिल्ले प्रान्तों पर अधिकार के लिए देश के छोटे पड़े राजाओं में संघर्ष छिड़ गया। बरन्तु उठकी बात न कह इससे पहले मैं उत्तराधिनीति की दृश्य भर कहानोंकर्तृगी जिदके परिणामस्वरूप मेरा अवन्ती नाम बदल कर मालबा हो गया।

पंडात्र शति प्राचीन काल से गणतन्त्रों की आधारभूमि रहा है। उन्हें एक यार ईरानो स्नाट दाया ने पराभूत कर दिया था किर भीक विजेता लिकन्द्र ने और किर अन्ततः चंद्रगुप्त मीर्य ने अपने साम्राज्यवादी नहत्याकौत्ता की खोट से छिन्न-निंद कर दिया था। उन्हीं गणतन्त्रों में मालव-कुट्रकों के गणतन्त्र भी प्रतिष्ठित हैं। मालवों ने जो इंसिया और तलबार दोनों एक साथ धारण करते थे, लिकन्द्र की राह उन्हें चर्ष्णे-चर्ष्णे-चर्ष्णे खपे जनीन पर रोकी थीं। लिकन्द्र का हमला तो उन्होंने बर्दाशत कर

लिया परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य का विज्ञान उनकी अदर्शित और परश्चाय से थाहर था । वे उसे बद्दन सके । उन्होंने अपना राजी तट का आधार छोड़ कर राजपूताने के कालखण्ड ने चला जाना निश्चित किया । पूर्वी राजपूताने की राह वे दक्षिण की ओर चले । इसी शीत एक और बटना घटी जिसका प्रभाव न केष्ट मध्यपश्चिम वर्द्ध सारे भारत पर पड़ना था । जातियों के परस्पर टकरा जाने से दूष कर शक नामक जाति अपने आधार से उठ रिंध देश में बस गई थी । इसी काल वह अवन्ती में आ-प्रसी और उसने इस प्रदेश को जीत कर भेरे नगर में एक नए विदेशी राज-कुल का प्रारम्भ किया । अभी कुछ ही दिनों उनको इस देश में आए हुए था कि उन पर मालवी की विजली गिरी । मालव स्वयं राजपूताने की राह अवन्ती की ओर बढ़ते आ रहे थे । अपने मुखिया विक्रमादित्य के नेतृत्व में उन्होंने शकों पर आक्रमण किया और उन्हें हराकर अवन्ती से उत्थाइ लेंका । मालवों ने स्वयं इस देश में बस कर उक्तका नामकरण दिया से किया । अब नै उनके नाम से मालवा कही जाने लगी । मालवों ने नुक्ते एक नया संवत् भी दिया, मालव संवत् जो शकों के ऊपर उनकी विजय का स्मारक था । इस से प्रायः ५७ वर्ष पूर्व उस मालव संवत् का प्रारम्भ हुआ जो प्रायः आठ सौ वर्ष बाद मालवों के उस मुखिया विक्रमादित्य की विजय से संबंधित होने के कारण विक्रम संवत् कहलाने लगा । मालवों का गणतन्त्र मालवा में प्रतिष्ठित हुआ तो उहां पर जपन सका और यद्यपि वे कुछ काल उक्तके स्वामी बने रहे, उनके हाथ से बाद की तरह बढ़ती आने वाली शकों की धाराओं ने यक्षिणीन की । अब तक भारत में प्रायः एक साथ ही शकों के पाँच राजकुल प्रतिष्ठित हो चुके थे—सिंध में, तक्षशिला में, मधुरा में, महाराष्ट्र में और अब मुख उच्चायिनी में । मौर्यों के बाद शुगों के आरम्भ ने पहले मगध को बाल्की ग्रीकों ने रोंद डाला था । शुग जो उनके बाद बड़ी सद्वाट के रूप

में प्रतिष्ठित हुए, मेरे ही पहोंची विदिशा के खने वाले थे और सेनापति पुष्पनिधि के बेटे अग्निमित्र ने विदिशा से ही विर्द्धन को जीता था । शुंगों के बाद कहर आए थे और उनके बाद आन्ध्र सातवाहन । परन्तु उभी शाकों के नेता लोदिताकृ अम्लात ने मगध के प्रान्तों को कुचल कर विस्तर दिया । उसी काल में शाकों की दूसरी धारा ने मुक्ते आज्ञावित कर, मेरे नगर में यतानोतिक का राजकुल रथापित किया ।

यतानोतिक का शक राजकुल उज्जयिनी के क्षेत्र राजकुल के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस कुल के गौत्म का प्रतिष्ठाता यतानोतिक का पुत्र चष्टन था । चष्टन का सम्बन्ध मधुरा के शक राजकुल से भी था । चष्टन ने मेरे नगर के आधार से अपने राज्य का विशेष विस्तार किया और मालवा की शक्ति परिचमी भारत के प्रसिद्ध राजकुलों में गिनी जाने लगी । चष्टन का पुत्र रुद्रदामन हुआ परन्तु उसकी शक्ति विशेष समाप्त नहीं हुई और इस कुल की समृद्धि बल्कि उसके पुत्र रुद्रदामन ने बढ़ाई ।

रुद्रदामन इस कुल का सर्वश्रेष्ठ वृपति था और गौतमी पुत्र भी-सातकणी ने मेरे जिन प्रान्तों पर कब्जा कर लिया था । उसको तो उसने छोन ही लिया, उनके अतिरिक्त आन्ध्रों के अन्य प्रान्त भी उसने स्वायत्त कर लिए । उस काल आन्ध्रों का राजा वाशिष्ठि पुत्र भी पुलमादि था जिसने रुद्रदामन की कन्या को व्याहा था । परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध राजनीतिक प्रसर में बिले ही बाधक होते हैं और शकराज को अपने ब्राह्मण जामाता के अनेक भूत्तर्याद छीनते जरा भी दंकोच न हुआ । मेरी हीमाएँ चढ़ चलीं । सातवाहनों के उच्चरी सूक्ष्मों के अतिरिक्त गुबरात, सीराहू, कनांट और राजपूतानि के अनेक भांग भी मेरी सत्ता में शामिल हो गए । रुद्रदामन जैन के बल इन्हीं देशों को अपने हाथ में किया बरन् उसने दसवीधयों को भी परास्त किया ।

उसके शासन काल में एक प्रतिदं बात यह हुई कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में खुदी गिरनार पर्वत की खुंदर्शन भूमि के बन्ध टूट गए । उनकी रुद्रामन के सौराश्र शासक फुलैय पुत्र नुबिशाल ने किर से मरम्पत कराई और इस निमित्त उसने प्रजा पर किसी प्रकार का कर न लगाया ।

इसी काल विशेषतः मैं भारतीय ज्योतिष का केन्द्र बनी । वाराण्सी की गतिविधि का निरीक्षण मेरे ही आधार से होने लगा । पंचाङ्गों का निर्माण भी मेरे ही नगर का विशिष्ट भाना जाने लगा । और ज्योतिष के लेख में श्रीक और रोमक विदेशी प्रभावों को भी तब के हिन्दुओं ने अपने शास्त्र में स्थान दिया । श्रीक ज्योतिष के द्वानेक लिदान्त, पारिभाषिक शब्द और गाहू चक्र आदि भारतीय ज्योतिष में मेरे ही नगर में स्वीकृत हुए । राशि चक्र तो वास्तव में श्रीकों का भी नहीं था । उन्होंने उसे ब्राह्मणी व्यतिप से लिया था । इसी प्रकार होहाचक जो जन्मात्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसको श्रीक दिशा से मुक्ते मिला । यद्यपि उसका आरम्भ भी श्रीकों में न हुआ था, मिथियों में हुआ था जिनसे सूर्य के लिए श्रीकों ने पहले पहल होरस शब्द सीखा । शक होने के नाते विदेशी ज्ञान को स्वीकार करने में रुद्रामन या उसके पूर्वजों और वंशवरों में ब्राह्मणों की भाँति संकोच न था । यह विशेष प्रशंसा की बात है कि जिन मेरे शक स्वामियों को ब्राह्मणों ने म्लेच्छ और धृणित समझा उन्होंने ही उनकी संस्कृति भाषा की प्रगति में अपना अवतिम योग दिया । आरचर्य की बात है कि जहाँ ब्राह्मण लातवादनी ने अपने लेख प्राकृत में खुद्धाए, म्लेच्छ शकों ने शुद्ध रूप्त्व में और रुद्रामन का द्वितीय शती ईस्वी के मध्य में लिखा गिरनार वाला लेख तो रूप्त्व गद्य की पहली शुद्ध निखरी हुई रौली प्रस्तुत करता है । मुक्त्वा बाश और दरडी की बाक्य परम्परा को

अनेकार्थ में उस गिरनार की शैली से सीखना है। रुद्रदामन का यह सांस्कृतिक योग सदा भारतीय संस्कृति के विद्यार्थियों को उपकृत करेगा।

रुद्रदामन के बाद मेरे शक राजकुल में हृदैलू वृपतियों का राजन हुआ और एक के बाद एक कमज़ोर वृपति मेरे स्वामी होने लगे। इसी काल मेरे पश्चिमी जगत में आभीरों की आँखी आई और नेरे प्रान्त तितर-नितर हो गए। रुद्रदामन की अर्जित पृथ्वी की रक्षा करने या भोगने वाला न रहा। जब आभीरों का उत्थान मेरी दिशा में हुआ प्रायः तभी मगध और अन्तर्बेद में उस नई शकि का जन्म हुआ जिसे भावी भारत की राजनीति का नेतृत्व दीर्घ काल तक करना या और जिसकी बढ़ती हुई शकि मेरे क्षमर भी शीघ्र ही हाती होनी थी, गुप्त सम्राटों की।

मेरे राजकुत्त का अन्तिम दूरति रुद्रसिंह तृष्णीय हुआ। अपने निकट के पूर्वजों से कहीं अधिक उत्समें शकि यी और कुछ मात्रा में उसने अपने कुल की विगत शकि लीटा ली। उसकी महत्वाकांक्षा इतनी बढ़ी कि उसने मगध पर भी अधिकार करने का स्वप्न देखना शुरू किया और कम से कम कुछ काल के लिए मगध राज को शंकित कर ही दिया। बास्तव में मगध के सूर्य पर वह राहुवनकर कूदा और यदि तरुण चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) ने उसे मार न डाला होता तो वह निश्चय चन्द्रगुप्त की दिविजय पर स्वाही पोत देता। किर भी जो कुछ उसने किया उसने गुसों के तम्मान में कम बढ़ा न लगाया। शक-मुरल्दी शाहीशाहानुशासियों और अन्य विदेशी राजपूत शकियों को संगठित कर वह उहता मधुय की ओर से अन्तर्बेद के पश्चिमी द्वार पर जा लदा हुआ। चन्द्रगुप्त शीघ्र ही मर जुका या और मध्ये उसने अपनी पृथ्वी की रक्षा के लिए अपने कनिष्ठ पुत्र चन्द्रगुप्त को जुना पा परन्तु उसके मरने पर छड़े होने के अधिकार से उष्मका बहा बैठा रानगुप्त

मगध की गही पर बैठा । रामगुप्त कमज़ोर और कावर या जितमें अपने पिता की जीती पुत्री को संभाल सकने की ही शक्ति न थी, शकों के आक्रमण से बह इतना आतंकित हो उठा कि उसने उनके मनमानी संघी की शर्तें चुपचाप मान ली । अपनी आजादी और राज्य के बदले जो मूल्य देना उसने स्वीकार किया, वह कायरता का अप्रतिम दृष्टान्त है । उसकी पत्नी श्रुबदेवी अपने सौन्दर्य के लिए विल्यात है । रुद्रसिंह ने उसको भी संघी की शर्तों के अनुकूल माँगा और उसके पति रामगुप्त ने उसे शकराज के हडाले कर देना स्वीकार कर लिया । श्रुबदेवी ने जब वह मुना तथा वह अत्यन्त उद्दिष्ट हो युवराज चन्द्रगुप्त के पास पहुँची और उससे उसने अपनी लाज की रक्षा की प्रार्थना की । तरण चन्द्रगुप्त को वैसे भी वह अपमान लटका या और उसने शकराज से बदला लेने का उपाय लोच लिया । श्रुबदेवी के पैर में वह एक छोटी रक्षक सेना लिए शकों के स्वर्णधावार में पहुँचा और वहाँ उसने रुद्रसिंह को मार डाला । शकों में भगदड़ मच गई और गुप्त बंश की लाज बची । चन्द्रगुप्त ने श्रुबदेवी और मगध की गही दोनों पर अधिकार कर लिया । रुद्रसिंह मर तो गया परन्तु शकों की प्रभुता मालवा और मेरे नगर में बनी रही । वह प्रभुता किर भी कुछ ही दिनों ठहर लकी । चन्द्रगुप्त द्वितीय जो अब मगध की गही पर या और जिसने अपने कायर भाता रामगुप्त का नाम तिक्को अभिलेखों तथा गुप्त वंशावली से भी मिटा दिया या बागरूद और दूरदशों दृपति या । महस्याकाक्षा भी उसमें पिता की ही भाँति कूट-कूट कर भरी थी और उसने यहु स्वरूप शकों को लंतरे की दूरी से सदा के लिए निशाल देने का व्रत किया । मावला और मगध के थीच बाकाटक ब्राह्मणों का राज्य था । उनके राजपुत्र से अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता को न्याय बाकाटकों को मित्र बना उनके राज्य में अपनी सेना का मार्ग बना, शकों

में आ दूटा और शीम उन्हें कुचल बाला । चन्द्रगुप्त की संहारक नीति साधारण न थी । प्रतिदून्ही को हराकर छोड़ देना उसकी नीति न थी और उसने शकों को मालवा से बाहर निकाल दिया । उसकी इस नीति के कारण ही उसे शकारि विक्रमादित्य का विरुद्ध मिला । मालवा, गुजरात, तौरप्रृथकी अब मगध साम्राज्य में समा गए और पश्चिमी समुद्रतट पर विदेशों से होने वाले बाणिज्य का लान अब मगध को होने लगा । मैं स्वयं उसार के बाणिज्य का प्रमुख केन्द्र थी और मेरी समृद्धि अब पाटलिपुत्र की समृद्धि हुई ।

मेरी महत्ता मगध सम्भाट ने भी मानी और मुझे विशेष आदर दिया । मुझे अपने साम्राज्य की उसने दूसरी दक्षिणी राजधानी बनाई और यद्यपि पाटलिपुत्र उसका राजनीतिक केन्द्र था, साम्राज्य का भ्यापारी और साकृतिक केन्द्र मैं ही थी । अनेक बार उसने मेरे प्राकादों में आने दरकार किए । अनेक बार उसके नवरसन यहाँ पश्चारे । गुन काल के उस स्वर्ण युग की अनेक ऊँचाइयाँ मेरे ही नगर में उस काल के दृतिवाल ने छू ली । कालिदास मुझसे योद्धी ही दूर पर रहता था और उसने अलका की ओर जो अपना भेषदूत भेजा तो मेरी नगरी का महल वह न भुला सका और वह यद्यपि मेरा रास्ता अलका जाने वाले भेष के लिए कुछ देखा पढ़ता था उसने किर भी मेरी ओर भेजा । उसने कहा भी तु उच्चजयिनी स्वर्ग का पृथ्वी पर उत्ता हुआ लगड़ है, वहाँ महाकाल के प्राचीन मन्दिर में चैंबर लिए नर्तकियाँ दरा अने घुँघरशों से मन्दिर का बादावरण निनादित रखती हैं, यहाँ के ऊँचे भवन विभाम के आवाद हैं, शिक्षा के बड़ पर कोविदहृद उदयन की कथा कहते हैं-उच्चजयिनी की चरलांगी कापिनियों के कटाक्ष से बंचित रहा उसका जीवन निरर्थक है ।

दूर्णों की अनेकोंनेक धाराओं ने जब गुस्सों की शक्ति तोड़ दी और उनके साम्राज्य के प्रान्त घिसेर दिए, तब मैं भी उससे दूर बा वही और

मेरे ऊपर भी हूणों का अधिकार हो गया। उनके नेता तोरमाण ने मालवा पर अधिकार कर लिया। परन्तु शोध, यशोधर्मन् ने उसके पुत्र मिहिरकूट को मालवा से निकाल दशापुर (मन्दसोर) में अपनी प्रशास्ति के बाहक त्वंभ को लहड़ा किया। लौहित्य से समुद्र तक की भूमि के राजा उसके चरण छूने लगे।

हूणों की चोट से भगवान का गुम कुल जब जर्जर हो गया तब उसका एक शाजा मेरे नगर में आ। वही और उसने मालवा के एक भाग पर अधिकार कर लिया। मेरी नगरी हिंद यशोधर्मन् के बाद स्वदेशी शृण्टियों द्वारा शासित होने लगी और देवगुप्त ने तो जो गौद के दृगति शशांक से मैत्री की तो कल्पोज के राजाओं की जान के लाले पह गए। उसने इस के पहले भाई राजवर्द्धन को मरवा डाला और मौखियों के अन्तिम राजा को मार कर कुछ काल के लिए कल्पोज पर अधिकार कर लिया। यद्यपि वह हर्ष की बढ़ती ताकत से नष्ट हो गया। मैं फिर भी अपनी आजादी बनाए रख सका।

अब एक नई शक्ति ने भारत में प्रविद्धि चाई। वह शक्ति गुर्जर प्रतिहारों की थी। देश में तीन प्रचल शक्तियाँ पाल, राष्ट्रकूट और प्रतिहार थे। प्रतिहार मारवाड़ में मन्दोर के आधार से उठे थे और उनके नृपति बत्तराज ने मुझ पर अधिकार कर लिया। बत्तराज को राष्ट्रकूट नृपति की चोट से भागना पड़ा और मैं राष्ट्रकूटों के अधिकार में आई। इस काल का मेरा इतिहास छोनाम्भरदी का इतिहास है और मैं कभी राष्ट्रकूटों, कभी प्रतिहारों के अधिकार में आती-जाती रही। बत्तराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय मैं अब कल्पोज को जीत उसे अपनी राजधानी बनाई तब फिर एक बार मैं प्रतिहारों के कब्जे में आ गई। शोध राष्ट्रकूटों ने मुझे छोन लिया। नागभट्ट के पुत्र मिहिरमोज ने एक बार सहस्र मुभशर आक्रमण किया और मेरे परवर्ती प्रदेश को रोद कर मुझे भी लूटा।

महेन्द्रपाल, प्रथम पढ़ीवाल, महेन्द्रपाल हितीय आदि किर किर मुझ पर अधिकार करते रहे पर्याप्ति उन्हें बावर राष्ट्रकूटों से मेरे लिए लोहा लेना पड़ा। इस छोटा भास्ती में मेरी जो दुर्गति हुई उसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है।

दसवीं सदी के आरम्भ में एक नवा राजकुल मेरी नगरी में प्रतिष्ठित हुआ। वह था उन परमारों जो जिसके बंशधर वाक्यति राजनुज और भोज पिछली हिन्दू संस्कृति के रूपक और उसके निर्माण हो गए हैं। इस राजकुल के उठने के समय मेरी नगरी में प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के प्रतिनिधि शासक रहा करते थे। कृष्णराज उपेन्द्र ने एकाएक बाहरी शक्ति को उत्ताप्त मालवा में स्वतंत्र परमार बंश की छत्ता स्थापित की। मैं किर स्वतंत्र राजवानी हुई और मेरी शक्ति को पुनः प्रतिष्ठा कियकहर्ष ने की। उसने राष्ट्रकूटों का परानव ही न किया बल्कि लोटुग को मार राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यतेत पर अधिकार कर लिया।

उसी कियकहर्ष का पुत्र वशीष्टवी मुंज था। मुंज अपने साहस, अपनी साहित्य प्रियता और उदारता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध हो गया है। उसका समर्क मुक्ते अपने भाग्योदय सा प्रतीत हुआ और निरचय वह देरा भाग्योदय भी था: जिस प्रकार प्रद्योतों के समय मैं प्रकर्ष के मार्ग पर आख्टा हुई थी, जिस प्रकार शक्ति के समय मैंने साम्राज्य निर्माण किया था, उसी प्रकार परमारों के आधिपत्य में मैंने उत्कर्ष की ओटी छू चली। मुंज पृथ्वीचल्लम कहलाता था। निःसन्देह वह उज्जिविनी बल्लभ था। चालुक्य को तो उसने कुचल कर रख दिया। उन्हें उसने अनेक बार दराया, परन्तु छठी बार जब वह अपने मन्त्री की सलाह की अवहेलना कर गंदामरी लाल चालुक्यों के राज्य में बुरा और धुरता चला गया। तब चालुक्य नरेश तैजप द्विदेव ने उसे पकड़ कर कैद कर लिया। मुंज हाथी से कुचलवा दिया गया और मैं अनाया हो गई। मुंज ने

अनेक साहित्यिकों को मेरी नगरी में आधय दिया था । पश्चगुप्त, धनंजय, धनिक, सप्त उक्तजी कीर्ति के उपालक हैं ।

उसके बाद मेरी गही पर कुछ काल के लिए मुंज का छोटा भाई सिन्धुराज बैठा, जिसे सिन्धुल भी कहते थे । इसी सिन्धुराज के यशो-गान के लिए पश्चगुप्त ने 'नवसाहस्रांक चरित' लिखा । सिन्धुल कुछ ही काल जीवित रहा और उसके बाद उसका पुत्र राजा भोज मेरी गही पर बैठा ।

राजा भोज अपने समय के भारत का सबसे प्रसिद्ध और शक्तिमान रुग्ण था । उसने प्रायः साठ बर्ष राज्य किया और इस दोरान में उसने थे: छः राजकुलों से संपर्श कर समय समय पर उन्हें पराभूत किया । चालुक्यों से बैर पुराना था और चालुक्य राज को परास्त कर उसकी राजधानी को लूट उसने अपने चचा भोज का बदला लिया । ऐसा नहीं कि भोज हारा न हो । वह हारा भी और अनेक बार हारा परन्तु उसकी विशेषता इत शात में यो कि हार कर भी उसने कभी अपने को हारा हुआ न माना और बार बार उसने लौटकर गही पर अधिकार कर लिया । विक्रमादित्य, जैयिंद, लानेश्वर ने उसको पराजित किया और मालवा को अनेक बार रींद दिया पर भोज धारा से उज्जिनी, उज्जिनी से धारा भागता रहा और द्विं उसने मेरे राज्य पर अधिकार किया । श्रिपुरी के कलचुरियों, ग्वालियर के कच्छपातों, अदिलबाद के चालुक्यों और कल्यानी के चालुक्यों को उसने अनेक बार हराया । उसका लग्न जीवन एक साध शक्ति और शक्ति की उत्तराधा में बीता । तथ वह उन बीसियों बन्धों को लिखने का समय पाता था जो उसके कृतीत्व के स्मारक हैं । समझ में नहीं आता परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि शक्ति, लहरी और सरस्वती तीनों ने समान रूप से उसको बरा या ।

भारत पर इन्हीं दिनों महमूद गजनवी के आक्रमण होने लगे थे ।

पहली बार वब दिन्दू राजाओं ने समिलित रूप से उसका सामना किया था तब उनमें भोज का भी योग था और उसकी सेना भी महमूद से हारी थी । परन्तु समझ में नहीं आता, इतने राहसी, बीर और शुद्धि-बान दृष्टि ने महमूद को इराने का उद्योग क्यों न किया ? भोज के से अद्भुत राजा को भी परेलू युद्ध में कैसे रह कर विदेशी विजेता की ओर ते मुँह पर लेना निश्चय मंगी प्रसन्नता का कारण न हो सकता था । मैंने अनेक बार अपने आप से उसाइना के रूप में कहा—भोज का शीर्ष अपनों को दी विपक्ष करने में विरितार्थ होता है । जब महमूद के भव से भाग कर अद्विलबाद के नृपति भीम प्रथम ने अन्यत्र शरण ली और सोमनाथ को विदेशी हारा पद्दलित तथा नष्ट होते सुना तब मैंने अपने स्वामी और भारतीय संस्कृति के मूलिमान प्रतीक भोज की ओर देखा । तब उसकी उदासीन मुद्रा देख मैं कफ्क कर रो पड़ी और मेरी म्लानि सथा छाँभ का अन्दाज लगाया जा रुकता है । जब भीम के सिन्धु के मूलमानों के विरुद्ध आक्रमण करने, अपने राजधानी छाँड़ा भारत चले जाने के बाद मैंने अपने स्वामी के जैन सेनापति कुल-चन्द्र को अद्विलबाद को लूटते देखा, नहीं कह सकी वह भोज के पराक्रम का दृष्टान्त था या जैन अहिंसा का आचरण !

बो हो, मैं भोज के कृत्यों से अद्भुत प्रतर्जन न थी और मुझे बार बार मुंज के बीय और व्यक्तित्व को याद आने लगी । मेरी विरक्ति से लीझ कर भोज ने तब धारा नगरी को अपनी राजधानी बनाया । धारा शहरी और समृद्धि में मुझसे बढ़ चली । उसके प्रान्तगत में मन्दिर और भवन खड़े होने लगे, सर और तरोवर खुदने लगे परन्तु मेरी चीर्ति इस नव-निर्माण से नहीं मिट सकती थी, न मिट सको । अनेक बार अपनी राजनीतिक हार से भाग कर भोज को मेरी ही प्राचीरों के पीछे शरण लेनी पड़ी । अनेक बार मैंने मालबा का नेतृत्व किया । अन्त में सक्षमी-

कर्ण और भीम दोनों ने अपने कुलां के पहले परामर्श का बदला मेरे स्वामी भोज से लिया। अपनी सेनाएँ एकत्र कर उन्होंने दो और से मालवा पर हमला किया और दोनों भोजों को भोज ने संभाला। किस विद्युत गति से यह एक से दूसरे मोर्चे पर दौड़ पड़ता, किस साइर से यह कभी एक दूसरे की रेहा करता यह बव मैं याद करती हूँ तथा उसे सराह उठती हूँ और गर्व से मेरा मस्तक ऊँचा हो जाता है। परन्तु वृद्धावस्था में अपने द्वीप शक्ति के साथ भोज दो प्रतिष्ठित राज्यों की सम्मिलित सेनाओं का सामना अकेला न कर सका और जब वह पश्चिमी मोर्चे से पूर्वी मोर्चे की ओर आ रहा था, तब राह में ही युद्ध की थकान से भोज की मृत्यु हो गई।

राजा भोज ने भारतीय ताहितिय और साहित्यिकों के लंबज्ञा चैप में अपना साका खलाया। उसके दरबार ने नित्य अगणित मेवादी काव्य-कार आते रहे। उनको नित्य लालों की संख्या में स्वर्ण सुदाएँ, हाथी, बोडे, गाँव, भोज दान करता रहा। देश भर ने उसकी रुक्षाति द्वा गई कि वह कभी किसी मंगते दो विमुख नहीं करता और मुँह मांगा दान देता है। इलोक के एक एक चरण पर, उसके शब्द शब्द पर उसने लक्ष लक्ष सुनर्ण दिए थे। और जब अब इन इस संबंध में उसको अपने समकालीन अप्रतिम विजेता महान् गजनवी से दुलना करते हैं तब गर्व से हमारा ललाट चमक उठता है। एक फिरदौसी को अपने दिए बचन के अनुसार भारत के लूटे, अछूते अनन्त धन के बाबनूद भी वह सन्तुष्ट न कर सका। फिरदौसी के सामने नगरण किलने ही संस्कृत कवियों ने उसकी आशा से दुगनी समर्पि भोज से पाई। काश किरदौसी भोज का कवि होता।

परन्तु इस विवेकहीन साहित्यिक औदार्य और अनवरत युद्धों पर सर्व का परिणाम वही हुआ जो होना या और शोध, भोज, के मरते;

ही कोप तो रिक्त ही ही चुका था, मालवा की रही वही शक्ति भी लुप्त हो गई। यद्यपि चालुक्य राजा ने परमार नृपति को फिर से मेरी गही पर बिठा दिया, मेरी शक्ति दिन पर दिन चौथा होती गई और मैं आप-पास के उठते हुए राजकुलों की भद्रत्याकांडों का शिकार हो गई फिर मेरे ऊपर छोना भाटों शुरू हुई। फिर मैं शक्तिमान का लौट लौट दामन पकड़ने लगी। धीरे धीरे हिन्दू सत्ता भी त्रुप्त हो गई और बोदहवीं सदी के शुरू में जब अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफ़ूर ने मालवा को रींदा और मुझे लूट लिया तब मेरी प्राचीरों से हिन्दू सत्ता बदा के लिए उठ गई।

परमारों के मेरे नगर में प्रतिष्ठित होने के पूर्व ही मेरी शक्ति राजनीतिक रूप से वंधने लगी थी। कुछ तो मरणपिका (मारह) ने ले ली थी, कुछ भोज के समय में धारा ने ले ली थी। फिर भी मेरी प्राचीनता और अतीत का गौरव जनता की दृष्टि में इतना कँचा था कि बस्तुतः मेरी शक्ति कभी दृटी नहीं। यह सही है कि द्विसलमानों के समय मालवा की राजधानी मेरे आग्नि से उड़कर माण्डली चली गई और मालवा पर नवाबों का अधिकार हो गया, परन्तु मेरा यज्ञोत्ति के त्रेत में फिर भी मालवा में प्रभाव ढाना ही रहा। नवाबों के कुल एक के बाद दूसरे आए और उन्होंने मालवा को शक्तिमान बनाया। मैंने उसे देखा और यद्यपि मैं स्वयं उनकी राजधानी न थी पर अपने देश का उत्कर्ष मुझे निश्चय अस्था लगा और निःसन्देह नवाबों के बाहर अपना दूसरा घर भी न बसाया। उनकी नीति भी निश्चय प्रजाशोषक नीति थी। अपने ऐश्वर्य और विज्ञास में वे भी प्रजा की गाढ़ी कमाई स्वाहा करते थे परन्तु भोज का औदृश्य अनुभव कर लेने के बाद मुझे नवाबों के इस आचरण से विशेष चोभ न हुआ।

मालवा की गुजरात और मेवाड़ के सामियों से अक्षर मुठभेद से

जावा करती थी। मेरे सुल्तान भी कुछ कम महत्वाकांक्षी न थे, और यदि गुजरात के सुल्तान ने उनके कुछ प्राप्त छीने तो मेरे सुल्तानों ने भी गुजरात की राजनीतिपर काकी प्रभाव डाला। हाँ गुजरात और मालवा को सम्मिलित केना को जब मेषाद के राजा कुम्ह से मार खानी पढ़ी तब निश्चय दोनों 'मुँह कालिल पुत गई थी। राजा ने चित्तीद में इस विजय के उपलक्ष्य कीर्ति स्तम्भ लड़ा किया। धीरेधीरे मालवा की शक्ति सिर प्रचण्ड हुई और वेदिनीराय के मन्त्रित्व में उसका आकार-प्रकार भी बढ़ा। चावर के भारत में आने के पहले साँगा ने मालवा को भी विहोन कर दिया। परन्तु शक्ति मेषाद के हाथ आकर भी निकल गई। दो दो पार दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी को हरा कर भी दिल्ली के तख्त पर राजा ने अधिकार करों न किया, यह अद्भुत पहली है। विशेषज्ञ जब हम यह देखते हैं कि जमुना से गुजरात तक और मालवा से मारवाड़ तक की भूमि उसके सामने सिर मुकाबी थी। फतहपुर सीकरी की द्वारा ने राजा का सर्वनाश कर दिया और जूँ भी चावर की सल्तनत का सूजा बनी। हुमायूँ के समय मैंने निश्चय फिर स्वतंत्र होने की कोशिश की और जब शेरशाह ने उसे निकाल बाहर किया तब मैं एक बार किर स्वतंत्रता का स्पर्श देखने लगी पर स्वयं शेरशाह ने मुझे अपनी पकड़ से बाहर न जाने दिया। यद्यपि उस सुल्तान का शान्तिमान और मेषादी शासन मुझे तर्बीया प्रतिकूल न जान पड़ा। शेरशाह के भरते ही मारवाड़ का अक्षयान राजकुल किर प्रश्न द्वारा गया।

दिल्ली सल्तनत पर तैमूरिया लानदान के सबसे बड़े सुल्तान अकबर का जब कृजा हुआ तब पानीपत के मैदान में किर एक बार हिन्दुस्तान की किसीत का फैलता हुआ। अक्षयानों की सम्मिलित केना का हेमचन्द्र (हेम) नह तदबीजों और उन्मीदों के हाथ मैदान ने उतरा था और कुछ अबत्र न था कि उसकी जीत से भारत की राजनीति बदल जाती। परन्तु

नतोबा कुछ और हुआ और अकबर जम कर दिल्ली के दफ्तर पर बैठा । तब उसके दो प्रबल प्रतिद्वन्द्वी देश मैं थे, एक उसके दादा के दुरमन राणा सांगा का पोता प्रताप मेवाड़ में, दूसरा बाजबहादुर मालवा में । बाजबहादुर मालवा का नवाब था और उसका उत्कर्ष में अभिलिंगि से देखती थी । मालवा जीतने के लिए जब अकबर ने खाय नाई को भेजा तब बाजबहादुर वही धीरता से लड़ा और जब शाही कोज के लामने उसकी मुँही भर सेना न ठहर सकी तब वह राजगढ़ से बढ़कर आजादी का सनक मालवा छोड़ मेवाड़ चला गया जहाँ समान धर्म प्रताप अकबर से लोटा ले रहा था । तब मैंने देखा बाजबहादुर की प्रेयसी हिन्दू वीरांगना कवयित्री रूपमती का वह साइर जिसने माझम अनगा के भेटे को विकरण कर दिया । अकबर वह सेनापति जब उसके रूप पर मुख्य हो मालवा को नष्ट न करने के बदले उसे मांगा तब उसने उसका प्रस्ताव त्वीकार करते हुए अनन्द महलों ने आमनित किया । परन्तु जब सेनापति ने उसके कमरे में प्रवेश किया, तब उसे सुन्दर कपड़े और गहने पहने मरी पही पाया । वह चकित रह गया । उसकी माँ माझम अनगा जानती थी कि अकबर इत अनीचित्य को सह न सकेगा और इसलिए कि मालवा के अन्तःपुर की कोई नारी उसके पुत्र का यह दुर्भरण अकबर तक न पहुँचा दे, उसने मालवा के उस हरम में आग लगा दी । मुझे मालवा के जलते मरलों की लपटें आज भी याद हैं, आज भी उनमें जलती रानियों और उनकी बांदियों की लील मुन पहती है ।

उसके बाद का मेरा इतिहास किर ठबद-साम्राज्य और असम है । मेरी स्थिति निरन्तर बिगड़ती रही और मैं टैमूर की सल्तनत में समा गई पर मेरे ही भैदान में उसके मुल्तानों और दक्कन की रियासतों की ओरै भी मैंने देखी, किर पराठों की मैंने खुद बही और जब धीरें धीरे भेषे हस्ती मिट गई तब भी जीवित मैं छिपा के जल की भाँति चली जा रही हूँ और मेरा अतीत मूर्तमान हो मेरे सामने जब तब उठ आता है ।



कौशाम्बी

नगर दूसरे भी है, रहे है, भारत में भी, शहर भी जिनका इतिहास गीरव और शब्दित का है परन्तु जैसा रोमांचक इतिहास मेरा है जैसा किसी और का नहीं। प्रथाग से प्रायः ३८ मील पश्चिम यमुना तट पर मीलों कोषम के आस पास जो भग्नावशेष आकाश की ओर आंखि किये नित्य उमड़ते और दिलोन होते अपनी कीर्ति कथा देख रहे है, वे नेरे है। मीलों तक फैले हुये भैरों भग्न परकोटे उस भू प्रसार का परिवेष्टन करते है जहाँ नीटि, साहित्य और दर्शन ने साहात् निवास किया था। भेरी मिही में आज भी उन नरनारियों की काया जुली मिली है भारतीय साहित्य ने जिनका नामोलेख गर्व और रोमांच के साथ किया है।

मैं कौशाम्बी हूँ, उदयन की कौशाम्बी, कौशम्बी की असाईं पर वसुतः उदयन की ही। उदयन का नाम भारतीय रोमांचक साहित्य में व्यापक और अमर है और उसके साथ ही उसकी और वर्षों की प्वारी

मुझ कौशाम्बी का नाम भी अपिट है। माना यमुना का जल-मवाह उसी प्रकार आज भी प्राचीन गति से भेरा सर्श करता भहता जा रहा है, माना कि अब मैं उस प्रकार जीवित नहीं कि यमुना के उस प्रवाह के साथ पूर्व के देशों को अपने सम्बेदन मेज लकू, पर निश्चय मेरी मिट्टी में जो विभूतियाँ संगै हैं उनका सर्श कर यमुना स्थं पवित्र होती है और भेरी पावन रज राह के नगरों को पवित्र करने के लिये बहाले जाती है।

मैं प्राचीना हूँ, गिरिज को भाँति प्राचीन। शतवर्ष और गोपद ब्राह्मण ने भेरा यरा गाया है और एतेरेय ने भेरे उस जन वस्तों का जिन्हाने दूर पूर्व में नरों नोंब दाला। काशी का प्रदीदन राजन्य ही नहीं शृणि भी था। भर्ग और वस्तु उनके दों पुत्र हुये। भग्नों ने भेरे उत्तर-वर्ती पढ़ोसी प्रदेश में अपने गणतन्त्र का विस्तार किया परन्तु वस्तु ने युके अपनी राजनीतिक क्रियाशोलता का केन्द्र जनापा, मुझ कौशाम्बी को। मुझे भर्गों का जनसत्ताक शासन न भाया और मैं अपने राजसत्ताक प्रसुद्धों की भ्रिया बनी।

भेरी स्थिति यमुना के तट पर ऐसी थी जो पूर्ख परिचय, उत्तर-दक्षिण का केन्द्र था। उत्तर तद्विला की ओर से, दक्षिण उद्धविनी और शूलपारक जाने वाला विष्णु पथ और मगव से हस्तिनापुर का राजमार्ग भेरी ही नगरी में एक दूसरे को काटते थे। एक ओर वैशाली, राजगिरि, पाटलिपुत्र, काशी और प्रथाग, और दूसरी ओर इरादार, मधुरा, कान्यकुञ्ज, अहिल्या और कामिल्य का वाणिज्य भेरे नगर में वरस पढ़ने को उत्सुक रहता था। भावस्ती, कपिलवस्तु, साकेत आदि के नार्ग भी भेरे ही ग्रामार से कूटते थे। फिर बलमार्ग से पंचनर और अन्तर्वेद से जाने वाला सारा वाणिज्य भेरी ही राह सहजाति और वहाँ से समुद्र के दृस्ते वर्षा और चीन की ओर जाता था। उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर जाने वाली सेनाएँ भेरे ही राजमार्ग से होकर

निकलती थी। नेरे ही केन्द्र से अवन्ती ने शूरसेन को और मगथ ने अवन्ती को अपनी राजधानी का अंग बना रखा।

मैं पहले कह चुकी हूँ कि वस्तो ने मेरी बुनियाद ढाली और एक सम्बे काल तक लगातार उनके उत्कर्ष का इतिहास मेरी नगरी में लिखा जाने लगा। परन्तु मेरा विशेष उत्कर्ष महाभारत युद्ध के बाद हुआ। जननेत्रय के शासन काल के बाद इतिनायुर पर इतियाँ बरसती गई और एक दिन गंगा की बाढ़ ने उस प्राचीन नगर का सर्वथा आप्लावित कर ढाला तथा निचक्षु ने इतिनायुर छोड़ मेरी शरण ली। पौरव कुरुओं के राजवंश की यह शाला अब मेरी नगरी में आर्ह तथ भी ऐ काफी प्राचीन थी और मेरा नये रुप से शृंगार आवश्यक था। निचक्षु के भरतकुल ने निरचय मेता अंग मण्डन किया और मुझमें नई शक्ति प्रतिष्ठित की। पंचाल का जनपद मेरे ही पीछे था और पंचाल अनेक प्रकार से जाप्रत और सचेत था। परन्तु कुरु कुल की इस यशस्वी शाला ने जो मुझे नई शक्ति प्रदान की उससे मैंने अहिंसक और कामिल्य के प्रताप को सर्वथा ग्रस्त लिया।

निचक्षु से प्रायः थीस पीढ़ी ब्राद सहस्रानोक श्रीर शतानीक परंतप हुये। उन्हीं दिनों भगों का जनपद मेरी बढ़ती हुई पूर्वी तीमाथी में लो गया। भगों का प्रसार अपने गणतन्त्र की तीमाथी को मिर्जायुर, से काफी पूर्व लोच हो गया था। शमशुमारगिरि जहाँ आज चुनार का किला है उनकी राजधानी थी। मैं पहले कह चुकी हूँ कि उनका गणतन्त्र मुझे प्रिय न था और लोकवादिता के उनके नारे मेरे राजसत्ताक खिदानों पर चोट करते थे। मैं जानती थी उनका परिहास मैं सह न सकूँगी और पढ़ोसी पर आकर्षण का दोष मुझे शिरोधार्य करना होगा। यो करना ही पड़ा। वास्तव में प्रसर की नीति पढ़ोसी की विनाश से ही आरम्भ होती है और प्रसर की नीति यजसत्ताक न्यासन ही अपना

सकता है। राज्यों का प्रसार दूसरों के विलेपन से होता है। अराजक शासन का दूसरों की स्वत्त्वात्त्वना से अस्तित्र एक दिन तुम्हें भगों के विश्वद अभियान करना ही पहा। उनका कृपक जनपद मेरी शिक्षित और राज विनीत तेनाश्रों का सानना न कर लका और मैं विजयी हुई। भगों की राजवानी शमशुमारगिरि मेरे प्राप्तीय शासक की राजधानी हुई। शतानीक परंतप, उदयन का गिता था।

उदयन का अन्म उत्ती दिन हुआ जिस दिन गोदम बुद चा, उसी ईसा पूर्व को सुडी शती में। बतन्त चा समागम था। दिशाएँ हँस रही थीं, तब पहलवित और लताएँ फूलों से सज रही थीं, जब द्वितिज से उठते हुए बाल रवि के साथ ही उदयन का अन्म हुआ। उसका नाम सूर्योदय से ही सार्वक हुआ। उसी उदयन के नाम के साथ मेरा निष्ठ संवंध है और यद्यपि अनेक राजा उसके पद्धते मेरे स्वामी हुए थे, अनेक उसके बाद मेरे स्वामी हुए। परन्तु राजवन्ती मैं उदयन से ही हुई। मेरा यह यिश्वास है कि जितना गौरव मुझे राजाश्रों की उदयनपूर्व परम्परा ने दिया उससे कहीं अधिक गौरव मुझे एकमात्र उदयन के समर्क से मिला। उदयन का इतिहास मेरा इतिहात है, मेरा इतिहास उदयन का। यदि मुझे अरने तारे ब्रौद्धन की अवधि उदयन के समर्क की एक घड़ी से बदल लेनी हो तो मैं घड़ी प्रसन्नता से बदल लूँगी।

उदयन और मेरी कथा से भारतीय साहित्य भरा पहा है। यद्यपि उच्चज्ञिनी ने एक बार मुझ पर आधिकार कर लिया था, परन्तु मेरे स्वामी का प्रनाव कुछ इतना गहरा था कि उच्चज्ञिनी के विश्व उसी की कथा कहते थे। कालिदास ने अरने मेघदूत में, ईर्ष ने अपनी प्रियदर्शिका में, मुख्य ने अपनी वासवदत्ता में, और अनेक कवि, नाटककारों ने अपनी कृतियों में उदयन और मेरा यशोगान किया। कालिदास के पूर्ववर्ती भास ने अरने अनेक नाटकों में मेरा रोमांचक इतिहास बार-बार पढ़ा।

स्वभ वासवदत्ता, प्रतिशायौगन्धरायण, प्रतिमा नाटक सब में मेरी कथा अनुग्राहित हुई। एक ही नाटककार अपनी अनेक कृतियों के बहुत तन्ह में मेरी कथा ही दुनता है। इसमें कुछ लास राज है।

परन्तु यह साहित्य का जाल है। इसकी बात यही छोड़ कर मैं अपनी इगति की कथा कहूँगी। उस जाल की मेरी और मन्यभारत की स्थिति समझने के लिए पहले मेरे पढ़ोल की राजनीतिक स्थिति समझ लेना नितान्त आवश्यक होगा। बुद्ध पूर्व का भारत प्रधानतः जनपदों का भारत था। सोलह महाजनपद जिनमें राज्य और गणतन्त्र दोनों शामिल थे देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक कीले हुए थे। उनमें से गन्धार और कम्बोजों के जनपद दूर पश्चिम में थे और अंगो, मागांवों के दूर पूर्व में। मैं भी उन्हीं सोलह जनपदों में से एक थी। कुरुपंचाल भेरे पश्चिमी पढ़ोसी थे और कोशल, काशी, पूर्वी। धरिन्धरे राज्यों ने जो अपनी प्रतर की नीति अपनाई तो छोटे-मोटे राज्य और गणतन्त्र उनकी चोट के सामने ठहर न सके। भगों का अस्तित्व मैंने मिटा दिया, कोशल ने काशी का।

कालान्तर में, श्रावः सौ वर्द बाद, बुद्ध के जीवन काल में गणतन्त्रों के अतिरिक्त चार पढ़ोसी राज्य विशेष प्रतिष्ठित हुए—मगध का हयेंक रेषुवाग राजकुल राजगृह में, कोशल का राजकुल भावस्ती में, अबन्ती का उच्चायिनी में और भरतों का मेरी नगरी कोशाम्बी में। इन जाये का परस्पर संघर्ष विशेषकर उन प्रतर के दिनों में स्वामापिक था। पहले तो जब तक इन राज्यों के पढ़ोत में गणतन्त्र कायम थे तब तक ये विशेषरूप ने एक दूसरे के विशद्द न बढ़े। परन्तु जब उनको दारी-त्रारी से इन्होंने दृष्टि लिया तब इनकी अपनी प्राचीरें परस्पर टकरा गईं। इनका एक दूसरे के विशद्द युद्ध में उत्तर पड़ना अनिवार्य था। कभी-कभी जब एक राजकुल किसी गणतन्त्र को अपना सभ्य और पुरस्कार समझता

या उसे दूसरे के स्वायत्त कर लेने पर वह उस विजेता राजकुत्र में उत्तर पढ़ता। इसी राजनीतिक परिस्थिति में मैं भी औरों के साथ संघर्ष के लिए कटिवद्द हुई। मेरी तीमायें तब प्राप्त: तीनों राजकुलों से निलंती थीं। काशी जो पहले ब्रह्मदत्त राजकुल की राजधानी थी और जिसे कोशल के प्रसेनजित के पिता महाकोशल ने इह प्रिया था, मेरी पूर्वों पढ़ोत्ती थी। परन्तु यद्यपि इस पर कानूनी अधिकार कोशल का या प्रसेनजित ने मगध के विभिन्नार के साथ अपनी बहिन कोशलदेवी के विवाह के अवसर पर उसे भगिनी के थोड़क में बहनोई को दे डाला था और वह के प्रदेश में काशी मगध के अधीन हो गई थी। इस प्रकार यह नगरी मगध और कोशल दोनों के प्रभाव में थी और इसी कारण दोनों राज्य मेरे पढ़ोसी भी थे। काशी के रूप में दोनों फी सोशायें मेरी पूर्वों सीमा से मिलती थीं। उपर उत्तर में भी स्वतन्त्र रूप से मेरी और कोशल की सीमायें समान थीं। काशी के विल्कुल पास गंगा पार दक्षिण में शनघुमारिगिरि पर जो मेरे पूर्वों प्रान्तीय शासक की राजधानी थी उससे नगध मेरी और दहुत स्नेह से छनी न देख पाता था और उसने भी, जब उदयन ने अरने पुत्र बोधी को शासक बना कर शनघुमारिगिरि मेना तब काशी में अपना प्रान्तीय शासक नियुक्त किया जिसका कर प्रदेश के अतिरिक्त दूसरा कार्य मेरी गति-विधि पर ढाठि रखनी थी। इम दोनों एक दूसरे पर अदैरी की चुक्की से नजर ढाले बैठे रहे।

पहले मैं उदयन की रानियों का जिक्र करूँ गी जो मेरे और उदयन के इतिहास के लिए आसाधारण लाभमयी प्रस्तुत करती है। उदयन का जीवन नितान्त विलासी था इसमें सन्देह नहीं। उसकी विलासिता भारतीय साहित्य में नियक्तिय विलासी जीवन का प्रतीक बन गई है। यथोपि उदयन का जीवन विलास के अतिरिक्त सर्वथा अकमठ न था परन्तु उसके जीवन का वह अवलंब अवश्य था। जिस प्रकार प्राचीन काल में

दुर्ध्वन्त विलासिता का प्रतीक हो गया है, जिस प्रकार उसके विलासाधिकरण से प्रवा की बहु-बेटियों का जीवन खतरे में पड़ गया था उसी प्रकार उद्यन का जीवन भी जब तब प्रवा के आस का कारण हो जाता था । परन्तु उसकी बात किर रही है । अभी केवल उसके अनेक विवाहों की और निर्देश करना सभीचीन होगा ।

उद्यन ने अनेक और विवाह किए थे । उसके विवाहों का कम निर्धित करना तो कठिन है परन्तु यथासाध्य उसका विवरण दे रही हूँ । उसके विवाह ब्राह्मण, द्वित्रिय, देश्य तीनों बण्डों में हुए थे । इस प्रकार के विवाह उस काल अज्ञव नहीं नाने जाते थे और इस तरह के असर्वार्थ विवाहों की सन्तति भी उदा औरत ही मानी जाती थी । सबै विविसार ने अपना एक विवाह ब्राह्मण कन्या से किया था । उद्यन ने भी एक विवाह ब्राह्मण कन्या ही से किया । वह माकन्दिका थी, कुरुक्षेत्र के एक ब्राह्मण की असामान्य मुन्दरी कन्या । अनेक राजन्य और धनी श्रेष्ठकुमार उसके कर के लिए लालायित थे । परन्तु इस ब्राह्मण के विचार में उनमें से कोई इन योग्य न था कि उसकी कन्या माकन्दिका को बर सके । कहते हैं एक धार बुद्ध ज्ञव उधर से लौट रहे थे ब्राह्मण उनसे पिला और उसने कन्या के सौन्दर्य का बखान कर तथागत ने उसे स्वीकार करने को प्रार्थना की । तथागत ने तत्काल सौन्दर्य की अनित्यता पर एक प्रवचन दे ब्राह्मण को विदा कर दिया । तब तक उद्यन की सौन्दर्योपासना देशव्यापी हो चुकी थी और ब्राह्मण ने अपनी कन्या को उसके समझ सा खदा किया । उद्यन उसका रूप देख चकित रह गया और तत्काल उठने उसका पाणिप्रहरण किया । पौर्व सौ नर्त-किर्ण उसकी सेवा में उसने नियुक्त की और कुछ काल उसके साथ उसने विलास में विताया । मेरे भगववशेष का परिचयमी दार माकन्दिका के उस उपवन की राह लोखता था जहाँ उद्यन ने राजकार्य मंत्रीवर

योगन्धरायण पर छोड़ काम सेवन किया था । माकन्दिका ब्राह्मण धर्म के प्रति अपनी भीक्षा और शौद्धपर्म के विशद् अपनी हुरिनिहनियों के लिए विश्वात है । उदयन की वद्धपर्म के प्रति उदासीनता और वैमनस्य का एक कारण उसको उत्कट विशाविता के अतिरिक्त माकन्दिका का यह ब्राह्मण दृष्टिकोण भी था ।

उदयन की दूरी पल्ली श्यामावती कौशाम्बी की ही थी । बहुतः रहने वाली तो वह अन्यप्र की थी, धनाक्ष सेठ की कन्या । परन्तु देश में अकाल पड़ने के कारण वह ने नगर में आ गई थी । मेरे नगर में तीन प्रसुत्र सेठ थे, बोधित, कुम्कुम, और.....। धोशित ने उसे असहाय पाकर अपनी कन्या अना ली थी । एक दिन प्रातःकाल वालायन से बाहर देखते उदयन की दृष्टि उसका पता लगाने के लिए भेजा । धोशित ने जब कन्या के प्रति राजा का प्रशाद सुना तब स्वर्य सब प्रकार से महिन्द्र फर उसे लेकर राजप्रसाद में पहुँचा । उदयन ने श्यामावती को पल्ली बना लिया । श्यामावती शौद्धपर्म के प्रति उतनी ही आहृष्ट थी, माकन्दिका जिहनी उत्तरे विरक । उसने ब्राह्मण हुए और उनके शिष्य पिंडोल भरद्वाज के उपदेश सुने और उदयन तथा उसका पुत्र धोशितकुमार जो वद्धपर्म की ओर आकृष्ट हुए, वह इसी श्यामावती का फल था ।

उदयन ने दो और विवाह किए, दोनों जातिय कुल में, एक मण्ड अजावशानु की कन्या और दर्शक की भगिनी पद्मावती से, दूसरा अबन्ती के चण्डप्रथोत महारेन की कथा बालबद्धता से । पद्मावती के साथ उसका विवाह सम्भवतः राजनीतिक सामने की आशा से हुआ । अबन्ती की महत्वाकांक्षिणी प्रशूति रुदा से मेरी शंका का कारण रही है और उदयन ने यह मुनासिब समझा कि 'चण्ड प्रथोत के विशद् वह उस

अजातशत्रु से वैवाहिक बन्धुत्व रथापित कर के जो स्वयं प्रयोत का शत्रु था और जो उसके प्रबल से स्वयं शक्ति रहता था । अजातशत्रु प्रियं-सार का पुत्र था । शिन्हितार और बुद्ध दोनों प्रावः उदयन की ही आयु के थे । बुद्ध और उदयन तो एक ही दिन उत्तम दुए में और मुद्द अजातशत्रु के शासन काल के आठवें वर्ष मरे जिससे प्रकट है कि उदयन और अजातशत्रु की आयु में भी काफी अन्तर था । मगधराज की कल्या पश्चाती तो आयु में उदयन से अत्यन्त छोटी हूई । परन्तु राजनीतिक विवाहों में जिस बात पर सबसे कम ध्यान दिया जाता था, वह थी आयु । उदयन को आयु के इस वैयम्य पर कोई आपत्ति न हुई और उसने जीवन विताने वाले उदयन में आयु का विशेष प्रश्न न था; जिसने भ्रमर की भाँति निरन्तर रस-शोषण ही अपने जीवन का इतिहास माना हो उसे आयु का बन्धन कहाँ तक अवश्य रह चक्कता है ।

उदयन का चौथा विवाह जैना पहले कह चुकी हूं उचितिनी की बासबदत्ता से हुआ और मन्महतः युवावस्था में ही । बासबदत्ता के साथ उसका विवाह अत्यन्त रोमांचक दृग से हुआ । उसकी अनन्त अनन्त कथाएँ बहुत काल पोछे तक भारत के गाँवों में कही जाती रहीं, उसके साहित्य में लिखी जाती रहीं । मेरे इतिहास का उस घटना से गहरा संबंध है क्योंकि एक बार मेरी नगरी उसी कारण प्रयोती का शिकार चन गई थी ।

उदयन में विजास के अतिरिक्त थे कमजोरियाँ और थी—एक बीणायादन, दूसरी गजप्रदृश । बीणायादन विजास का ही एक उद्दीपक अंग है । उसका उदयन का गुणतालिका में होना स्वाभाविक ही है परन्तु दाखियों का पकड़ना भी उसका एक व्युत्तन हो गया था । और दाधी पकड़ता भी वह बीणा छना कर ही था । जब उसके बादन से

गज प्रमत्त और विवश हो जाता तब वह पकड़ लिया जाता। जिस वीथा को उदयन द्वायी पकड़ने के काम में लाता उसका नाम हस्तिकान्त था और जिससे वह अरना मन बहलाता, अपने विलास का उद्दीपन करता उसका नाम धोपवती या धोपा था। हाथयों को पकड़ने वाली उसकी कमज़ोरी की ख्याति देश भर में भी और उज्जियनी के नृपति को भी उसका ज्ञान था। चरणप्रदोत महासेन अरुमान्य शक्ति का नरेश था। उसके नाम से ही उसकी सेना की महाकामता और उसकी प्रकृति की नियंत्रता लिद्द है। परन्तु उदयन के शौर्य पर उन दोनों में से होइ जब विजय न पा सके तब प्रद्योत ने एक नई मुक्ति सांची, उदयन की पहली कमज़ोरी से लान उठाने की। उसने वस्तु और अवन्ती की सीमा के घने बन ने एक काला विशाल द्वायी लकड़ी का बना कर छोड़ दिया। उसका संचालन बन से दोता या और उसमें साठ सैनिक छिप दकते थे। उले बन में भेज दोनों ओर के जंगलों में अपने सैनिक छिपा प्रद्योत ने जर द्वारा उदयन को कहशा भेजा कि वस्तु के महाकान्तार में एक विशाल वृथप मुसा है। राजा अपने आद्यविक अनुचरों के ताप हस्तिकान्त ले जा मुसा। कुछ काल बाद अनुचर तो पीछे छूट गए परन्तु उदयन घने बन में बुरता गया। अन्त में धुंधले प्रकाश ने उसने पेहो के नीचे वृथप को सूँह से गुंजलक भरते खड़े देखा। हस्तिकान्त के तारों पर उसकी डंगलियाँ स्वाभाविक जा पड़ी और उससे निसृत स्वर बातावरण को मत्त करने लगा। उस स्वर को गज ने भी मुना और उसके पाने एक ही स्थल पर बार बार गिर अपनी मादकता को सुचित करने लगे। परन्तु उदयन ने न जाना कि कृष्णम हस्तिउसका शत्रु होकर आया है, वंचक वैरी है और शीघ्र उसके अगे बढ़ते ही उसने अपना उदर खोल दिया। प्रद्योत के सैनिकों ने उदयन को ढाँच लिया। उदयन उज्जियनी का बन्दी हो गया और कुछ काल

तक प्रयोत की कारा में बन्द रहा। उसका मन्त्री योगन्धरायण उसकी रानियों से प्रण कर चुका था कि शीघ्र वह उदयन को कारा से मुक्त कर बत्त को लौटा लाएगा। परिव्राजक के मेश में मन्त्री प्रबर ने प्रयोत के हृदय में अपने लिए अदा उत्तरत की और कन्या को वीरायादन में प्रवीण तथा गजप्रहण के भन्न में दीक्षित करने के लिए उदयन को बासवदत्ता का गुरु बनाना उसने प्रयोत से स्वीकार करा लिया। परन्तु प्रयोत शंकित था। उसे पहले वह व्यापर न भाया जिर भी उसने तोना हावियों के पछड़ने का मन्द निल जाने पर सम्भवतः वह अपनी गजसेना को संख्या बढ़ा सके और उस बत्त का पराभव कर सके जिसकी सेना में हावियों की संख्या विशेष थी।

उदयन को यासवदत्ता के शिक्षण के लिए उसने नियुक्त तो कर लिया परन्तु दोनों को एक दूसरे से अनभिन्न रखने की उसने एक तदबीर की। तिदण पर्दे के पीछे से होता था। एक ओर उदयन वैड़ता दूसरी ओर बासवदत्ता। परन्तु उदयन से कहा गया कि पर्दे के पीछे कुल्यादाती वैड़ी है और बासवदत्ता को बताया गया कि उसका शिक्षक बामन है। परन्तु जब वीणा का नाद धीरेधीरे उत कोष से उठ कर दिग्नद में ज्वात होने लगता, तब यासवदत्ता के मन में प्रबल शंका आ उपस्थित होती। उसे देखने की इच्छा उसके मन में प्रबल हो उठती। परन्तु वह निता की आवाज से लाचार थी। जुग हो चैडी। एक दिन वह कुछ अन्यमनस्त होने के कारण यासवदत्ता ने पाठ ने गलती की तब उसे उदयन ने कुशाच्छ कहकर धिक्कारा। उस कुशाच्छ में उसकी कुरुपता का संकेत था। कुब्ज होकर उत्तर में बासवदत्ता ने भी उदयन को बीना कहा। किर एकाएक दोनों ने ज्ञां पदां इदाया, एक दूसरे को देख चकित रह गए। किर एक रात जब प्रयोत उज्जयिनी के बाप्त उदयन में खिनोद के लिए गया हुआ था, तब योगन्धरायण की सहायता से एक

विशाल गज पर चढ़ उदयन और वासवदत्ता वस्त की ओर भाग चले । प्रद्योत ने बब यह सुना तो उन्हें पकड़ने के लिए सैनिक दीड़ाए तब गज पर पीछे चढ़ उदयन के अनुचर ने स्वर्ण की नकुली खोल दी । सिक्के भनमन कर नीचे गिरे, सैनिक उन्हें उठाने में व्यत्त हुए और मेरा स्वामी उदयन अपनी ही नव विद्या को लिए मेरी प्राचीरों के पीछे आ पहुँचा । इस पलायन को मेरे कलाकारों ने मूलिका कलस पर मूर्ति किया । तब से लदियों पीछे तक लगातार उस पलायन के चित्र मिट्टी और पत्थर पर नेरे नगर में बनते रहे, वह क्या निरन्तर बाहित्य में कही जाती रही ।

उदयन ने वासवदत्ता का राजधानी में पहुँच पायिग्रहण किया और उससे उत्ते बोधी नाम का पुत्र उत्तम हुआ । यही बोधी तुद का शिष्य था और यही मेरे नगर में सदर्म के प्रचार के लिए प्रबलशील हुआ । वासवदत्ता के साथ विवाह हो जाने पर चश्मप्रदोत का रोप मेरे प्रति कुछ कम हो गया और उसने बजाय मेरी ओर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के मगध की ओर किया । अजातशत्रु को अपनी राजधानी राजगढ़ की ग्राचीरै दृढ़तर करानी पड़ी ।

उदयन के ये चार विवाह तो राज्य सम्बन्ध हुए परन्तु उसका अनौरत सम्बन्ध असंतुल्य नारियों से था । एक विवाह सम्भवतः और उसका हुआ था, परन्तु उसका रूप अर्थवैर होने के कारण वह विवाह नहीं हमेशा आता । अंग के राजा की विविधार ने एक शर गही लीन ली थी । अपने प्रभाव और शीर्य से उदयन ने उसे शीत बचाव कर गही लौटा दी । इसके बदले उसने उपकृत राजा की कन्या को ददा था । परन्तु जैसा ऊपर कह दुकी हूँ उदयन के अनौरत सम्बन्धों की संख्या गणनातीत थी । मेरे ग्रासादों में विशेषकर बहिरुपवनों में जब बंद विलात के लिए आता, और वह अवसर नित्य आते थे, तब उसके

चतुर्दिक शामिनियों की बड़ी संख्या होती। कामिनियाँ उसके बक्स से चिपटी रहतीं, उसकी कोइनियों से लड़की रहतीं और वह व्यसन हे टुम्हें पुरुष निवान्त उच्छृङ्खल हो उठता। उसके परिचारक, परिचारिकाँ, चेटन्विट निरन्तर अभुक्त व्यसन की खोज में घूमते रहते, सौन्दर्य की अभिप्राप्ति उनके लाभ का कारण बनती, उदयन के उद्दीपन और व्यसन का प्रमाण। नागरिकों के 'शुदान्त' दूधित हो उठे। माराडिलिकों के 'अवरोध' उर्वथा अवाचन, पिताओं का उदयन भय बन गया, पतियों का शशु, पतिप्रताएँ और सतियाँ उसके स्मरण का कीट अपने दृदय का 'खस्त' बनातीं। इस प्रकार उदयन का कामरन्जन होता। क्या आशचर्य कि उनकी अरोति से दुर्विनीति और व्यसन हे अतों की संख्या परम्परा बिना हो जाय!

उदयन के विज्ञात और बहुयिवाह के कारण यसका जनपद खतरे में पड़ गया। उसकी यक्षित धीरें-धीरे स्त्रीय होने लगी। राजकार्य अधिक्तर मन्त्री के हाथ में पढ़े रहने के कारण दिन-दिन उदयन से दूर होते गए और वह अपनी प्रजा के प्रति उदासीन होता गया। राजनीति के ही पड़ते ही पड़ोसी शत्रुओं ने लिर उठाया और यदि उदयन का कभी-कभी सचेत हो उठने वाला व्यक्तिगत पराक्रम रहते में न आ जाता तो मेरी ज्या गति होती, मैं नहीं कह सकती। इतना मुझे स्पष्ट याद है कि अनेक बार उसकी बहुरालियों में पारत्यरिक अनवन हो जाने के कारण उसके राजप्रापाद के अन्तःपुर विश्रां हो उठे थे। माकन्दिका और श्यामावती में तो वह सोए इतना बड़ा कि माकन्दिका ने श्यामावती के प्रापाद ने आग लगवा दी जिसमें वह अपने पाँच सी नर्तकियों के साथ जल मरी। नर्तकियों की याद आते मुझे उदयन के उन अपरिमित अवरोधों की बात याद आती है, जिनमें सर्वथा नारी राज्य हो गया था। विशिष्ट रानियों के अपने-अपने प्रापाद थे, अपनी-

अपनी नर्तकियाँ, अपनी-अपनी अनुचरियाँ। माकमिका, श्यामाषती, पद्मावती और यातुदत्ता चारों की अनुचरियों के अतिरिक्त, पाँच-पाँच सौ नर्तकियाँ थीं जो अरने दृत्य से उनका मनोरंजन करतीं। अनेक बार इन नर्तकियों में से चुनी हुई उद्यन का राग रंगन करतीं। इनके अतिरिक्त रानियों की अनेक तस्तिर्याँ, अनेक प्रसादिकाएँ और दासियाँ थीं। हजारों नारियों से भरा उद्यन का यह अवरोध अन्तःपुरों के इतिहास में अताधारण था।

यह तो हुई उद्यन के विजात की बात जिसमें उसने अपने पराये का अन्तर न छाला। प्रजा से अपहृत धन जिसे उसने पानी की तरह बहाया और जिस स्वेच्छा में सुरा और मुन्द्री की मात्रा में उठाने कभी कोई सीमा न ली ची। परन्तु उद्यन पुक्षार्थ से सर्वपा विहीन न था। नीति मत्ता तो उसमें थी ही और उस नीतिमता के कलशमला ही उसने उस काल के शक्तिमान दो राजकुलों से अग्रना वैशादिक तंत्रंद तथापित कर लिया था, परन्तु व्यक्तिगत पराक्रम की भी जैसा ऊपर कह चुकी है, उसने कमी न थी। अंग के राजा की सहायता तो उसने की ही थी, अनेक बार मलासेन प्रदोष को चरण और धूप भी उसके सामने समाप्त हो जाता। इकम के अतिरिक्त एक बार उसने कलिंग विजय करने के भी स्वप्न देखे थे और वद्यनि कलिंग की विजय वह न कर सका उस दिशा में उसके भय से एक बार आतंक जरूर छा गया था। युद के ताय उसका पहला सम्पन्न भी क्षमुतः उसके शीर्थ प्रदर्शन से ही हुआ था। जब वह अभियान के लिए प्रस्तुत सेना का मैदान में निरीद्देश फर रहा था तभी तथागत बिचीबर पहने उधर से निकले। उनका दर्शन उद्यन को अशुभ जान पड़ा। अमर्य विरक्ति का प्रतीक है, युद प्रवृति का और बिचीबर धारे अमर्य का अभियान के अवसर पर दर्शन निश्चय उठे प्राप्तव का दूचक जान पड़ा। उसने नाय छोड़ भी दिया जो अपना लब चूक

गया परन्तु फलस्वरूप प्रवाहित तथागत के उपदेश बचन अपने लक्ष से न चूके। तथागत ने अकारण रक्षपात और दूसरों की आजादी छीनने के उपकरण को अनुचित फहा और जिन राष्ट्रों में उन्होंने अपना यह सानियिक उपदेश कहा, उनका उद्दोष आज भी मेरे कानों में गूँज रहा है।

मुद्र के उपदेश से उद्यन स्तम्भित तो दस्काल हो गया, परन्तु उसे उद्दर्म में दीक्षित पत्तुओं द्वारा के शिष्य पिण्डोल भरद्वाज ने किया। पिण्डोल भरद्वाज ने दी नगर का आलय नागरिक था। अनेक बार अन्य विद्यार्थीठों से आकृष्ट होकर मेरे नागरिक बाहर जाते थे। अति प्राचीन काल में इसी प्रकार प्रांति कोदरविदि भी मेरे नगर से बाहर गया था और उसने छान जिताला में अपना नाम विस्थापित किया। पिण्डोल भी उसीकी भाँति शानार्जन के लिए बस्त से बाहर गया था और राजगृह में तथागत के प्रवचन सुन तथा में दीक्षित हो गया था।

उद्यन कानिधिय होने के कारण त्वानाविक ही विस्तृत और उद्दर्म का शत्रु था। अनेक बार उसने अपनों को अकारण कष्ट पहुँचाया था। एक बार तो उसके क्षेत्र से भाग कर एक श्रमण ने आवस्ती में शरण ली। पिण्डोल भरद्वाज को ही उसने कुछ कृप दृष्ट न दिया। एक बार बहिर्उद्यन में विलास करते उमय जब वह सो गया और शास के कानन में प्रवचन करते पिण्डोल को मुनने जब उसकी पत्नी इथामाचती अपनी अनुचरियों के साथ चली गई थी, तब उसने उस महाश्रमण के शरोर पर अरुंदति माटे बाँध दिये थे। किर भी धीर-धीर उद्यन का आकर्षण नुद के उपदेशों की ओर हुआ और उसने संघ की सेवा की।

संघ के प्रति अग्नी उदारता और मेरी नगरी में उद्दर्म के प्रचार के लिए धोकित, कुम्कुम आदि तत्कालीन सेठ भी प्रसिद्ध हो गए हैं। उन्होंने अपने-अपने नाम पर संघ के ठहरने के लिए आवास बनवाए और उपवन लगवाए और उन्हें संघ को दान कर दिया। उद्यन की

की मृत्यु के बाद शोपी ने भी देश में शैद-धर्म का प्रचुर प्रचार किया। शनशुनार्हीरि पर उसने कोचनद नाम का एक मुन्दर महल बनवाया था। उसे तुद के चरखरज से पवित्र करने के लिए उसने संघ और तयागत को आमान्वित किया।

उद्यन को छहानी निश्चय मेरे उत्कर्ष की कहानी है, परन्तु निःरुदेह मेरा इतिहाव उस बोधायादक विलासी दृश्यति तक हीमित नहीं। इत्तमें सन्देह नहीं कि उद्यन के शाद नेरी राजनीति पर्याप्त दुर्बल पह गई और प्रदोतों ने मुक्ते तत्काल जीत भी लिया। दो-तीन राजाश्रों ने भरतकुल की मानवर्यादा किसी प्रकार नेरी नगरी में संचित रखी। परन्तु अवन्ती के पालक ने शीघ्र अर्जुन के उत्त यशस्वी भरतकुल का अन्त कर दिया जिसका निचंधु ने मेरी भरा पर आरम्भ किया था। किर भी यद्यपि शीघ्र नेरी स्थवर्नता नन्दों की साम्राज्य-सीमा ने तना गई, उत्तका अस्तित्व कना रहा और हजार वर्ष तक भैं किसी रूप में साँत लेती रही।

महापद्मनन्द के सर्वकृत्रान्तक नीति ने मेरी स्वतन्त्रता की स्थिति गिरा दी और चन्द्रगुप्त मौर्य ने जब नन्दों का अन्त किया तब मैं भौंय साम्राज्य की भी चेरी जूनी। परन्तु मेरी स्थिति अन्य नगरियों की भाँति किर भी दयनीय न थी। मौर्यों के शासन का तब भी मैं एक केन्द्र थी और मेरे कौशाम्बी ग्रान्त का शासन मेरी नगरी में ही स्थित एक महानाग के हाथ में थी। अशोक ने शैद धर्म का सेवक होकर संघ येद्कों के विश्व जब अपना आदेश शासन के रूप में घोषित किया तब वह घोषणा स्तम्भ पर उत्कीण हो मेरे ही प्राकृत्य में लही तुर्द। पीछे जब मेरी स्थिति और भी डाँबाडोल हो गई तब वह स्तम्भ प्रयाग की शोभा कड़ाने लगा। इस्ती पूर्व दूसरी शती में पुष्यमित्र शुंग ने जब श्रीक बेनान्दर का पराभव कर संघों की वंचकता से लिम्ब हो जलन्धर तक के शैद विहार जला, डाले तब उसकी सगाई लपटों में मेरे विहार भी भस्म हुये थे।

शाल्की के श्रीक दिमित्रिय की पूर्वी सेना के अप्पच्च उसके बामाता मेनान्दर ने जब मगध में प्रवेश किया था, तब मेरे ही भग्न प्राचारों में यमुना के बट पर उसने डेरा डाला था और कुछ काल बाद मुझसे थोड़ी ही दूर पर पुण्यमित्र द्वारा वह परामृत भी दूधा था । वह कहानी मुझे भली भाँति याद है । भली भाँति याद है और न केवल वह इसलिए कि विदेशी विजयवाहिनी ने देश में प्रवेश किया था, बल्कि इसलिए भी कि उसी के दक्षत्वरूप जो देशव्यापी उपल-पुदल हुई उससे मैं स्वतन्त्र हो गई ।

शुंगों के बाद करव आए । करवों के बाद आनन्द-सातवाहन और तथ शक और कुवाय । शुंगों के पिछले राजा कमज़ोर हुए और पश्चिमी प्रान्तों पर उनकी पकड़ ढीली होते ही मैं स्वतन्त्र हो गई और मैने अपनी नगरी के आधार से आस-पास की भूमि पर एक स्वतन्त्र राज्य की प्रतिष्ठा की । करव तो कमज़ोर थे ही, आनन्द-सातवाहन भी दक्षिण की राजनीति में विरोप कँसे रहने के कारण उत्तर के प्रा तो पर अधिक ज्ञान न दे सके और मेरी आज्ञादी बनी रही । शकों का लूटी नेता लौहिताक्ष अग्नात जब मध्यदेश से पश्चिमी प्रान्तों को रीदता इस और से निकला तो मेरी भी वही गति हुई जो औरों की हुई—पर्यावरण नष्ट हो गए, प्रान्त विलुप्त गए, वर्णाभ्रम धर्म नष्ट हो गया—परन्तु मैने तथ रक्षा 'वैतिकीपृति' से की—इंत की नीति से जो आँधी आने पर सिर झुड़ा लेता है और उत्के निकल जाने पर यूर्बन्त उठ लड़ा होता है । इन दो तीव्रों में मेरा शासन मिश्रकुल के स्वतन्त्र वृगतियों के हाथ में रहा जिन्होंने मेरी सीमाओं में अपने नाम के सिक्के चलवाए, अभिलेख प्रोत्तित किए, प्रान दान दिए । कनिष्ठ ने जब पादलिपुष्ट से अश्वघोष को उहसा भरट लिया था तथ उसकी सेनाओं के समच्च भी मैने वही चैतिली नीति अपनाई । कुपायों के कमज़ोर हाथों से बाकाटों और नागों ने राजदण्ड छोड़ लिया, उनकी जांदों से

विरोध कर नागों के पावों से कुवाणी की पूर्वी राजधानी मधुरा तक न चलो । तब द्विर मैं अपनी स्वतन्त्रता लो ऐडो और मारी हुई गेंद की तरह कर्मी बाकाटकों के हाथ दे नागों के हाथ आती, कनी नागों के हाथ से कुवाणी के हाथ । अन्त में नागों ने पक्षावती से उठ कर कान्तिपुर से मधुरा तक की पृथ्वी अपने हाथ में कर ली और अश्वमेषों के यजन के बाद अनेक धार काशी तट पर भागीरथी में 'अवभृय' स्नान किए । काशी का दशास्वमेष घाट मेरे ही नाग स्वामियों की कीर्ति कथा को अभर करता है । नागों के समर्क से भी मैं कासी फूली-रुली और ययपि मैं उनकी एकनाम राजधानी न हो रुकी, निःरुन्देह मेरी नगरी उनका एक विशिष्ट केन्द्र किर भी बनी रही । एक एक अश्वमेष कर अनेक राजाओं ने अपने को धन्य माना और ऊचे संभो पर अपनी प्रशस्ति खुदवाई है परन्तु मेरे स्वामियों ने खड़ग से जो अपनी कीर्ति कथा लिखी, वह शौर्य के ढेव में प्रतीक बन गई । उन्होंने एक नहीं, दस-दस अश्वमेष किए ।

परन्तु नागराजा भी अपनी शक्ति सर्वथा के लिए कायम न रख सके । कौन रख सका है ! मगव में इस काल के कुछ ही पहले तीसरी सदी ईस्त्री के आरम्भ में ही एक शक्तिं उठ चली थी । बाह्यव में उनका आरम्भ प्रयाग के गंगाधरी प्रदेश और साकेत से ही हुआ था, परन्तु मेरी सीमाएँ किर भी अद्वृती रही थीं । चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिङ्घियों के साथ जब अपना विवाह संवंध किया, तभी मुझे अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता के संवंध में भय उत्पन्न हो चला था और वह भय उचित ही था । चन्द्र गुप्त के बेटे लम्बदगुप्त ने साम्राज्य निर्माण पर कमर कसी । दिग्बिजय और अश्वमेष किया, आर्यावर्त के राजाओं को उत्ताह कौका, गणराज्यों को नष्ट भग्न कर दिया, आरविन्द राज्यों को संश्रस्त कर दिया, दक्षिणाप प के राजाओं की लहरों छोन ली, अन्तों को कर, उपहार आदि देने को

मजबूर किया—मैं भी उसी के बढ़ते साम्राज्य में समा गई। आर्योंवर्त के राजाओं को उत्तापि फेंकने की सुनुदगुप्त ने शरण ली थी। मैं आर्योंवर्त में उसकी पहली परिचयी पढ़ोत्तिन थी।

परन्तु भिट्टे भिट्टे भी मैंने अपनी शक्ति का परिचय दिया। तब नाग राजाओं के कम से कम तीन स्वतंत्र राजकुल थे—श्रव्युत, नामसेन और गणपतिनाग। तीनों ने एक साथ उस आजादी के दुश्मन साम्राज्यलालुप सुनुदगुप्त को यमुना के किनारे भेरे ही प्राकृष्ण में समिलित शक्ति से राह रोकी। युद्ध जमकर हुआ। यमुना की धारा रक्त से लाल हो गई। भूमि लहू से तिक्त। अन्त में संघा होते होते शूर्य के साथ ही नागों की शक्ति भी अस्त हो गई। परन्तु अपनी खोती आजादी की रक्षा में तीनों नृगति उस एक दिन के युद्ध में ही सेत आए। सुनुदगुप्त ने अपनी प्रशस्ति में बड़े गर्व से लिखवाया कि तीनों नाग राजाओं का उसने एक ही दिन के युद्ध में वध किया। निश्चय यह तस्वीर में शेर पर चढ़े आदमी की चात थी। काश में उस युद्ध का रक्तरंजित इतिहास अपने दरवारी-श्रव्युत रवि से लिखवा रक्ती ! और मैं लिखदाती हि स्वतंत्रता की रक्षा में नागराजों ने प्राण तक का भूल्य अधिक न समझा और वे इति हो गए।

और सुनुदगुप्त की यह रक्तरंजित प्रशस्ति अशोक के इह चिरस्मरणीय पूत उपदेश को बहन करने वाले स्तम्भ पर खुदी जिसमें उसने राज्ञि और दया के संवाद छुदवाए थे। अब से मेरा इतिहास फिर दीन हो जाता। गुप्तों के साम्राज्य में मैं यद्यपि ग्रान्तीय शासन का केन्द्र दूर्दिल भी दावता तो दावता ही है। आजादी खांकर मैं सुनी न रह सकी। पर्वतीय दावता के ग्रायः तुलीय चरण तक मैं गुप्तों के अधिकार में रही। सुनुदगुप्त ने दूसों की प्रब्लेम आँधी से देश की रक्षा के लिए जो तप किया उसे भी मैंने देखा। परन्तु यह आँधी साधारण न थी। रोमन

साम्राज्य की उसने कमर तोड़ दी थी, मध्यएशिया के अनन्त राज्य उसकी चोट से नष्ट भ्रष्ट हो भिट्ठी में मिल गए थे । उत अँधी को रोकना स्कन्द गुप्त के से सामरिक अथवा लड़खड़ातं गुप्त साम्राज्य के दश की बात न थी । शकारि स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के बाद ही जिस विलास ने कुमार गुप्त के रूप में मगध की गढ़ी का आरोदण किया था, वह वस्तुतः गुप्त साम्राज्य के लिए विष का पूँट था । कुमारगुप्त ने विलास में मेरे उद्ययन को अपना हृष्टान्त बनाया परन्तु उसमें न तो उद्ययन का शोर्य था न उसको युद्ध-मता थी, न उसकी शिष्टता थी ।

गुप्त साम्राज्य दूरों की अनवरत चांदी से लहरदा कर गिर पड़ा और यद्यपि बालादित्य ने यशांदूर्मन के सदयोग में स्कन्दगुप्त के बाद दूरों का परावण किया वह उनकी गति न रोक सका । दूरों ने जनपद उजाह डाले । मैं भी एक बार घिर उनकी चोट से उजाह गई । परन्तु वह चोट सबकी समान चोट थी, मैंने भी उसे चुरचा लह लिया ।

दूरों के पहले नेरा एक सांकृतिक जीवन था । कला से मरिदत, संगीत से निनादित, दर्शन से जागरूक । दर्शन की दिशा में वां गुप्त काल में मैंने विशेष उच्चति की । बालादित्य समुद्रगुप्त का गुरु, प्रशारद गोदाराशनिक बमुद्रगुप्त जो बाद में अयोध्या में रहने लगा था पहले अपना चिन्तन उसने मेरे ही नगर में आरम्भ किया था और वद्यनि वह विशेषतः गुरुओं की उस दूसरी राजधानी अयोध्या में ही रहता था वही के शोरगुल से भाग अक्षर वह मेरे प्रशान्त धोयिताराम में जमुना के किनारे प्रायः शरण लेता था । बनुअन्ध के भाई असंग ने भी अपने विल्यात बौद्ध विचार योगाचार के सूत्र यहीं प्रथित किए । इस नए सम्प्रदाय ने बौद्धों के दार्शनिक चिन्तन चेत्र में तल्काल अपना स्थान बना दिया और आने वाली सदियों में उसका निरन्तर प्रभाव बढ़ता गया । उस योगाचार का आरंभ जैव पहले कई तुकी हूँ मेरे धोयिताराम में ही हुआ, उस धोयिता-

राम में जिसे चौथी सदी ईस्ती के अन्त में कालान ने देखा था और किर सातवीं सदी में हेनर्विंग ने देखा । परन्तु हूणों ने दर्ढ़न चिन्तन की वह शृंखला तोड़ दी थी, कला के बेमण्डन-साधन विशेष दिए । प्रदत्त-युक्ति का निनाद बन्द कर दिया था ।

हूणों के बाद मौखियों ने कन्नोज पर कब्ज़ा कर लिया था और उसके साथ ही मैं भी उनके अधिकार में आई । कन्नोज के मौखियों और मगध के पिछले गुप्तों में दिनरात कशमकश चलती रही और अन्त में गोद और मालवा के सम्मिलित योग ने मौखियी कुल का अन्त कर दिया तब कन्नोज का स्वामी यानेश्वर का राजा हर्षवर्धन हुआ । हर्षवर्धन के शासन काल में मेरी विशेष उच्चति न हुई और मैं चुरचार अपने अतीत के अर्कांकड़े संभालती और्ध्वी पढ़ी रही । हर्ष की मृत्यु के बाद देश में किर उथल-पुथल भवी और शक्ति का एक नया खरूर राजपूतने की मरम्भनि में लहा हो चला । अनेक जातियाँ, देशी-विदेशी संघर्ष और सम्मिश्रण से डठ लही हुई थी, जिनका देश की राजनीति और संत्कृति पर गहरा प्रभाव पहना अनिवार्य था ।

मेरा संवैष कन्नोज के साथ अब कुछ स्थाई था हो चला था और जैसे ऐसे उस नगर के भास्य पलटते वैसे ही ऐसे मेरे भी पलटने लगे । हम दोनों का स्थानिनी-चेरी का संबंध हो गया था और मैं अब स्थानिनी के दुःख से दुःखी और मुख से मुखी होने लगी । आठवीं सदी में कन्नोज में एक नई शक्ति ने जन्म लिया, और यद्यपि वह वहाँ किर स्थाई न हो सकी । उसने मध्यदेश की राजनीति पर प्रभाव काफी डाला । अतात कुल यत्ता यशोवर्मन् जिसने वहाँ अपनी शक्ति का साका चलाया विशेष प्रवापी हुआ और मैं भी अपने स्वामी का यशोगान करने लगी । यशोवर्मन् का नाम संस्कृत साहित्य में भी त्परणीय हो गया क्योंकि उसका समर्क प्रतिद्वंद्व नाटककार भवभूति से था । भवभूति ने मनस्तिता

और मर्यादा की जो छाप अपने नाटकों पर छोड़ी है वह साहित्य में अनुभम है। उत्तर रामचरित और मालतीमाधव उच्चकोटि की रचनाएँ हैं विशेषकर मालतीमाधव जितका मनस्वी उदगार छठिन परिस्थितियों में पढ़े अनेक साहित्यिकों का शक्ति सम्भल हो गया है। समालोचकों की चाट से व्यष्टि भवभूति जब इह थात से दुखी हुआ कि उसकी इतियों से मरण नहीं है तब भी उसने धोरता न लोई और उसने लिखा—“उनके लिए यह प्रयत्न नहीं जो समझ पाते वरन् उनके लिए है जो आगे आँगे क्योंकि काल की अवधि नहीं और पृथ्वी विपुल है। कभी तो आखिर उमानपर्मा उत्तम होकर उन्हें सन्मेंगे—‘उत्तरस्यते ममद्वि कोटि उमानपर्मा कालो द्वं निरवधि विपुला च पृथ्वी । भवभूति भारतीय साहित्याकाश का वह नहज है जो दर्ढारी संरक्षा में रहकर भी अपना व्यक्तित्व न भूला।

राजनीति वह शिला है, जिसे सारे संस्कृति, सारी भाषुकता टकरा कर चूर चूर हो जाती है। यशोवर्मा के शासन काल में ही कबीज को तुरे दिन देखने पढ़े। काशमीर के दिग्बिजयी ललितादित्य मुक्तापीढ़ ने कभोज पर आक्रमण कर उसे जीत लिया फिर यशोवर्मा और भवभूति दोनों ही लुत हो गए। शीघ्र सिर भी इसी कभोज में आयुषो का राज-कुल प्रतिष्ठित हुआ परन्तु इस कुल के तीनों दूपती चक्रायुध, इन्द्रायुध, चक्रायुध दुर्बल ये और उनके होते भी उनकी राजनीति का चक्र औरों ने प्रवर्तित किया। धर्मपाल ने चक्रायुध को गही से उतार इन्द्रायुध को छिड़ाया। नागभट्ट ने इन्द्रायुध से गही ढीन चक्रायुध को दे दी। इसी उथन पुरुष में कबीज के मुर्सराते लेतों पर राष्ट्रकूट टिहीरत वी भाँति टूट पढ़े। राष्ट्रकूट नृगति ने अपने कलचुरी सामन्त की सहायता से प्रयाग तक का प्रदेश लूँ लूटा और धर्मपाल को दो आव छोड़ भैगल भागने पर मज़बूर किया। इस लूट में मेरी भी कुछ कम अधोगति न हुई,

क्योंकि दक्षिण से आनेवाला मार्ग मेरी नगरी से ही होकर गुजरता था और राष्ट्रकूटों की सेनाएँ दोनों ओर से दूधर से ही गई थीं।

फिर मैं गुर्जर प्रतिहारों के अधिकार में आई और जब नागभद्र द्वितीय ने उस उथल पुथल में कबीज में अपने कुल की राजनीतिक परम्परा कायन की तश्वर में उसके प्रान्त का शासन केन्द्र बनी। प्रतिहारों का अधिकार कबीज पर प्रायः दो सौ वर्षों तक दबा रहा और मैं लगातार उनके अधिकार में फूलती फूलती रही। यद्यपि उनके पिछ्ले दृश्यतयों के दुर्शल सहा के फूलस्वरूप सुके अनेक बार अपमानित भी होना पड़ा। नागभद्र, मिदिरभोज, महेन्द्रपाल प्रथम, महीपाल, महेन्द्रपाल द्वितीय थारी थारी से मेरे स्वामी हुए और यद्यपि धीरेधीरे उनकी शक्ति चन्देल राजकुल ल्लिण करता गया फिर भी मेरी स्थिति में विरोध अन्तर न पड़ा और यद्यपि मैं स्वयं राजधानी न थी, मेरा प्रभाव था, मेरी प्रतिष्ठा थी।

प्रिलोचन पाल के समय मेरी स्थिति फिर बिगड़ चली। यद्यपि वह विरोधतः मेरे कारण नहीं कबीज के दुर्भाग्य से। ग्यारहवीं सदी, का प्रथम चरण था। धन पिंडासु और लुटेरा महमूद गजनवी इस्लाम के नाम पर हिन्दुस्तान पर चोटें करने लगा था। इस्लाम के भाएँ के नीचे तब मध्य एशिया के खँजार डॉकू और नंगे भी लड़े थे। शाहियों पर, जो कभी शक कुण्डल थे और अब ब्राह्मण-ज्ञानिय होकर जिन्हेंनि सदियों भरत के सिंहदार की रक्षा की थी, मुदुक्षितगीन और उसके बेटे महमूद ने भयंकर चोटें की। जवपाल और आनन्दपाल दूट गए, शाही उत्तरांग गए और महमूद प्रतिवर्ष मध्यदेश के ललिहानों और पन्दिरों पर दूटने लगा। प्रिलोचन पाल ने कभी मेरी नगरी में दर्जार कर गाँव दान किए थे, अग्निलेख लिखाया थे, अब उसे विकट महमूद का सामना करना पड़ा। महमूद के विरद्ध मैशान में तो वह बहर

उत्तर परन्तु अप्पगानों के हमले से घबराकर यह भागा। महमूद ने कन्नौज का लौटा और उसके मन्दिरों के कलश कैंगूर अमीन पर ढाला दिए। नंतर कलश कौरों भी अद्वृते न बचे और इस्लाम की सेनाओं ने उनको भी तहस-नहस कर ढाला। मैं यह लूट गई।

त्रिलोचन पाल का भागना चन्देलों को असत्ता हो गया था और यद्यपि वे स्वयं महमूद का सामना न कर सके ये, उसके राजा गण्ड ने अपने मुथराज विश्वापर को कन्नौज भेज त्रिलोचनपाल को प्रदान ढाला और टुके के बेटे राज्यपाल को गढ़ी दी। महमूद ने जब यह सुना तब यह पिर लौटा और राज्यपाल को मार उसने चन्देलों की भी खबर ली। मेरी रियति कन्नौज की राजनीति ही ही भाँति डौवाडोल होती और यन्त्री दिग्दृती रही। प्रतिहारों का अन्तिम राजा यशोपाल या जिसने त्रिलोचनपाल की ही भाँति मेरी नगरी में दर्शार छिया और मुझ पर अपना अधिकार बनाए रहा। उसके साथ ही कन्नौज से प्रतिहारों की सत्ता उठ गई और कुछ काल के लिए उस शाहित्विक वातावरण की भी, जिसमें भवमूति और राजशेषर फले फूले ये प्रतिहारों के बाद कन्नौज की रियति अस्त्वन्त दृष्टिनीय हो गई। चारों ओर की शक्तियों की लूट ल्सोट से यह तिलमिला उठा। पाल और राष्ट्रकूट, चन्देल और कलचुरी बारी शारी से उसे लूटते रहे और मैं भी उसी की भाँति चोट पर चोट सहती रही।

इस उपल पुष्ट का अन्त उस चन्द्रसेन ने किया जिसने कन्नौज के नए गढ़वाल राजकुल की नीव ढाली। उसने अनेक देश जीते और आस पास के सारे प्रदेश अपने हाथ में कर लिए। कन्नौज में नई राजित जन चली और उसके साथ ही मैं भी कान्तिमती हुई। गोविन्द चन्द्र इस कुल में विशेष कर्मठ हुआ। युवराज की ही रियति

में उसने मसूर तृतीय के भेजे हाजिर की सेना को इराकर तितर वितर कर दिया था और अब जब वह गही पर पैड़ा तब उसने गया तक के प्रदेश जीत काशी को अपनी दूसरी राजधानी बनाया। दक्षिण के चालुक्य, गुजरात और कर्मीर के राजा उसका लोहा मानते और उससे मित्रता का दम भरते थे। येरा गौरव फिर उस महाकाय रूपति ने यमुना के किनारे प्रतिष्ठित किया, परन्तु उसके पोते जयचन्द्र के जीवनकाल में फिर कन्नौज की लहौपी ने पक्षटा खाया और साथ ही मैंने भी।

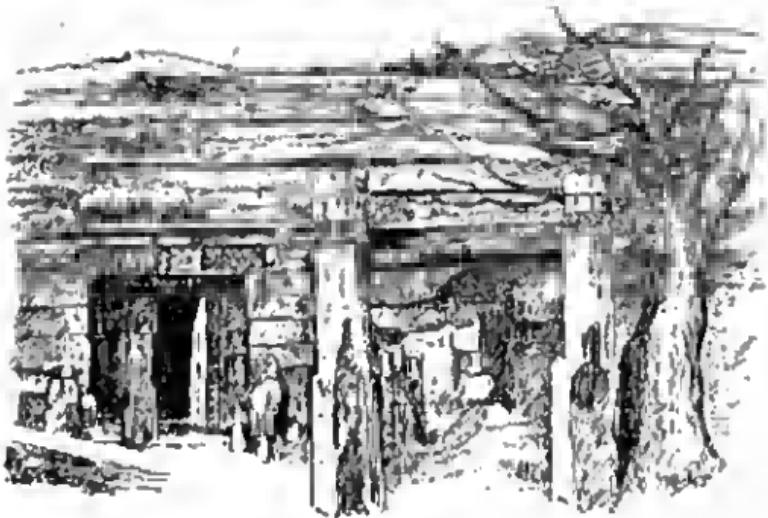
गोर के सुखे पहाड़ों में एक नए पठान राजकुल ने प्रतिष्ठा पाई थी और उसके मुत्तान शाश्वतुदीन गांवी ने हिन्दुस्तान के लहलहाते मैदानों को जीतने का कौल किया। पहली बार का उसका हमला इयर्य गया। दिल्ली के चौहान राजा पुष्टीराज ने अन्य हिन्दू राजाओं की मदद से उसे धूल चढ़ा दी। उस जीत में कन्नौज का भी हाथ था। परन्तु जब तक शाश्वतुदीन फिर से हेना तैयार कर हिन्दुस्तान लौटा, जनाना बदल गया था। परस्पर ईर्भा और फूट ने हिन्दुस्तान की राजनीति की काया पलट दी थी और उस रियति को डॉक्याडोल करने में पुष्टीराज का विशेष हाथ था। जयचन्द्र सम्माटपदीय राजा था। अनेक देश उसने जीते थे और अपनी जीतों के उपलब्ध में उसने अस्वरूप भी किया था। उज्जिनी से गुजरात तक के राजा उसका लोहा मानते थे। दिल्ली अभी हाल तक कन्नौज की चेती रही थी और थोड़े ही दिन पहले बीसलदेव ने उसे जयचन्द्र के पिता से क्षमा लिया था। चौहानों को जयचन्द्र अपना मारहलिक मानता था और उसका ऐसा रहना कुछ देना भी न था। पुष्टीराज वीर अवश्य था पर विलासी भी असाधारण था। देश में उसके अनेक युद्धों का कारण उसकी अप्रदिम विलासिता थी। आज उसने इस राजकुल की बेटी छीनी, कल

उसकी । वही पृथ्वीराज की राजनीति थी । जयचन्द की बेटी संसुक्ता के हरण में उसे कन्ध, कैमास के से बीरी की बलि देनी पढ़ी, परन्तु अपनी कामदासना की अनिनृति के लिए उस चौहान गुरति ने कभी कोई मूल्य न समझा । नतीजा यह हुआ कि शाहबुदीन की दूसरी चांट ने उसके पौरव पर दाग लगा दिया । 'संसुक्ती' के किनारे जब वह हाथी से उत्तर कर पोके पर भागा जा रहा था, पठानों ने उसे पकड़ कर 'जहन्तुम' रक्षीद कर दिया । निश्चय जयचन्द ने अबकी उसकी मदद न की थी, पर मैं पूछती हूँ कौन रिता अपनी बेटी भगा ले जाने वाले जबरदस्ती बने दामाद के लिए अपना खून बहाएगा ।

कल्लौज पर बूंधे ही साल गोरी आ घमका और मुझे इस बात के कहते गर्व होता है कि जयचन्द ने पृथ्वीराज की भाँति उसे बीठ न दिखाई और वह अस्ती वर्ष के बुदाये में अपनी मुझी भर जवानों के साथ मुझसे योगी ही दूर पर चन्दावर के मैदान में आ उठवा । जिस बहादुरी का उसने बहाँ प्रदर्शन किया उसकी प्रशंसा मुसलमान तवारीख नवीसों ने मुक्कलक्षण से की । मैं अपनी डावाडोल, शक्ति स्थिति से उल्काशित हो उस बुद के मैदान की ओर देखती रही क्योंकि उसी के परिणाम पर मेरा बुध भला भी निर्भर था । यद्यपि उस परिणाम को मैं पहले से ही जानती थी । जयचन्द की उनके शर्के लड़ाकों का रक्त यमुना की धारा में बहकर मेरे तट पर भी पहुँचा और मेरी प्राचीन नगरी भी उसके पायन सर्व से पवित्र हुई । तब के बाद इधर के प्रदेशों पर भी मुसलमान काबिज हुए ।

अभी सौ वर्ष पहले तक मैं जागती सोती किर भी जीती रही हूँ पर जीरे जीरे मेरी संहा मेरे नगर के भवनों के साथ ही सो जुड़ी है, सदा के लिए समाधिस्थ हो जुकी है । मीलों तक फैले मेरे परकोटे उत्त प्राचीन

इतिहास की कहानी कहते हैं जिनके ताने गाने मेरे छम्बं राजाओं और पिरमत दार्शनिकों ने बुने थे। उन एकोटों के लेख की धूल में, उन राजाओं और रानियों की रज भी भिली है, जो भारतीय इतिहास में चिलास के प्रतीक बन गए। वस्तीं की अम्लान पिंड, भरतों की कान्तिमती लद्दी मैं आज कोसम और गढ़वा के टीलों में दबी चुपचाप यमुना के प्रवाह को देख रही हैं, जितको उदासीनता में कभी कोई अन्दर न पढ़ा।



वैशाली

मैं वैशाली हूँ—जनशक्ति का गद। जो लोग उत्तर चिहार के तिर-
दूत प्रदेश में मुग्जपुर के बिले में बसाढ़ गांव देखते हैं, उनको इस
भाव का गुमान तक नहीं कि उसकी मिट्टी में वे विभूतियाँ सोई हैं
जिन्होंने कभी मानवता का नैतृत्य किया था, राजवत्ता के जो आजीवन
विद्रोह रहे और जिन्होंने आमृत जन श्वल को पीछे कर राजाओं की
महत्वाकांक्षाओं से सदियों लोहा लिया ।

जन-स्वातन्त्र्य की शास्त्र प्रहरी मुझ वैशाली ने जनसत्ता का पाया
हजार वर्षों तक नैतृत्य किया और जनसत्ता राष्ट्रों की उत्तर शृंखला में
आपर्णी रही जिसमें पावा के भल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय, रामग्राम के
कोलिय और कमिलवस्तु के शास्त्र इतिहास में विल्यात हो गए हैं । इन
गणतन्त्रों ने सम्रय समय पर भारतीय इतिहास को उसकी अत धारण

कॉचाइयों दी है—मैने वर्दमान भद्रवीर को रिप्पलिवन में चन्द्रगुप्त मौर्य और कश्मिरवस्तु में तथागत बुद्ध को बसाद के भगवरोप उन दिनों की याद दिलाते हैं जब मैं समाधिस्थ दुर्ई थी, परन्तु तथ से पूर्व का इतिहार कुछ ऐसा है जहाँ सदियों तक राजनीतिक प्रयत्न केन्द्रित रहे हैं। मेरा आरंभ प्रायः नवीं सदी इसकी पूर्य का है। नवीं सदी इसकी पूर्व में मेरे पढ़ोत्त की वह नमरी कीर्तिमती थी जिसका दैभव मैने शीघ्र छीन लिया, उस निधिला का जो विदेहों की राजधानी थी और जिसके अवरोध अब भी हिमालय की तराई में जनकपुर में सोये रहे हैं।

ऐसा नहीं कि मेरा आरंभ सर्वथा तभी हुआ हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि तब और तब के पहले, बहुत पहले, भी मैं सर्वथा अनजानी न थी, पर हाँ, निधिला के सामने अकिञ्चन, उसकी चेरी अवश्य थी। यैसे तो मैं तब भी निर्बन्ध न थी जब इस भू भाग पर आयों का तल न था, जब इस देश के प्राकृत निवासी अपने अराजक सत्ता के अनुकूल सुखी जीवन चिताते थे। बल्उतः यही कारण है कि मैं सदियों के दौरान में अपनी अन सत्ता प्रवृत्ति की परंपरा कायम रख सकी। मैने पूर्व में कोशल, काशी और मगध में आयों के पहले बल्ले गढ़ते देखे थे, मैने कोशल ने इत्ताकुओं को अपना आधार स्थापित करते देखा, बहुरतों को काशी में और मगध में बहिद्यों को। फिर कोशल की ओर से जन सत्ता जनमदों को बाँध सदानीरा को धार कर अपने विस्तृत आँगन में आयों को मैने उत्तरते देखा। तब वे इधर के रहने वालों को 'अनासा', 'मध्वाचा', 'अदेवयु', 'अवज्ञन', 'ब्रात्य', आदि कहते थे और इधर के रहने वाले उनको गाली सनक गाली का उत्तर गाली से देते थे। कनी आयों ने अंगो-मगधों को अपावन देश कहा था। अपनी व्याधियों को मन्त्र द्वारा उधर मेजाने के उपकरण किए थे, परन्तु शीघ्र लान की भावना से प्रेरित हो उन्होंने उसी अपावन पूर्व में अपने बीसियों केन्द्र स्थापित

किए, स्थान विशेष की महत्ता किस प्रकार अर्थ और पात्र पर केन्द्रित है यह मैंने तभी देखा। काशी, अयोध्या, गिरिजा और चमा में धीरे धीरे इनकी लावनियाँ और फिर विहृत समृद्ध राज्यों की राजधानियाँ स्थापित हुईं।

उन्हीं दिनों विदेहों का कुल भी मिथिला में स्थापित हुआ। विदेहों के एक के बाद एक दो कुल कालान्तर में प्रतिष्ठित हुए जिनको उठाते, पनपते, समृद्ध होते और अन्त में विघ्नत होते मैंने देखा। तब बैसा मैं पहले कर चुकी हूँ, अविच्छिन यी मिथिला की चेरी परन्तु इसीलिए मिथिला के अँगन में घटने वाली घटनाएँ भी मैं निरन्तर देखती रही। पहला कुल उन विदेहों का था जिन्हें आरंभ में जनो या क्षीलाई दी का आपना जीवन विताया था। इन्हाँकुछों के अयोध्या में प्रतिष्ठित हो जाने के काफी बाद लक्ष्मी का विदेह नामक पहला प्रख्यात और लड़ाका क्षीला सदानीरा को पार कर इधर के मेदानों में उतरा था और उसने आपात की सारी भूमि पर अपनी विजय के झल्डे लड़े किये। उनमें सद्दे प्रतापी सीरध्वज जनक का कुल था। पहले ही वह कुल भी अन्य क्षीलों की भौति एक क्षीला मात्र था। विदेह उस क्षीलों का नाम था और उसका प्रमुख कुल जो सीरध्वज था केवल मात्र उसका मुक्तिया था। परन्तु रीप्र नये देरा में पहुँच कर नयी समृद्धि कीर्ति, ख्याति और शक्ति अभित कर उस कुल ने जनमात्र की सीमावें, स्तीकार न की। पास ऐसे जन भी न थे जो इस जन की व्यापक सत्ता के अनुकरदायी निरंकुश शासन के यिन्द्र आवाज उठाने या कशमकश करते। फिर ऐसा करना सभव इसलिए भी न था कि स्वयं आयों में अपनी दिजयों के फलस्वरूप अशतक अनेक जनभद्र राज्य कायम हो चुके थे—सुदूरज के कठि में भरतों का, कुरुक्षेत्र में कुरुओं का, पंचाल में पंचालों का, जो दोनों भरतों की ही शासा थे, और कोशल में

एकाकुओं का । जनता ने इस बदते हुए रोग का निदान करते ही पहले उसके उपचार का प्रयत्न किया, परन्तु शीघ्र उसके असाध्य होते ही यह चुप हो बैठ रही । जन प्रभृति का इस प्रकार हाय पर हाय धर बैठ रहना ही राजसत्ताक प्रभृति को प्रभय देता है और वही हुआ । सीरप्पज के पितामह ने विदेशी में प्रमुख कुल का अवश्यी होने के कारण पहले तो विदेश नाम गोत्र के अर्थ में खोकार किया फिर और भीरे उसके पिता ने उसे अग्रना विश्व बना डाला । सीरप्पज का पिता और स्वयं वह अब विदेशी के केवल अग्रणी न थे बरन् उनके राजा भी थे । अदलते हुए इतिहास के तथ्य बदलती हुई इस शक्ति काया को मैने देखा परन्तु ऐसा लगा कि यह कान्ति अपनी नहीं विदेशियों—पिनातीयों की है । और मुझे चुप ही रहना चाहिए, मैं चुप ही रहा ।

सीरप्पज जनक ने अपनी व्याति और गौरव अदाने के लिए आर्य जगत के प्रमुख राजकुल अयोध्या के एकाकुओं से अग्रना वैषादिक सम्बन्ध स्थापित किया और इस अर्थ उसने एक प्रदा-पटाटोर लहा किया । एक विशाल धनुष सामने रख उसने अपनी कन्या जानकी का स्वधंवर किया जिसमें दूर दूर के राजा निमन्त्रित हुए । जानकी कौन थी, वह जाहे एकाकुओं का जाना न हो पर मैं उसे जानती हूँ । जानकी सीता थी । जोती हुई भूमि की हराई से निकली सीता जो बहुतः जनक की कन्या न थी इस पृथ्वी की कन्या थी, निधिला की कन्या और आगे जिसे जाने वाले महाकाव्यों में जाहे जिस प्रकार सीता का सम्बन्ध जनक के कुल से जोड़ा गया हो । संकेत का काला करने वाले काव्यकार भी इस बात से इनकार न कर सके कि पतिष्ठरा निधिला की भूमि की जायी थी । जो हो दशरथ तनय राम ने उस धनुष की प्रसवा चढ़ाई । उस धनुष की प्रत्यजा चढ़ा कर सीता की ज्ञाहा, जिसे जनक ने जामाता के शति-न्यान के रूप में स्वधंवर के प्राहृष्ट में रखा था ।

सीरख्ब जनक का वह राजकुल दो उदियों में अनन्त की गोद में सो गया। उसका अन्त होते ही विदेहों में एक नई जागृति हुई और उस जागृति में नेरे गणमुखियों का भी प्रचुर योग था। विदेहों ने देखा कि जनक के राजकुल ने न केवल विदेहों की जन सत्ताक प्रवृत्तियों कुचल कर उसके स्थान पर राजवत्ता की प्रतिष्ठा की बल्कि अपने नाम के अनुकूल राजधानी का नाम भी उन्होंने बदल दिया—उसे जनकपुर कहा। विदेहों ने जां आपना आराजकतन्त्र कायम किया उसमें सीरख्ब की राजधानी का नाम बदल कर उन्होंने किर मियिला रखा और उस आधार से वे अपने प्राचीन जन परम्परा के अनुसार राजनीतिक आचरण करने लगे।

दो उदियों और थीं। विदेहों का प्रकर्ष वह फैला। परन्तु थोरे-धोरे किर शक्ति को एकत्र करते हुए एक नवीन राजकुल ने उस पर किर कुटायथात किया। इस कुल का नाम भी जनक कुल ही था और महत्वाकांक्षा की इसकी प्रवृत्ति भी अधिकतर उस नाम के संयोग से ही हुई। परन्तु उसकी जनशब्द नष्ट हो जाने पर भी उसकी याद जनता में सर्वेक थी, इसलिए वह राजकुल अपने को विदेहों से सर्वथा अलग न कर सका, और उसके अपर्याप्त राजा जनक ने अपने को 'जनकविदेह' कहा। इससे उसने जनता का वह भय दूर करने का प्रयत्न किया, जिसकी सीरख्ब के इतिहास की याद से उसमें संचार हो सकता था। इस विदेह जनक का कुल शारोरिक शक्ति से नहीं, मानसिक शक्ति से विलयात हुआ था। इसी कारण विदेहों की संगठित मेष्ठा के रूप में इस कुल ने विदेहों का जन नाम भी अपने साथ ले लिया रखने दिया।

जनक विदेह का राजकुल नवीन सदी में विशेष प्रकार से ग्राहणों के विश्व उठने वाले ज्ञानिय विद्वाओं का परिणाम था। कम से कम उसकी रूपाति और सत्ता तो इसी सफल संर्वथ के कारण जमी। जमाना

उपनिषदों के शान्तसंभार का था। जनपद राज्यों के साथ साथ उपनिषद ज्ञान के केन्द्र भी स्थान स्थान पर स्थापित हो चुके थे। पंचाश के केन्द्र में अश्वपति, पंचाल में प्रबाहण जयवलि, काशी में अजातशत्रु और विदेही ने जनक अब ज्ञान के आवार्य थे। ब्राह्मणों के हाथ से मेघा का नेतृत्व लियकर अब द्वितीयों के हाथ में आ गया था। अश्वपति ने जिसे अपने राज्य में चोर और 'खैरिणों' न होने का अभिमान था, ब्राह्मणों में अग्रणी आदिषि को 'वनित पाण्डिमन्त्र' का ब्राह्मणोचित दर्पण आदेश दिया था, प्रबाहण जयवलि ने विद्वानों के पश्चाल परिषद का प्रधान के रूप में संचालन किया था, अजातशत्रु ने दण्डिवालमकि को आत्मा सम्बन्धी प्रश्न से निरुत्तर कर दिया था और जनक विदेह ने आदिषि के पुत्र रवेतकेतु आद्येय और उसके अप्रतिम गुरु भाई यात्रवल्क्य को अग्निहोत्र के पाठ पढ़ाये थे। ऐसा बरादर होता आथा है, विजय अर्थ की जीत के लिए की गई। अर्थ और राजनीति एक ही शरीर के दो जानु बनकर बैठी और उनका संचालन अब राजा करने लगा। राजा को अब यह हठ न था कि वह संशरक्युदों में मूल्य का सामना भरे और प्रदेश को जीत जाने के मूल्य जीते। उस भूखरह को दक्षिण में कृत्विज के हवाले कर दे। रघु ने कभी साम्राज्य जीत सर्वजित यज में उसे अपने पुरोहित को देंडाला था और स्वर्य सूर्य का अर्थ प्रिण्टी के पात्र में दिया था। वह रियति अब उसके दक्षिय वंशधरों की स्वीकार न थी। उन्होंने अपने अनपद राज्य कायम कर उनकी समृद्धि के नीचे मुख और आराम का जीपन विताना चाहा। मुख और शांति ने, समृद्धि और बाहुल्य में जब उदर की आवश्यकताएँ मन को आकुल नहीं करती तब मन में दानव का प्रवेश होता है और वह कहना के नित्य नये संसार गढ़ने लगता है। दर्शन का आरम्भ उसी आनाकुल प्रका की निकिय रियति में होता है और निःसन्देह उपनिषदों

के शान ने दर्शन की परम्परा प्रारम्भ की। 'आत्मा', तृष्णा और लिप्ता की वह अनादि और अनन्त धन्यता की शीजकड़ी थी, जिसने जीवन का तनु दुलाहे के ताने की तरह आगे को लीचा। यह जीवन जो प्रसन्न, सुन्दर, जीव्य है उसका अन्त न हो, उसकी परम्परा इस शरीर के बाद भी बनी रहे, यही इस तृष्णा का अर्थ या जिसके शमन के लिए क्या क्षत्रिय-बौद्ध, क्या ब्राह्मण-हिन्दू दर्शन ने आवाज उठाई। इस प्रकार के मुखी और जीव्य जीवन की पुनराहृति का स्वप्न उत्तमिष्ट-कालीन जनपदों का क्षत्रिय राजा ही देख सकता था और उसे उसने देखा—अस्वरुति ने केकय में, प्रवाहण ने पंचाल में, अजातशत्रु ने काशी में, जनक ने विदेह में !

मैं जुरुताप यह अद्भुत आत्मातिक राज सत्ताक ताना-बाना कुछ काल देखती रही। मैंने पास से, कापी पास से पढ़ोत्त से, ही उच्चक उच्चक फरमिला में होने वाले उस तथाकथित शान समारोह को देखा जिसमें जनक ने मध्यस्थ का आलन प्रहण किया था और जिसमें याशवल्मी ने दुनिया के शानियों को अपना पराभव करने की तुनीती दी थी। दशारी याशवल्मी के पीछे जनक की पार्थिव शक्ति का साधन था। कोई उसके सामने कहीं तक ठहर सकता। गार्गी यदि कुछ देर ठहरी तो इसलिए कि उसका सम्बन्ध सम्भवतः पंचाल के राजकुल से था। परन्तु उसके प्रभों के उत्तर—उनका क्या हुआ? याशवल्मी ने कहा था—“ब्राक्षयादिनि, बन्द कर अपने प्रभ बना सिर गिर आयगा।” सिर गिर जाने का भय निश्चय बड़ा था। सम्भवतः उसे वही बड़ा जो कक्षीय में पश्चात काल में हृष्ट से हेनसोन के मुकाबले ब्राह्मणों को हो गया। गार्गी के साथ जो व्यवहार मेरे देखते ही याशवल्मी का हुआ, वह नारी के प्रति उस शानी का होना उचित ही था, जिसने जीवन भर दूसरों को निष्पृह हो इन्द्रियों के विश्वों से ऊपर उठने का उपदेश

किया परन्तु स्वयं जिसकी दृति एक नारी से न हो सकी और जिसे मैत्री और काल्यायनी दो पत्नियाँ रखनी पड़ीं !

याज्ञवल्क्य का यह व्यक्तिगत आचरण अपने संरक्षक जनक विदेह के आचरण से भिज न था । जनक जिन्हें काल के साहित्य में 'विदेह' —जीवन मुक्त, देह के रहते उससे विरहित—कहा गया है, यद्यपि उस विदेहता का राज मैं जानती हूँ । माया खूब कि जन-विदेहों के नाम पर उनके नेता के रूप में शक्ति संचय करने वाले जनक का उपनाम विदेह दार्शनिक विश्वद मान लिया गया ! उसी साहित्य ने यह भी कहा कि मुमुक्षु बनक का एक पौंछ सिंहासन पर रहता था, दूसरा धन में अर्पात् वह सर्वया त्यागी था । दूर से अर्थ का अनर्थ करने वाले चाहे जो लिखें, परन्तु जहाँ तक मैंने देखा, जनक का एक पौंछ क्या पौंछ का आभास भी कभी धन की ओर न भुका । मैंने उसको निरंतर सिंहासन पर, उसके नीचे की स्वर्ण पाद पीठी पर, जमें पाया । इसी त्याग उसमें अवश्य था । यदि त्याग न होता तो उस धन का संचय राजप्राप्ताद में क्योंकर होता, जिसके पलस्त्रूप स्वर्ण के पत्तर सौ गायों की दोनों सांगों पर जड़े गये थे जिन्हें जनक का दर्शारी दार्शनिक याज्ञवल्क्य अपनी विजय के पुरस्कार स्वरूप इँक ले गया था ! और त्याग का यह रूप ऐसा था कि इसमें धन जो एक त्यागी के यहाँ संचित था, उठकर उसके दूसरे दूसरे त्यागी के पास बढ़ गया, जिससे एक की यशःकाया बढ़ी, दूसरे की पार्थिव अभिवृति दूरी !

जनक विदेह और उसका आत्मदर्शन फिर भी बहुत काल न चल सके । शीघ्र उसका फुल उस विश्वमें खो गया जिसमें मिथिला के विदेहों के साथ ही मेरे नामरिचों का भी प्रचुर हाथ था । सातवीं उदी ईश्वरी पूर्व में विदेहों ने फिर एक बार अपनी राजनीति की काया पलट दी । राजसत्ता को कुचलकर उन्होंने प्रजासत्ता शासन का आरम्भ

किया । अब तक मेरी स्थिति प्रबल हो चली थी । जनक विदेह के शासन काल में ही यद्यपि मैं नाम मात्र को उसकी हुक्मत में भी नेरे अँगन में हुंचायती थेठको की बुनियाद पद गई थी परन्तु अपनी स्थिति सर्वथा स्वतंत्र करने के लिए पार्श्ववर्ती विदेहों के राजकुल का नाश आवश्यक था । उसके नए होते ही न केवल मैं स्वतंत्र हो गई बरन् मेरी सत्ता सर्वथा सर्वप्र मान्य सिद्ध हुई । बार बार नए प्रष्ट दो जाने के कारण, बार-बार राज सत्ता के प्रतिशित हो जाने के कारण विदेही में डर समा गया था और अब यद्यपि उन्होंने अपनी मिथिला में भी अपने जन का स्वतंत्र 'सन्धागर' कायम किया और उसे रखा फिर भी उन्होंने मेरे ही विशाल गण का मित्र और अंग हो जाना मुनासिर समझा ।

इवर मुझे भी अपनी नई उठती हुई स्वतंत्र स्थिति के प्रति एक नया डर उठ लदा हुआ था । गंगा पार यद्यपि अहिंशयों के प्राचीन राजकुल का अंत हो गया था वहाँ एक नये राजकुल ने नयी शक्ति के साथ अपनी प्रतिष्ठा की थी । इसी प्रकार कोशल का राजवंश भी नित्य नये प्रदेश जीतने लगा था । ऐसा लगा कि कहीं इन राजवंशों की प्रसरणीति मेरे विरुद्ध भी न थरती जाय और मैंने विदेही का वह मुकाब मान लिया । आठ गण तन्त्र मेरे आल-गास की भूमि पर शासन करते थे उनमें विदेह चात्रिक, बजी, लिङ्घयि विशेष शक्तिमान और प्रस्त्यात थे । लिङ्घयियों का तो मैं ही केन्द्र थी । आठों गणों ने राजशक्तियों के विरुद्ध उनकी आशंका से शांति पाने के लिए अपना एक विशाल संघ बनाया जिसका नाम यज्ञो तंथ रखा गया । उसकी राजधानी मैं बनी; जो गीरव और वैभव मुझे इस काल इस सातवीं दृष्टियों की पूर्व की इति-हादियों की सन्धि पर मिला यैसा फिर कभी न मिला ।

बजी तंथ की राजधानी होने के पूर्व, वैसा मैं यहले कह हुकी हूँ, मैं लिङ्घयियों की राजधानी थी और चाद भी समिलित अधिवेशनों

के अतिरिक्त मैं निरुत्तर उन्हीं की राजधानी भनी रही। उनके सात हजार सात सौ सात राजकुल अपने प्रतिनिधि भेज कर अपने प्रान्त का शालन करते थे। इन ७७०७ प्रतिनिधियों को 'राजुक', कहते थे। उन्हें मेरी पुष्करणी में स्नान करने का अधिकार या और उस स्नान से पवित्र होकर मेरे सन्धागार में देठने का। मेरो सन्धागार की बैठकें जन सत्ता और जन न्याय का प्रतीक थीं। बुद्धने कहा और सही कहा कि लिङ्गविद्यों की बैठक देवसभा की बैठक है।

मेरे सन्धागार में जनता का कार्यक्रम सर्वथा न्यायपूर्वक होता था। गणपूरक उन आठनों पर जिन्हें आसन प्रस्तावक प्रस्तुत करता था राजुकों का यथा स्थान विठाता या और राजा तथा उत्तराभा के बैठ जाने पर प्रस्तावों की परम्परा चल पड़ती थी, प्रस्ताव को 'कम्भवाचा' कहते थे। उसका विद्यापन 'क्षमि' कहलाती थी और उसका रखना 'प्रतिशा'। प्रतिशा रखने के बाद तीन दिन बार उसे रखने वाला अपने प्रस्ताव को दोहराता था, यदि राजुक नूक रहते तथा प्रस्ताव पास समझा जाता बरना किसी के विरोध करते ही उस पर शहस्र शुल्क हो जाती, किर यदि बोट की नौदत आती तो लकड़ी को रंग विरंगी शलाकाओं के जरिये 'छन्द' या बोट लिया जाता। जिस संख्या में इष्टिकोष उपस्थित होते उसी संख्या में शलाकाएँ भी रंग दी जातीं और अन्त में बहुमत से निर्णय होता। यही उस सन्धागार के अधिवेशनों की कार्य प्रणाली थी।

मेरी शुक्रित इतनी प्रचल थी कि सैनिक विभिन्नार को तो हिम्मत ही न हुई कि वह मेरी और बहल करे और यदि उसने किया भी तो केवल मैत्री का। अंग पर आक्रमण कर उसने उसे अपने राज्य में मिला लिया। सोलह जनपदों में से एक इस प्रकार सदा के लिए खो गया परन्तु मेरी और मगध राज ने केवल मैत्री का हाथ बढ़ाया। सोलह जनपदों में मैं गणतन्त्रों के इस जनपद की स्वामिनी को छेड़ने का मगध

राज को सांहस न हुआ। उसने जाना कि मेरा अनुकूल समर्क उसको गोरख वृद्धि का कारण होगा और उसने लिङ्गविद्यों के विशिष्ट परिवा के स्वामी चेटक को कन्या चलना के कर को पिता से माँगा और यह विवाह समर्क रथामित हुआ।

विजयों के न्याय-शासन की रुचाति भारत भर में यी और अनेक नवीन गणतन्त्रों ने उनके न्याय के अनुकूल ही अपने न्याय के रूप संवारे थे। मेरे सन्धागार में रखे विवाह के अनुकूल ही अपराधी को दण्ड पिलाया था, लिलित विवाह के अनुकूल राजा की मौतिक प्रक्रिया के अनुकूल नहीं। हमारे पवेनि-योग्यक उन दण्डों की अनुकमणी रखते थे जिनके अनुकूल अनियुक्त अपराधी लिंद होने पर दण्ड पाता था। और यह दण्ड पाना भी कुछ खेल न था। न्याय के सात-सात पदाविकारी अनियोग को सुनते थे—पहले विनिहचय-महामात्र, फिर व्यवहारिक, सप्रधार, अष्टकूलक, फिर सेनापति और धर्म में उपराजा और राजा। इनमें से प्रत्येक प्रनाल्य के अन्यांस होने के कारण अनियुक्त को मुक्त कर सकता था। दिन-दिन मेरी शक्ति बढ़ती गई। दिन-दिन मेरी रुचाति दिग्नन्त में व्याप्त होती गई और दिन-दिन मैं प्रगत राज की महत्वाकांक्षा की राह में झुट्ठ अवरोध का रूप धारणा करती गई।

मेरे ही नगर के बाहर कुण्डप्राम में सातवीं सदी ईसवी पूर्व के पिछ्ले चरण में उस महामना का जन्म हुआ जो पहले जिन थिर महावीर के नाम से विख्यात हुआ और द्वितीय चलाये अद्वितीय जैन समुदाय ने दया और मानवता का प्रत्यार अपनी दीक्षा का मन्त्र बनाया। यद्यमान कुण्डप्राम के ज्ञातिक ज्ञात्रिय वंश के मुख्य विदार्थ के पुत्र थे और लिङ्गविद्यों में अग्रणी उस चेटक की भगिनी विशला के तन्य जिसकी कन्या चलना प्रगत के राजा विन्दुघार को ब्याही थी। यद्यमान ने युवावस्था में विवाह किया और उनका वैशादिक जीवन भी

कुछ कम अभिरुति का साधन न था परन्तु अपने चारों ओर जो दुख की धाराएँ थहरी उन्होंने देखी तो उच्चके शमन के लिए बद्दमान सबल हुए। चारों ओर बन्धन ही बन्धन देख पड़े ये जिनसे स्वतंत्र होने की, बन्धनहीन निगम्य होने की उनकी कामना प्रबल हो उठी और वे फलतः प्रवर्जित हो गए। और बारह वर्ष तक निष्काम तप कर उन्होंने 'कैवल्य' प्राप्त की और निराडधर निवान्त नम हो वह पाये सत्य का उपदेश करने लगे। उपदेश ज्ञातियों की उसी विद्रोही परमरा में भी जिसका उपनिषद्काल के ज्ञातियों ने और विशेषकर काशी के राजकुल के पार्श्व ने प्राप्तः देद सौ वर्ष पहले किया था और यह उपदेश जन भाषा में किये गये। उपनिषद् काल के ज्ञातिय नेताओं ने भी महामण भाषा संस्कृत को ही प्रभ्रय दिया था परन्तु महावीर ने पहली शार जनभाषा का प्रयोग किया और निषिला मगध राज में उसी भाषा में अपने विचारों का प्रसार करते रहे। ग्रामणों के बर्णाभ्य धर्म पर जो उन्होंने कुठाराघात किया, उस नीति को और साथ ही उनकी भाषा सम्बन्धी नीति को शाक्य तिंह बुद्ध ने अपनाया।

मेरा योख दिन दिन बढ़ता रहा। बुद्ध ने जब महाभिनिष्ठमण किया तब मेरी ओर से ही अनेक शार मगध की ओर से वे आये गये। एक द्वार जब मेरे नगर की बारीगना आमचपाली ने उन्हें और उनके संघ को भोजन के निमित्त आमन्त्रित किया तब अभिज्ञात कुलीय लिङ्गवि शहुकों के निमन्त्रण को भी दुकरा कर उन्होंने उसे स्वीकार किया और आमचपाली ने राजुकों के रथ से सटाकर आगमा रथ हॉका। यह औरों के लिए ज्ञोभ की बात यी कि वारवनिवा राष्ट्र ने प्रतिनिषियों के द्वारा दर रथधावन करे परन्तु वैशाली के नागरिकों के अधिकारी में कभी वैद्यम न होने दिया और तथागत ने उसके इस आचरण से सन्तोष लाभ किया। यथासमय उन्होंने उसे संराहा भी।

विभिन्नतार का पुत्र अजातशत्रु महत्वाकांक्षी था। उसके राज्य को मेरे विजियों से आशक्षा तो थी ही, उसके प्रसर में कंठक भी कुछ साधारण न थी और उसने मुक्ते निगल जाना चाहा। गंगापार का हिमालय तक यह मेरा अनन्त विस्तार अत्राजक नीति के शातन में हो, यह अजातशत्रु कभी परन्द न कर सका और उसने मुक्ते हड्डी लेने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु उसके सारे प्रयत्न निष्पत्त हुए। एक बार जब महात्मा बुद्ध राजगढ़ में उपदेश कर रहे थे अजातशत्रु ने उनसे विजियों के उत्कर्ष का कारण और पराभव का उपाय पूछा। तब बुद्ध उस समय तो तुप हो रहे—निश्चय राजा को दूरनिसन्धि उन्हें खल गई और जनसत्ताक शक्ति की आव मानना उन्हें सह्य न हुर परन्तु कुछ काल शाद मेरी प्रशंसा में मगधराज के मन्त्री ने तथागत को यह कहते भुना—

“जब तक विजियों के संघ में एकता की शक्ति है, जब तक उनकी बैठकें गुप्त और अधिकाधिक होती है, जब तक प्राचीन परंपरा का उनमें आदर है, जब तक अपने धूदो के प्रति वे अदालु हैं, जब तक नारियों का वे आदर करते हैं, जब तक उनको मन्त्रणा का मेद नहीं खुल पाता और जब तक उनमें संयम प्रचुर है, तब तक कोई वैशाली का पराभव नहीं कर सकता।”

मन्त्री ने मगध राज से जब तथागत के उद्गार कहे थे वह निवान्त अकर्मण्य हो रहा परन्तु अजातशत्रु जिसने अभीर होकर शिता की मृत्यु तक की अपेक्षा न कर उसका वध कर डाला था, निश्चय यह तुप म बैठा रह सकता था। उसने तथागत के उद्गार के अनुकूल ही आचरण प्रारंभ किया। गुनीध और बसाकर नामक अपने चरन्मन्त्रियों को मेरे नगर में भेज उसने मेद की नीति अरमाई। दोनों ने पहले संघ के आठों गणों में, फिर लिङ्गदिवियों के विशिष्ट-कुलों में परस्पर फूट बोनी

शुल की। दोरे धोरे जब उतका श्रंकुर निकला तब उसमें विव का पुट देंदे कर अजातशत्रु ने इन्धा और अनेकता के योग से सशक्त किया। सङ्घ के गण एक दूसरे को सन्देह, शंका और भय की हड्डि से देखने लगे, तभी मगध राज ने अपनी विदाल सेना प्रस्तुत की और उत सेना के आयुधागार में असंख्य विग्रुध यंचित किये परन्तु आखिर इस अनीति का सार्थक करने का कांई न कोई बहाना खाइए, पर बहाना खोजने वाले को उसे पते देर नहीं लगती और अजातशत्रु को बहाना मिल जी गया। विमाता चेल्लना की भूमि में रलों की एक लान मिली थी। अजातशत्रु ने उस पर अधिकार करने के उत्तरान लिये। अधिकार अहारण या परन्तु अजातशत्रु को तो बहाना खाइए था। इसी बीच एक और पटना बटी। चेल्लना के पुत्र और अजातशत्रु के वैमाप भ्राता दल्ल और वेल्ल उसके अनाचार और अत्याचार से भागकर लिच्छवियों में शरण लेने मेरे नगर में आये। अजातशत्रु ने उन्हें राजग्रामाद के रत्न का घोर कह उनका रीछा दिया। लिच्छवियों का उनकी रक्षा करना आवश्यक था। लोहा से लोहा टकरा गया। यद्यनि विजियों का संघ प्रायः दृट चुका था और वे एक दूसरे के विरुद्ध शक्ति हो चुके थे, परन्तु इस समान शशु का सम्पन्न करने के लिए वे एक साथ कठिनद दुपर।

समर भयंकर दुश्मा और दोषकाल तक। बलिशनों की कगो न रही परन्तु अजातशत्रु के चरों ने मेरे संघ में जो फूट की बेलि बोई थी समय पर उसमें द्वेष के फल लगे और मेरा संघ विनाश हो गया। अजातशत्रु ने मेरे नगर और संदर्भय पर कब्जा कर लिया। दिमालय तक उसने अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ा दी। मेरी स्वतंत्रता मेरे नागरिकों का अनरिमित स्वातंत्र्य मगध की बढ़ती हुई सोनाओं में समा गया। मैं कुछित अभागिनों सो अग्ने पोष्टे मर्जों और कोलियों की ओर

ताकती रही परन्तु उनपर भी तभी कोशल की अविरत चोटे पह रही थीं। शास्त्रों का बुरा हाल था। प्रतेनजित के पुत्र विष्णुदत्त ने कपिल-बस्तु को अग्नि को समर्पित कर दिया था। शास्त्रों का संयागार जलकर भस्म हो चुका था और उनसे मुक्ते किसी प्रकार की सहायता की आशा न थी। मैंने उत्कर्ष देखा था, ऐनव की जोटी चूमी थी। अब मैं अरने अबोगामी इतिहास का भी निर्माण करने लगी।

मैं अजादी का अनुबन्ध थी। अब मैं नीचे की ओर गिर चली थी। यद्यपि मुझे सर्वया नगर्य नहीं कहा जा सकता और मगव में गिरने उठने वाले राज्यों ने अनेक बार मेरी ओर देखा, अनेक बार उन्हें मुक्ते सहायता के लिए आमन्त्रित किया। कुमारों के बाद जब पूर्व का अन्तर्वेद स्वतंत्र हो चला और चन्द्र मगव के पुराने राजकुल का अभिभावक इन तथ एक बार फिर मेरी मगव को याद आई। चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र की गदी हड्ड पर ली थी परन्तु उसे दर था कि कहीं लिच्छवियों का विरोध उसकी महत्वाकांक्षा में दाग न लगा दे। भट उसने उस नीति का पल्ला पकड़ा, जिसका अंग को जीतते बक्ष विवरार ने कभी पकड़ा था। लिच्छवियों के एक विभृत कुल की दन्या के कर का चन्द्रगुप्त प्रथम प्रार्थी हुआ। उनके उसने विवाह सम्बन्ध स्थापित कर अपना गौरव बढ़ाया। इस घटना को उसने इतना महत्वपूर्ण समझा कि इसके स्पारक स्वरूप उसने अपना वह प्रलयात लिक्षक अलाया जिसमें एक और लिच्छवियों की कन्या कुमारदेवि को मुद्रिका प्रदान करती है उसकी आकृति खुदी और कुमारदेवि की आकृति के नीचे लिखाया—‘श्री कुमारदेवी’, दूसरी ओर उसने लिखाया ‘लिच्छवैयः’। निःरन्देश उठते राजकुल का मेरे साथ यह संबन्ध युक्तिसंगत जान पड़ा बरना हीन स्वतंत्र राष्ट्र दूसरे का नाम अरने सिद्धे पर लिखकर उसे अपने राज्य में चलाता है। इतना ही नहीं

कि चन्द्रगुप्त ने ही अपनी दूली के कुल का यश गाया हो बरत उसके साम्राज्य विजयी पुत्र समुद्रगुप्त ने भी अपने खो लिच्छवियों के सम्यक्से सम्भावत और यशान्वित माना और उसने भी अपने सिक्खों पर इस सम्पन्न के स्मारक स्तरूप विशद लिखवाया—“लिच्छवि दीहित्रः ।”

समुद्रगुप्त की द्विविजय और अश्वमेध के बाद मैं भी उसके विजित का अंग बन गई और उसके बेटे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने तो जो संघों व गणों के विशद अवनी मारकनीति का प्रसार किया उसमें तो भला मेरी स्थिति ही क्या हो सकती यो ? पर इतना अस्तर है कि मैं सर्वथा मरन सकी और यशायि मेरी जनसत्ताक प्रभुता धीरे धीरे नष्ट हो गई मैं किर भी विक्रमादित्य के साम्राज्य का एक विशिष्ट शासन केन्द्र मानी जाती रही । मेरे ही आधार से इधर के प्रान्तों का चन्द्रगुप्त के द्वितीय पुत्र गोविन्द गुप्त ने समाट प्रतिनिधि के अधिकार ते शासन किया ।

एस्तु धीरे धीरे मेरा यह तुल भी जाता रहा और पश्चुतः मैं उस मुख से बंचित होकर ही अधिक मुली हूँ । वैशाली और लिच्छवियों के नाम कभी प्रजातत्त्वाक स्वतन्त्रता के पर्याय थे; कभी गणतन्त्रों ने राज्यों से आक्रान्त होकर उनकी ओर देखा था, तब उन्होंने अपना अभय इस्त उनकी पीठ पर रखा । परन्तु अब वह एक्सित उनमें न रही तथ अच्छा है वे भी न रहें । अब वे नहीं हैं न वैशाली न उसके लिच्छवि ।



पाटलिपुत्र

मैंने क्या देखा, क्या न देखा ? कर्मठ की तलवार के रक्त, विन्दु और आत्म के श्रौप दोनों मेरे बद्द पर गिरे हैं । दोनों ने मुझे गोला किया है, और धरतों की भाँति निष्काम मैंने उन्हें धारण किया है । मैंने जो देखा है वह उदाचू है, पायन है, भयानक है, धृश्यित है ।

मेरी छाती पर विशाल साम्राज्यों के दाए रखे गए जिनके कँगूरों ने गुरज-चाँद के बोझों की गति रोक ली है, पर उनके भूमिकात होने पर मैंने उनकी धूल उड़ाती और अन्तरिक्ष में चिलीन होती भी देखी है । दूर के विदेशी रितालों की गर्विली-विजयिती आवाज आज भी मेरी स्मृति में दरार ढाल देती है । आज भी उनकी पैनी चोटों से करादने वालों की आवाज सानों को छेद देती है ।

अब सुनिए मेरी कहानी । गंगा और शोण का वह मनोरम कोण

जहाँ दोनों ही नदी की लहरें एक दूसरे से टकरा-टकरा कर टूटती थीं, जहाँ उनके उत्पान-पत्तन शायु में कुहाला उठा देते थे, जहाँ उठ उठ कर चिलर जाती थी, तट को उच्चल कर देती थी। वहीं पाटलि के लाल-साला फूल दिग्नद तक फैले मेरे भावी लाल इतिहास की नूमिका लिखते थे, लाल कहानी का अंचल सजाते थे।

वहीं पाटलि गंगा अपने लाल कलेवर से पौंकियों और भीढ़ों का धू-परिवार सनेटे चिंचियों से खड़ा था। उसी गंगा शांश के कोण में पूर्व सागरगामी पोत लंगर ढालते थे, वहीं लौटने वाले बदाज पनाह लेते थे। वहीं अपनी हिंसिकाँ लिए जल-स्तु भी इन आने-जाने वाले बदाजों पर आक्रमण करने के लिए दुनके रहते थे।

वहीं अनेक बार विजयों के देश से आते और राजशह से जाते सभ्य शाक्यसिंह बुद्ध ने गंगा पार किया था। अनेक बार इसी पाटलि प्राम में बट की छाया में तथागत का राजशह के भीमानी ने स्वागत किया था, उनके मर्दानगाँ प्रवचन भजलूमों के कन्धों से कन्धे निलाकर मुने थे, किंतु शाक्यसिंह को विदा किया था।

वैशाली के विजयों के उत्कर्ष ने मगध की नीद इरान कर दी थी। अजातशत्रु के उत्तर 'प्रसर' में वज्री-लिच्छवियों का गणतंत्र असाधारण अवरोध था। मैं इसा पूर्व की उस छठी सदी में चुरचाव मागवों और विजयों के पैतेरे देखता रहा। उनके दाँव-वैच जब तब तलवारों की चोट में समात होते थे।

मगध की प्रसरलिप्सा बढ़ चली पर विजयों ने अपनी टालों से गंगा तट पर चट्टान लही कर दी। उन्होंने विदेह अनक का एकतंत्री प्रजतंत्र उलट कर अपने गणतंत्र की नीव ढाली थी। उसे उन्होंने अपने परिवार और जागरूक जन चेतना से विकसित और शक्तिमान किया था। मगध के राजतंत्र से उन्होंने सफल लोदा लिया था। मागध विविसार

को मैंने अंग को आत्मसात करते देखा था पर विजयों को छेदना उनके लिए संभव न हो सका ।

उनके शौके जवान गंगापार से अपने अपार गीत गाते जिनकी गूँज जल राशि के शिखरों पर डग भरती राजगृह के भवन-कलशों से टकराती, राजा के मन में ज्ञान उत्तम करती । अनेक बार विदेशीनिकों ने गंगा पार कर मार्ग रुच्यावारों को लूट लिया था । विशिष्ट ने उनसे शक्ति विचक्षनक जानी और उनसे विवाद संकर रखायित कर लिया ।

पर अजातशत्रु विजयों को लौधि कर अपने राज्य की धीमालय की छाया तक ले जाना चाहता था । विजयों की गतिविधि देखते रहने के लिए उन प्राचीन पाटलि गाँव के अंकल में गंगा शोण के अंजस्वित कोण में उसने मेरे हुंग की मटियाली प्राचीरें लही कर दी । उन्हीं मटियाली प्राचीरी में मेरी भावी महत्वा की आवाज जागी ।

उदायीभद्र को तलबार चमकाने की कुछ विशेष आवाज़ा न हुई । पर गंगा-शोण के कोण में विशाल नगर के निर्माण की उसकी इच्छा प्रवल चनी रही । धीरे धीरे मेरा आकार-प्रकार फैलने लगा । उदायी की आवाज की देर थी । राजगृह से सार्थवाह चल पड़े । कारवों की गति शोष लिंग हुई और देखते ही देखते राजगृह का पहाड़ी नगर धीरान हो गया । उसके राजमार्ग सूने हो गए ।

सेठ-साहुकार राजा-मंत्री, सैनिक-सेवक सबने मेरी उठती प्राचीरों के पीछे देरा ढाला, पहले पट-मंडप और लकड़ी का फिर इंट-चूना-पत्थर का ।

शिल्पियों की सट-सट में गंगा-शोण की लहरों का नाद सो गया । पाटलि गाँव की धूमिल रेखा भी मिट चली । उसके आवार को आत्मसात कर मैं धीरे-धीरे ढापना मत्तक उठा रहा था । राजगृह का बेनव, गिरिज का ऐतिहासिक ऐश्वर्य लिए मगध का राजा मेरे द्वारा आ खड़ा

दुश्चा—मेरे द्वार चितके तोरथा भी अभी अपूर्ण थे, नंगे, अपने नुकीले शिविरों से श्राकाश चूमते। अब मैं पाठ्यलिपुत्र था, पाठ्यलि पुष्टों से लाल कुसुमपुर।

धीरे-धीरे मेरे कलश-न्कूरे चाढ़लों में छिन चले। सवानान्तर राजमार्ग और उन पर लहड़ी भवन-नंतियों के बीच मगध-राज का यह महल खड़ा हुआ जिसने शश और एकब्रताना के महलों को लजा दिया, जिनको देख विदेशी भ्रमक स्वर्ण रह गए।

उस राजमहल के निर्माण में मगध के राजाओं ने अत्युत धन ध्यय किया। अजातशत्रु ने पहले ही गंगा पार कर लिया था। बड़िजयों का गण्यतंत्र नट-भ्रष्ट हो चला। उनकी विपुल रत्नराशि अब मेरे चौकटों में आ गई। धड़िज-नागरिकों ने अपनी अद्युत धन-राशि की प्राणी की भौति रखा की थी। उनके लिए वह अभोग थी। उसका उपयोग वे वैयक्तिक विलास में न कर सकते थे। जनक-विदेह का धन अब केवल राष्ट्र की आवश्यकताओं में खर्च होता था। पर मगध-राज को पैनी तलबार ने उस प्राचीन गण्यतंत्र की नीव खोद दी। दुख के संचित धन-राशि मेरे देखते ही पहले मेरे निर्माण में किर राज के गौरथ के प्रदर्शन में स्वाहा होने लगी। मेरा सर्वांश उस अमानव निधि से सज रहा था। उसके स्पर्श से मैं पुलकित हो रहा था।

धीरे-धीरे काशी-अयोध्या का ऐत्व मैने क्षोण कर दिया। मधुत-अवन्तिका अवाक हो मुझे देखने लगा। नौशान्त्रो-इरदार मेरे ऐत्वर्थ को न सह आसमगत हो गए। द्वारका दूर परिचम में समुद्रतट पर कुदड़ी रही। दै गंगा शोण के कोण में अपना विशाल-प्रलय शरीर फैलाता जा रहा था। भविष्य की कीर्ति के लिए मेरा संकल्प टट होता जा रहा था।

मगध पूर्व का पहला साम्राज्य था, मैं उसकी पहली विशाल राजधानी। मेरी परिधि भड़ी, शक्ति भड़ी। पूर्वों जनपद अब मेरी रीढ़ की

दक्षिणी बन रहे थे । उनको आत्मसात करते ही मैं उन राज्यों की ओर चढ़ा जिसकी रियति मेरी परिधि के विस्तार में अवरोध थी ।

तीन राज्य—इस्ल, कोसल, अवन्ती (मालवा)। मेरी ओर अवन्ती की चांटों से बत्त दिल गया । कांशाम्बी का उद्यन विलास की मूर्ति था । फिर भी उसकी तलवार, उत्तरी बीणा को गूँज में भी चमक उठती थी पर उसके बंशधर कायर और प्रसादों हुए । मैंने उनकी दुर्बलता पर अद्वास किया, उसे ढकार दैवा । पहले उच्जैनी ने उसे आत्मसात किया फिर मैंने उच्जैनी को । कोसल से काशी मैंने पहले ही ले ली थी, अब उसकी राजधानी शाक्ष्मी को लाई थी । जब उच्जैनी को मैंने कुचल डाला तब शाक्ष्मी की स्था हस्ती थी ।

इसी उच्जैनी के डर से कभी अजातशत्रु ने राजगढ़ की दक्षिण प्राचीरे हुड़द कराई थी और यद्यपि कोसल के प्रतेनजित ने उसके विद्वार पर दम लोहा था, उच्जैनी के चरण प्रथोत महासेन ने उस कंपजोरी पर मुस्करा दिया था । पर आज जब मैंने उच्जैनी को आत्मसात किया तब न चरण था, न गोशल । और अराजक गुरुदों की शक्ति इकतने दिन मेरी विनीत संभव-शक्ति की दमकर सह उकती थी । दूट गई, उसके टलने चूर-चूर हो गए ।

कोसल को मैंने शाक्यों के विहर सलकार दिया था । तपागत युद्ध के महान शाक्य कपिलवस्तु के संघागार में राजतन्त्र का उपहास करते थे । मेरे इशारे से प्रतेनजित के बेटे विहृदय ने कपिलवस्तु में इतना नर बंदार किया कि यम के रोगटे खड़े हो गए । शाक्यों से धूनकोसल ने कोलियों और मश्लों को कुचल डाला । मैंने न्यम लिघ्नवियों, कंडियों को ढकार लिया था । गण और रंथ अपनी अराजकता खो देते । बंग से मुहुरा तक, हिमालय से उच्जैनी तक का साम्राज्य नेरा था—यह भारत का पहला साम्राज्य जो पूर्व में

सूरज की भाँति उदित हुआ और अब आकाश की चोटी छूपने चढ़ चला था ।

मैं उस साम्राज्य का केन्द्र था । संवार में तब हो थहे साम्राज्य थे— पहला ईरानियों का, वहु तट से दूनान की सीमा तक; दूसरा मेरा, मगध का, यमुना से पूर्वी सागर तक । ईरानी दाग ने जब अपनी लग्जी भुजायें बढ़ा कर तिन्ह और पंजाब को अपने साम्राज्य का भीसवौं प्रान्त बना लिया तब मैं अपने उद्दन के अनिश्चित स्वर्ण देख रहा था ।

माना, मुझे बढ़कर तिन्ह तट पर ईरानियों से लोहा लेना था । पर क्यों? भारत को अपने छूप के नीचे लाए जिना यह सम्भव कैसे था? पंजाबियों के गण और संघ राज्य जो सीना ताने लड़े थे उनको गांधारियाद से चिट्ठ थो । मैं भी उनकी ओर से उदासीन था । पहोंची शास्त्र कोलिय-पल्ल बड़जी मेरे लिए काफी थे, पंजाब के मालव कुद्र के आरट-नृष्णी, यौधेय-कठ दूर के दुर्यम । विदेशी को तदस-नदस करते मैंने देख लिया ।

मैंने किर देखा जो कभी न देखा था—ज्ञानिय-शूद्र संघर्ष । भारत में ब्राह्मण-ज्ञानिय सदा से लड़ते थाए थे, उनके संघर्ष मेरे पहले भी हुए थे, उनकी कहानी मैंने सुनी थी । मेरे सामने भी हुए, उन्हें मैंने स्वर्ण देखा, पर ज्ञानिय-शूद्रों का संघर्ष मैंने न सुना था न देखा पर अब शहद ब्राह्मणों की थाया में लड़े थे, ब्राह्मण उनकी पीड़ पर थे ।

शूद्रों के प्रबल प्रतिनिधि महाराजनन्द ने इतिहास-प्रसिद्ध शैशुनागों का कुल मगध से उलाद पेंका । हर्येंक शैशुनागों का वह कुल जिसने विभिन्न सार और अजातराजु हुए थे, दर्यक और उदायीमद्र, नन्दिवर्धन और महानन्दी, नन्दिवर्धन की सेनाओं ने मगध पार कर सुवर्ण रेखा लापि कंलिंग का राजमद चूर कर दिया था, विशाल जिनकी सूर्ति कलिंग की

राजधानी में प्रतिष्ठित थी। गर्भगृह के आधार से उत्ताह उत्तने उसे विजयस्मारक के रूप में मेरी प्राचीरों के पीछे ला लहा किया।

महानन्दी की रानी को नाई के रूप का दास होते भिर मैने देखा। नाई ने एक दिन मेरे देखते ही देखते मगध की रानी की सहायता से अपना चुरा राजा की गरदन पर फेर दिया। फिर तो उस मेरे राजकीय अवरोध में जिस विलास-राशडव का समारोह हुआ उसको कल्पना नहीं की जा सकती। कुलदर्प से मरे राजाओं का 'शुद्धान्त' अन्तःपुरीय अमर्यादा से निरान्त अग्रवन पृथिवी हो उठा। महल के देवी-देवताओं ने विलास के नरों कृत्यों से आँखें लुप्त की।

इसी विलास को देने में महापद्मनन्द और उसके आठ पुत्र। मैने उसे अरने शर्वर नाई पिता की संरक्षा में बढ़ते-पलते देखा। उसके विवरण में ही यूसुफ नई के शालानुर गाँव से वह पठान-ब्राह्मण आया जिसे पाणिनि कहते थे, जिसने अध्यात्मियों के सूत्र रखे, इसी मेरे ही नगर में। युक्ते याद हैं, जब वह पहले पहल अपने उदीच्य येशु में, कुर्ता, सलवार और द्रापी (वाल्कट) पहने, गरदन तक कटे चालों पर उष्णीय बांधे मेरे राजनार्य पर उत्तरा तो दर्शकों की भीड़ लग गई थी। उसी पाणिनि के नए व्याकरण सूत्र शब्द महापद्मनन्द ने रखे।

कात्यायन-वरस्विनि ने उसकी जधानी में उसे व्याकरण और शास्त्र में दीक्षित किया। महापद्मनन्द ब्राह्मण कात्यायन का अख भना। मैने यहुत कुछ देखा तुना था। अब मैने इस अनदेखे, अनसुने इतिहास के लिए नेत्र-भोप्र सोल लिए।

धनी जनता को लूट कर, छोटे राज्यों का तदस्नहत कर उत्तने अनन्त धनराशि इकट्ठी कर, अनन्त सेना एकत्र की। कोश और ऐत्य चल एकत्र कर उत्तने अपना 'महापद्म' नाम सार्वक किया। मैं जुर्माप

सहमा-सहना उसका चरित देखता रहा । कराइ और चीकार हवा में थी, आवाजें आठंक से गोकिल थीं ।

ज्ञानिय राज्यों को उसने समूल नष्ट कर 'सर्वलक्ष्मान्तक' विरुद्ध भारण किया । उनके विनष्ट परिवार से अर्जित कोपराशि से मेरे कोटे भर गए । नहीं कह सकता किंतु अभिनृति के साथ मैं धन के इस अनन्त आयात को देखता था । पर्सिरोलित और रोम के गणकों का अंकगणन मेरे धन को अपारता मुन गूँगा हो गया । इन राजधानियों के वैभव पर मेरी नेषार्जित संपदा धंग करने लगी ।

इसी काल ईसा पूर्व चौथी सदी में मगध में यृह-फलह का आरम्भ हुआ, यह युद का, जिसने मेरी राजनीति की काया पलट दी । धन और शक्ति मद से अन्धे महापद्मनन्द ने मन्त्री शकटार को सपरिवार अन्दी कर लिया, फिर उसके परिवार का अन्त भी कर दिया । अपनी उदासीन आँखों से मैंने यह दृश्यान्स हत्या व्यापार देखा ।

इसी बीच एक और घटना थी । शाक्तों में मोरियों का एक प्रस्त्यात कुल था । उसका एक मात्र बंशधर चन्द्र गुप्त भौर्य मगधराज के यहाँ नौकरी करने के लिए आया । मैंने देखा उसकाल लाठ प्रशस्त था, उर्जास्ति उसका वज्ज, प्रलम्ब उसकी भुजायें । उसने अपने को अक्षत्रिय कहा और प्रगधराज लुभ गया । उसने न जाना, उसके कुन्तलकेश में नागों का डेरा था, उसके हृदय में महात्मा शंख थी, उसकी भुजाओं में साम्राज्य निर्माण का बल था, उसके कन्धों में उस साम्राज्य का भार सहन करने की सामर्थ्य थी । पर मैंने जाना, न वही समस्त, पर कम से कम भावी की भूमिका निश्चय मैंने जान ली और मैं अनागत के स्वागत और सहन के लिए कठिनद हो गया ।

चन्द्रगुप्त महाराजनन्द का प्रिय पात्र हो गया और नित्य हेना में उप्रति कर चला । फिर शीघ्र यह सेनापति के उस पद पर पहुँचा जहाँ

उसकी महात्माकांडा का नन्द की महात्माकांडा से टहरा जाना स्वाभाविक था । मैं यह पहले अस्ट्रिट फिर स्पष्ट संवर्द्ध देवता रहा । पर चन्द्रगुप्त नन्द की धरातल तक न पहुँच सका । इसी तमय उसके लक्षित होने का भैरव खुल गया और नन्द के कोगानल से बचने वह भागा, माघ की साम्राज्य सीमा के बाहर, दूर पंजाब और सीमा मान्त की ओर जहाँ नन्द का परम शत्रु द्राशुण चालाप नन्द वंश के उन्मूलन के साथ संचित कर रहा था ।

चालाक ! हाँ वह उच्चरित शब्द जिसकी घनि में एक पूरी संस्कृति का संरक्षण है, एक प्रतिष्ठित राजवंश का उन्मूलन, गण-राज्यों का रावनाश, साम्राज्य का विस्तार, उचित-अनुचित का उदाहोद, कूर और कुटिल का निःशेष उनावेश, आर्य का प्रतिशोध, व्रायण का काप, कर्मठता अभुतपूर्व एकता, और दार्य-वैराग्य की नानवी पराकार !

कुटिल के कुज में यम की दिशा में मेरे नगर में जब उस ब्राह्मण का जन्म हुआ या तब का बातावरण मुझे याद है । दूरिद्र ग्रामणी ने उसे प्रसन्न किया था । उस दिन प्रचंड आँधी चल रही थी । गंगा शोण की लहरें आसमान चूम रही थीं और नवजात आँखें फाइ-फाइ उन्हें देख रहा था । पाँच बर्ष बीते और उसके मिता तथा ज्योतिषी ने उसका सादर देखा ।

ज्योतिषी ने उसके दाँतों की बक पक्षित देख कहा—दाँतों की बकता बालक का महान बनाएगी,—दाँतों की बकता ! क्या सचमुच दाँतों की बकता ? उसको चूनता-इडवा नहीं ? मिता की जानु से वह कूद पढ़ा सौंपा चूतरे के नीचे और उठा लिया उसने पात का पत्थर । 'थे गण्य ! देख यह दाँतों की बकता' यह रही । दाँत नीचे आ रहे, चालाक्य ऊँचा चढ़ता गया ।

इसी चालाक्य का नन्द ने एक दिन भाद्र में शिला एकड़ कर अप-

मान किया। खुली शिखा पकड़ कर उस ब्राह्मण ने जो भीषण प्रतिशो
की वह आज भी मुझे याद है। नन्द वंश का उन्मूलन करने वह
मगध से आहर निकल गया, पंजाब की ओर। वही चन्द्रगुप्त उससे
जा मिला।

तभी प्रचरण श्राविंशी की भाँति सिक्षन्दर की प्रीक्षाहिनी दंबाप पर
वह गई। वहाँ के राष्ट्रों को उसने कुचल डाला। पर मेरे आतंक से
उसे व्याप के पार आने का साहस न हुआ। चाणक्य-चन्द्रगुप्त चुप-
चाप अक्षय की प्रतीक्षा कर रहे थे। मिकन्दर के लौटते ही उन्होंने
उसकी बच्ची सेना भारत से निकाल पाई ही और वे मेरी ओर मुड़े।

उनका आतंक बड़ा था। नन्द के लिए कुछ न हो सका। मैं देखता
रहा वह आरड जो रक से रँगा था, जिसने मेरी धरती लाल कर दी।
नन्द के कुल में एक न बचा। चन्द्रगुप्त मौर्य नन्दों की गदी पर बैठा।
चाणक्य साम्राज्यथादी था। उसने पंजाब और गण्डर के गण राज्यों
को मेरे छुट के नीचे ला लड़ा किया। मेरा ऐश्वर्य अब हिमालय की
चोटी से ऊँचा था। मैं विस्तृत साम्राज्य का केन्द्र था।

जब रिक्षन्दर का सेनापति और सौरिया का सप्ताठ देस्युक्त भारत
के पश्चिमी तट पर फिर अधिकार करने हिन्दूकुश लाँघ कर बड़ा तथा
चन्द्रगुप्त ने उसके टक्के तोड़ दिए और अब मैं हिन्दूकुश तक के प्रान्तों
पर शासन करने लगा। हिन्दूकुश से महिपमण्डल (मैदूर) तक मेरी
दृढ़ी बोलने लगी।

नन्द का ब्राह्मण-भक्ति राज्य सिर भी एक काल तक स्वामी के प्रति-
रोध में लड़ा रहा। उसने पद्यन्त्रों की परम्परा श्रांघ दी १८ चाणक्य
के सामने उसकी एक न चली। उसने चन्द्रगुप्त को घालबाल बचा
लिया। मेरे महलों में ये पद्यन्त्र चलते रहे। ऐसे मैंने महापचनन्द
की भा के पद्यन्त्र देले थे, इनको भी देखता रहा।

चाणक्य ने भारत के दूरस्थ प्रान्तों को एक छत्र के नीचे ला लिया किया । चन्द्रगुप्त ने मेरा फिर से निर्माण किया । मेरे नगर का परकोया असाधारण बना, लकड़ी का परन्तु सुट्टा । अब तक मेरा आकार-प्रकार बद्द गया था । मैं अब नीं मील लंबा और पीने दो भील चौड़ा था । द सौ फुट चौड़ी दीस हाथ महरी शोषण के जल से भरी लाई मेरी रक्षा करती थी । उसके पीछे मेरे चतुर्दिक् मध्यूत काष्ठ का परकोटा दीढ़ता था जिसवे पाँच सौ मीटर थी, चौसठ फ्टार थे ।

मुखिलूत हरे मैदान में कृत्रिम मत्त्य-सरों से घिरा चन्द्रगुप्त का राजप्रापाद था जिसको मुनहरी बेलां पर चौंड़ी और रल्ली के पह्ची बैठे थे । चन्द्रगुप्त प्रातःकाल उठते ही यदीनुज पश्चों के दर्शन करता; यदनियाँ जो चचपन में ही अपने गृहीत मान्यता से खतीद ली जाती और राजप्रापादों की शांभा बढ़ाती । सभाट की बी ही शरीर-निकाएँ थीं, वे ही उसके शब्द रखती । चाणक्य का यह विधान था ।

उस राजसभा में मैंने चन्द्रगुप्त के साथ उस प्रीक राजकुमारी को ढंगे देला, जिसे अपनी विजय के स्मारक स्वरूप सभाट ने बरण किया था । सेत्पूर्क्ष का प्रीक राजदूत मेगरथनीज भी वहों आश्र पाता । मेरे यहाँ नियापुर करने वाला वह पहला विदेशी राजदूत था ।

राजप्रापाद के निचले प्रांगण में पशुधावन और युद्ध दोते और मेरे नगर के भीमान पशुओं को बीमरस युद्ध में गिरते देख प्रसन्न होते, उन पर दाँव लगाते । स्वयं चन्द्रगुप्त दाँव लगाने में न पूकता ।

मैंने फिर उस विस्तृत साम्राज्य की अकर्मण्य किन्दुसार के अधिकार में जाते देला । पर उस साम्राज्य की सीमाएँ अशोक के समय और बढ़ी । अशोक ने अपने राजप्रापाद में पत्थर का उपयोग किया । उसने कलिंग-विजय की । कलिंग-युद्ध की भीशस्ता ने उसे नया छद्य दिया ।

मैं भी मारकाट की नित्य के संवादों से कष्ट उठा था। मानवता की इस नई ऊँचाई अशोक को पा मैं पुलकित हो उठा।

अशोक ने राजनीति में एक नए सिद्धान्त की रचना की। प्रजा को सन्तान समझने का सिद्धान्त भारत में जाना हुआ तो निश्चय था, पर या वह धर्म शास्त्रों तक ही सीमित राजाओं ने प्रजा को सदा याय समन्वय कर दुहा ही था। अब अशोक ने एकान लिया कि जैसे वह अपने पुत्र-भूत्रों का इस लोक और परलोक में कल्याण चाहता है वैसे ही वह अपनी प्रजा का भी कल्याण चाहता है। उसके हित में उसने अनेक सुखद कार्य किए। चालाक्य के अर्थशास्त्र और प्रसर नीति को उसने उठा कर अलग रख दिया और मानवता के सिद्धान्तों से शानन करने लगा। अपने उपदेश उसने शिलालिपि और स्तंभों पर खुदबाए। इन्हीं स्तंभों में से एक का भस्तुक वह चिन्ह-शिखर है जिसकी प्रतिकृति आज भारत की राष्ट्रीय मुद्रा है।

सधर्न के प्रति अशोक की यह धारणा कुछ सामाजिक न थी ही कि मैंने उस महाकथ्य को भी रस्त के तमुद में हलते देखा था और यह रफ़त केवल राजनीतिक प्रतिदिनियों का ही न था बरन् तरों भाइयों का था। यह कुछ आसान न था कि सुखीम जो कहा भारे था, अपने दाप से राजदण्ड आसानी से निकल जाते देख सकता यद्यपि उसकी शाकित के ऊपर अशोक ने कुमारायस्था में ही कभी विजय पाई थी। तब अग्रोक उम्मीदी का शारक था, अपने पिता का प्रतिनिधि, और वहमी सुखीम तद्दशिला में पंशिमोत्तर सीमा का अन्तपाल था। दूसरे ऊँचाई और कालिरस्तान के पठानों ने जो सदा से अपने शासकों के विद्वद तलवार उठाते रहे हैं, बगावत कर दी थी और जब सुशीम उनको न सँभाल सका था, तब चिन्दुसार ने अशोक को ही उत्त सीमा-प्रान्त की शासन रखने सींपी थी और अशोक ने यह सिद्ध कर दिया था कि

उसकी बाहुद्वारों में उन प्रान्तों की रक्षा के अर्थ प्रबुर बत था, जिनको कभी उसके पितामह ने सीरियक सघाट सैल्यूक्स से छोन लिया था।

वही अशोक वह था जो अब पाठ्यपुस्त्र की गढ़ी पर था और ऐसा भी पहले कह चुका है, उसकी सारी आखणाएँ अपने पितामह की प्रसर नीति के अनुकूल थीं। उसने भी साम्राज्य बद्धन के सम देले थे, दिन्दूकुरा से कुमारी तक भारत का एकद्वन्द्व सघाट बनने की उसकी भी प्रबल कामना हुई थी और उसने भी अभियान किया था। यह अभियान उत्तर भारत के उस अकेले स्वतंत्र प्रान्त के विरोध में था जिसे पहले नन्दराज ने लूटा रखा था, उस पूर्व समुद्रवर्ती कलिंग के विरुद्ध।

अशोक अनन्त सेना लेकर मेरे प्राचीरों के चौराट द्वारे से भाद्र निकला और उसकी विजयवाहिनी पूर्व समुद्र की ओर चल पड़ी थी। तब मुझे भयानक आशंका हुई थी। मैं मगध का केन्द्र था और प्रत्येक वाहिनी जो बाहर निकलती, गेरो शंका का कारण थी। मेरे प्रभु को धूल न लगे इस आशंका से मैं अवधर उद्दिष्ट हूं जाया करता था। आखिर मगध की राजधानी अब राजगृह न थी, उसकी प्राचीरें कबड्डी बीतन् हो चुकी थीं और शक्ति अब मेरी प्राचीरों के बीचे मेरे अंग-अंग में लिपटी पड़ी थी। अशोक जब चला तब मैं एक बार कौपा न पोकि कालिंगों का बल उसके राजियों ने बढ़ा रखा था और स्वतंत्रता की मर्यादा ने मैदान में अशोक के विरुद्ध लालों की संख्या में जनता को कह दी थी। जब अन्द्रगुप्त ने देश के प्रान्त पर प्रान्त जीते थे तब कलिंग ने उत्कर्ष और घरराहट से उसकी झट्टी साम्राज्य-सीमाओं को देखा था, जिनमें धीरें-धीरे उन्होंने उत्तर प्रान्त समा गये थे—काशुल कांधार से अंग चंग तक, सोज से गिरनार तक, द्रिमालय से मैदूर तक। कलिंग ने किर भी निरतं इति प्रकार की प्रतर नीति का विरोध किया

या। एक शर नंदों से विवित होकर वह फिर स्वतंत्र हो दैठा था। इधर किंदुसार के मरते ही दो भाइयों में युद्ध छिड़ा तो वह फिर एक शर तेवर बदल दैठा और इन्हे स्वतंत्र था। अशोक अपनी विशाल सेना लिए स्वर्ण रेखा को लाँच जब समुद्रतीरी नैदानों में आ रहा हुआ तब लालों की सेना ने उसका विरोध किया। इयिशारवन्द निहते सभी अपनी मान मर्यादा की रहा और साम्राज्य निरांता के विरोध के लिये मैदान में उत्तर पढ़े, परन्तु शिद्धित विनीत मार्ग लेना से लोहा लेना कुछ आसान न था। पर ही एक लाल के लगभग कालिंग मार्ग की नंगी तलवारी पर दौड़ गये और अशोक उनके नगरों में तभी प्रवेश कर सका वह डेढ़ लाल की बच्ची आशादी भी मृत्यु के घाट उत्तर गई। टाई लाल आदमियों का मृत्यु के घाट उत्तर जाना, लालों नारियों का विषवा हो जाना, लालों बच्चों का अनाप हो जाना, अनन्त इयाधियों का घर कर लेना, अपाहिजो गिर्खर्मणों का इत्ततः वितर जाना कुछ ऐसा न था। जिसे मनुष्य घरदारत कर सकता। अशोक के रोमेखड़े हो गये, कातिल की तलवार भ्यान को लौट पढ़ी। निश्चय विजेता ने इतिहाव में कभी अपनी मुँह की न लाई थी। कलिंग हारा पर बस्तुतः हार मार्ग की हुई। अशोक बोलौटा था विमन सब कुछ खोये हुए सा। उसने राजनीति की काया पलट दी, उसने मेरीषोप के स्थान पर धर्मधोष का आरम्भ किया। देश विजय के स्थान पर धर्म विजय का।

परन्तु सब धर्मों के लिये जो उपकी उपादना जगी तो इतनी तीव्र थी कि उसे मात्राओं और सीमाओं का ज्ञान न रहा। उही उसने पशुवध अपने साम्राज्य में बन्द करा दिया और यह धोषणा सबसे प्रथम उत्तरे मेरे राजप्रासाद में अपने भोजनालय के सम्बन्ध में ही प्रचारित की। परन्तु शीद धर्म के प्रति अपनी आलक्षित के कलस्वरूप उत्तरे संघ

को इतना कुछ दे डाला कि उसका मन्त्रिमंडल सहसा घबरा उठा । मुझे आज भी याद है, राजप्रासाद के पिछले प्रमद बन में जब वह एक बार विमन बैठा था, तब उसके मन्त्रियों को मजबूर होकर उसकी शक्ति की सीमायें निर्धारित करनी पड़ी थीं । मन्त्रिमंडल को इसकी परवाह न थी कि राजा किस घर्म का उपासक है, किस दर्शन का जिसासु, परन्तु प्रजा को गाढ़ी कमाई से अर्जित धन वह इस प्रकार लाया होते और कंके जाते, न देख सकता था । प्रधान मंत्री राजगुप्त ने सम्प्रति की सहायता से वह विपुल धनराशि लंधाराम के कोषकों में दान कर दिया था । राजगुप्त जब प्रमद बन में पहुँचा तब निज और लूँध मणिधराज और स्वेच्छाचारी चन्द्रगुप्त का उदाच धीर अशोक बैठा आँखिला ला रहा था । राजगुप्त पर दृष्टि पहते ही उसने जो कहा वह आज भी मेरे कानों में गूँज रहा है—“राजगुप्त, राजा कौन है तुम या मैं ?” “मैं साम्राज्य का दुर्ज सेवक हूँ, सग्राट, भला मैं उसका स्वामी कैसे हो सकता हूँ ?” राजा का विवर्य मुख और धूमिल हो गया था जब उसने कहा—“राजगुप्त मुझे यह आधा लाया हुआ आमलक तक छिसी को देने का अधिकार नहीं किर राज्य का ल्वाभित्व करा मेरे ऊपर अंग और अट्टास नहो !” राजगुप्त जानता था कि लंधाराम के प्रति दिये विपुल धनराशि का अवरोध ही राजा के इस लांभ का कारण है और वह चुपचाप पार्श्वद्वार से निकल गया था । वह सब मैंने देखा और मुना पर जो आगे पठा वह सदा अनदेखा था और मैंने उसे भी चुपचाप देखा और सहा ।

अशोक के उपदेश बनता नै अनेकासा में अंगीकार किये पर राजनीति उपदेश से रक्षित नहीं होती । राज्यलक्ष्मी को सजल बाहुओं का दोला चाहिए जो उसे उछाले और किर निर्भावता से अंचलत कर से । साम्राज्य की चूलें दिल गर्दे । दूरवर्ती प्राप्त आन्वरिक शासन

में सर्वथा सततच हो गये, अशोक के पोतों दशरथ और सम्प्रति ने चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के दो टुकड़े कर लिये। सम्प्रति ने परिचनी छोर बैंगला, दशरथ ने पूर्वी। सीमाप्रान्त पर विदेशी सेनाओं की धनक मुन पहने लगी थी। मैं केवल मगध का ही दृश्य न था, वहिं मेरी गिराओं में अलएड भारत का रस्ता भी प्रवाहित होने लगा था जिसे मैंने न पहले जाना था न पीछे। शहित न चाहता हुआ भी जब उसे पा जाता है तब रक्षा का स्वाद पाये तिइ की भाँति वह उसे छोड़ना नहीं चाहता। शक्ति का स्वाद मैंने चला लिया था, दिन्दुकुश की दीवारी और पासीर की छत से लगी मेरी सीमा थी। उस पार की राजनीति को मैं अत्यंत उत्कण्ठा से देखता था। उस पार की नीरवता मुझे कमर करने को लालायित करती थी, सेनाओं की धनक भय का आभास करती थी।

परन्तु अशोक की राजनीति ने तलवार के प्रति जिस उदासीनता का अँकुर रोपा था उसने रक्षा की छाया हिन्दूकुश के प्रान्तों से हटा ली और उसके हटते ही विदेशी दानुओं ने भारत की ओर अपनी लालच भरी टहि की। जिस सीमा पर चन्द्रगुप्त ने सेन्युक्त के टखने तोहँ दिये थे, वही उस सीरियक सद्वाट के प्रतिनिधि प्रशीत्र ने ग्रीकों का विजय भंडा गाढ़ दिया। काकुल का रींदता वह तिन्हु के मैशनों तक उत्तर आया और मेरी नसों का रक बूल चला। अगर वह बढ़ता चला आया होता तो कुछ अजब न-या कि मगध का केन्द्र मैं पाठलिपुत्र सर्वथा उसका हो गया होता और हो भी गया, यद्यपि उसका नहीं, उसके दामाद का।

सम्प्रति गुजरात काठियावाड़ में बैन धर्म में प्रजा को जबरदस्ती जब दीक्षित कर रहा था तब याहलीक (बैकिर्या—जालबी—बलख—वद्वर्या) के राजमंच पर एक नया नाटक खेला जा रहा था। सौरिया

के साम्राज्य से पार्थव और वारुणी के दोनों वैदि प्रान्त स्वर्तन्त्र हो गये थे और वारुणी के राजतिहासन का शीघ्र ही सामरिक पर्यटक यूयिरेसों ने रवायत कर लिया था। सीरियक सम्भाट ने उस पर अनेक आक्रमण किये परन्तु उसके पुत्र दिमीत्रिय के रथशूरता के कारण उसे हारना पड़ा था। इसी दिमीत्रिय को द्वितीय श्रीक देमित्रियस और भारतीय दिमित कहते थे उसने अपनी बेटी ब्यादी आर अपना अपमान भुलाने के लिये वह हिन्दूकुश पार कर उत्तर की उपत्यकाओं में उत्तर आया था। सीरियक सम्भाट तो अपने आधार से दूर शत्रु के देश में कुछ करन सका और उसे शीघ्र स्वदेश लौटना पड़ा परन्तु अपने दामाद के लिये उसने विजय का मार्ग अनावर्त्ती कर दिया। दिमीत्रिय हिन्दूकुश को लौंग भारत की विजय के लिये तब चला, जब पश्चिमी भारत की प्रजा सम्प्रति की धार्मिक तब्लिक की ऐनी चोटों से कराह रही थी। कुछ आश्चर्य नहीं कि उसने विदेशी दिमीत्रिय को ऐव प्रेति 'धर्म मोता' कहा जिस संशा से गार्मी-नंहिता के युग पुरायकार ने उस विदेशी विजेता का चरित्र लिखा।

अब तक सम्प्रति और दशरथ मिट चुके थे। मौर्य साम्राज्य के प्रान्त विस्तर चुके थे और मगध का हिलता साम्राज्य सेंभालने की शक्ति मुझमें न रह गयी थी और न मेरे अभिभावक शोमशर्मा में ही जो अपने पूर्वजों के शक्तिमान विजिगोपा पर उत्कृष्ट घंग था। नारी और बूढ़ सेवन ही उसके व्यवन थे और पुरोहित से छीना भयटी उसकी निडा थी। दिमीत्रिय ने पश्चिमी पंजाब में अपनी तेना के दो भाग किये। एक को अपने दामाद मेनामदर के नैतृत्य में उसने पूर्व की राह से मेरी और मेजा, दूसरा भाग स्वर्य लेकर सिन्ध देश और गुजरात जीतता वह नगरी (मध्यामिका) में आ धमका। पर्वतलि ने दोनों भयानक पद्धतियों की अपने 'महाभाष्य' में प्रतिष्ठनि की—अरुणद-

यद्यनः साकेतम्, अरुणाद् यथनो माध्यमिकाम् ! दोनों ओर से चिमटे की गति से प्रीक दिज्जयचाहिनियों ने मेरे प्राचीरों में प्रवेश किया । तभी सोमशर्मा ने राजगिर की पार्वतीय प्राचीरे लाँध गया के मदा-कान्तार में शरण ली और पुरोहित सेनापति पुष्पमित्र ने अपने पौत्रिक विदिशा की राह ली । मैं असहाय अरवित मुंह के बल गिरा और मेरी सहकों पर मृत्यु की विमीणिका नम हो नाच उठी ।

विदेशी सचमुच 'धर्म मीत' होकर न आया था और जो कुछ उत्तर किया, वह मेरे कहने की बात नहीं युग पुराण के पृष्ठों को बात है । अब वह मीरों के प्रशस्त मगध साम्राज्य की रीढ़ टूट गई थी और अंग प्रस्त्यंग पिछर चुके थे और यदि कहीं कुछ जान बाकी थी तो उसी कलिंग में जिसे पहले नन्दराज ने, किर चन्द्रगुप्त ने, और किर अशोक ने कुचला था । कलिंग के बाहर चेदि वंश ने उत्तर देश की जीमायें नदे तिर से मुट्ठद की थीं और जैन सारवेल ने एक और सातवाहनों से श्रीर दूसरी ओर मगध से कफ्ल लोहा लिया था, परन्तु उसने अपने हाथीगुम्फा के अभिलेत में जो यह खुदवाया कि उसके मगध की राजधानी की ओर बढ़ते ही 'योनराज दिमित' मधुरा भाग गया लगे हैं नितान्त निष्ठा । युके यह बढ़ते आज दुख होता है कि भारतीय साम्राटों ने जो अपनी प्रशस्तियाँ खुदवायीं उनका केवल निष्कर्ष 'सत्य था अधिक्तर झूठ प्रशस्तात्मक' । भुक्त भोगो होने के कारण यह युके भलो भौंति याद है कि दिमित के स्वदेश लौट जाने का कारण महामेघवाहन सारवेल का अनियान न था यरन् युप्रकेतिद की दुरभिसंभवी थी । बालुओं का चिह्नासन दूना पा युप्रकेतिद ने उसे दहर लिया था और पश्चिमी पंजाब में दिमित की राह रोके उसकी प्रतीक्षा में अब वह खड़ा था । दिमित स्वदेश न लौट सका और बालुओं की गदी नव अपनी पत्नी के उसने खो दी ।

परन्तु 'भारत के राजा' इस दिमित ने जो कुछ स्वदेश में खोया, उसके

कही बदकर इस विदेश में पाया । यद्यपि मैं उसके हाय से सहसा और शीघ्र निकल गया तथापि सिव्य और पंजाप में उसके छाने के शास्त्र केन्द्र ग्रीकतादा में सदियों पनपते रहे । शाकल में जिस भीक राजकुल का उसके जामाता भेनामदार ने प्रारम्भ किया था वह यद्यपि पुष्यमित्र की कोधारिन में स्वाहा हो गया परन्तु उसने निश्चय भारतीय संस्कृति पर अपनी गहरी छाप छोड़ी ।

और यह पुष्यमित्र कौन था । पुष्यमित्र शुंग, ब्राह्मण लक्ष्मिय संघर्ष का एक मात्र पुरातन प्रतीक । अनी मैं विदेशी भारकाट के फलस्वरूप रक्त से रंग ही था, मेरे शरीर से, सड़कों गलियों से चिरायद की गंध आ रही थी कि एकाएक स्वदेशी तलवारें ही नंगी हो एक दूसरे से लिपट पही । मीयों का अंतिम वृहद्य साम्राज्य का वह वंशभर था जो अबतर उनकी रीढ़ दृढ़ जाने पर छांग हुआ करता । परन्तु उससे बदकर वह उस शृंखला की अंतिम कही थी जिसकी परम्परा को बनते बिगड़ते मैंने अपने आँखों देखा था जो अनेकांश में घटना के रूप में मेरी छाती पर ही थी था । ब्राह्मण लक्ष्मिय संघर्ष आज का नहीं पुराना है, तब का जब मेरा जन्म भी न हुआ था, जब आयों ने अभी यमुना भी न लौटी थी और जब वे अभी सत सिम्बु से समस्ती तक मैदानों में झूम रहे थे । वशिष्ठ और विश्वामित्र के विरच्यारी संघर्ष को परशुराम और कार्तवीया-जून ने बढ़ाया था, उसकी कथा पुरानी है, मेरी अनदेखी, केवल सुनी और मैं उसे न कहूँगा परन्तु निष्ठ ऐतिहासिक काल में महाभारत के जनमेजय और तुरकावयेष के भी बाद जां उस संघर्ष की एक नव व्यापी शृंखला चली उसको कहियो नेरे ही वह पर निर्मित हुरं, यह मैंने आनी आँखों देखा ।

भुद और महाबीर ने मेरे ही आप वाप मेरे उठते प्राचीरों से पूर्व अनेक बार उस ब्राह्मण शक्ति को चुनौती दी थी जिसमें ईश्वर, वेद, संस्कृति और पौरोहित्य प्रवल्ल थे । वह और पौरोहित्य को उन्होंने अनुचित बता

अहिंसा का प्रतिराजन कर द्रष्ट द्वेरा किया था, वर्णाधिन धर्म की उन्होंने इतिही कर ढाली थी, वह कुछ इन्हुत पुरानी शात नहीं, मेरे जन्म के कुछ ही पूर्व की है। शूद्र नन्दी को ज्ञातियों के विद्व ब्राह्मणों ने लड़ाकर जो अपने नीति के बुरे में जोता था वह अपूर्व साहस और विलक्षण भेदा का जान था। परन्तु शीघ्र ही उस उडते हुए भेद ने जब ज्ञातिय को कुचल कर ब्राह्मण की आदि शक्ति पर भी अपना बार किया तब ब्राह्मण ने ज्ञातिय के साथ सिरकत की, साम्भ, पर ऐसा साक्षा, जिसमें ज्ञातीय दुर्लिख हो ब्राह्मण के छाए में गिरा था। समर्थ चाणक्य की छाया में खड़े होने वाले विश्व चन्द्रगुप्त की यदी नर्गदा यी जिसको नित्य-प्रति शक्ति और कवलित होते उसके राजप्राचार के प्रकोशो में मैंने दिन दिन सुना।

सीमाप्रान्त से आकर मेरी नगरी में चाणक्य ने जो देश डाला था उसका कुछ अर्थ था, यह व्यर्थ दूरपिज न था। संपर्क देशव्यापी हो गया था और सीमाप्रान्त के पठान ब्राह्मणों ने अनेक घर मेरी शरण ली थी। चाणक्य ने जब चक्रिय को विजय सर्वपा आहत कर लिया तब उसने अपनी कुटिल नीति की विस्त्रित कौटलीय अर्थशास्त्र में दृढ़ भ्यास्या की। ब्राह्मण तेजस्वी हुआ, चक्रिय को उस शास्त्र में यथोचित स्थान मिला, ब्राह्मण की छप आया में, परन्तु इतरबर्ग, यिरोपतः निम्न-वर्ग कुचल गए। चाणक्य ने उनकी कशाल किया कर दो, क्योंकि उसने समझा कि जिस शूद्र वर्ग को शक्ति ब्राह्मणों ने चक्रियों के विशद मरण में प्रतिष्ठित की है उसकी ओपी उठकर विशिष्ट वर्ग को निगल जायगी और उसका अन्त आवश्यक है।

उधर यद्यपि चन्द्रगुप्त तो अस्त हो गया परन्तु चाणक्य का दूर्ये भी तिरोहित होने से शोप न रहा। पुरोहित-मन्त्री की पकड़ ढीली पदत्रे हो चुक्रीय राजा स्वतन्त्र हो गया और अशोक ने तो राजनीति की काया

पलट ही कर दी, फिर तो निःशंक राजभंसला ने मगध की सीमाओं के भीतर और भीतर मेरे बढ़ पर अग्निभाँड़ ही उक्त दिया। धीरे धीरे जो ब्राह्मण मुत्तुग रही थी, वह एकाएक दिमित के सौटने पर भदक रही। मौर्यों का अंतिम वैश्वर वृहद्रथ ब्राह्मण पद्मवंत का शिकार हुआ। कुछ दिनों पहिले पद्मवंत की शृंखला को बढ़ाने के लिए आप्रतिम प्रतिभावान ब्राह्मण पतंजलि गानदे—गानदे से पाटलिपुत्र आ चैठा था, पाणिनि और ब्राह्मण की तरह। वही इस पद्मवंत का प्राण था जिसका केन्द्र उसने वृहद्रथ के पुरोहित सेनापति पुष्पमित्र शुंग को बनाया। पतंजलि निरादाशनिक या ध्याकरण भाष्यकार न था वरन् वह धीरी हुई ब्राह्मण शक्ति और अर्थवेद का पुनरावर्तक भी था। अपने महाभाष्य में उसने विदेशी सेनाओं को घमक की प्रतिष्वनि हां नहीं उठाई थी उसने उनको गुना भी था, और याद में होने वाले पुष्पमित्र शुंग के अरथवेद का वह अनुलिप्त भी शाग था। महाभारत के जनसेन्य और तुरकावयेष के यजमान पुरोहित के संघर्ष की बात मैंने केवल हुनी थी, अब वृहद्रथ और पुष्पमित्र शुंग के यजमान पुरोहित संघर्ष को मैंने अपनी आँखों अरने ही मैदानों में घटाते देखा। प्रातःकाल जप थाल रथि लितिज से लाल उठ रहा था तभी जब वृहद्रथ सशंक मन से आ प्राचीर के कैले मैदानों में अपनी सेना का निरीक्षण कर रहा था तभी छुले आम सेना के सामने ही सेनापति पुष्पमित्र ने बाय द्वारा स्वामी का रुधिर-पी लिया। फिर एक चार ब्राह्मण पुरोहित ने लक्ष्मिय राजा पर विजय पाई और यह कुछ आरचर्य नहीं कि जप शुंग ब्राह्मणों ने मगध का राजदण्ड सौंपा तो करव-ब्राह्मणों को और करव ब्राह्मणों ने जो दूधरों को दींगा तो दाविद्यात्म सातवाहन ब्राह्मणों को। इसका अर्थ है, प्रशुर रहस्य कि एक समय में भारत की आलमुद्र पृथ्वी सर्वथा ब्राह्मण सभाओं के शालन में आ गई। विष्य शृंखला के दक्षिण और बाह्यनों के हाथ में, पूर्व का कलिंग चेती-

वैशीय ब्राह्मण लाखवेल के हाथ में, और समस्त उत्तर भारत नमंदा से लिया नदी तक शुंगों के हाथ में आ गया।

ऊर्जस्तित वह बाले पुष्पमित्र को खाली के ऊर्ध्वे रक्त से अपने प्रश्न ललाट पर राजतिलक लगाते मैत्र देखा, मौर्य साम्राज्य को विनष्ट हो ब्राह्मण की चक्रधुरी के नीचे पिलते मैत्र देखा, और देखा मैत्र उसके भग्न लूप पर पुष्पमित्र का विशाल साम्राज्य लहा होते। लाली को मार कर पुष्पमित्र ने अश्वमेध किया, देववाणी संस्कृत को यजप्रद दिया, यज्ञ को सम्मानित कर उसने पीरोहित्य को पुनः प्रतिष्ठा की और विज्ञान की नई सृष्टि कर उसने उसे धर्मशास्त्र की संस्कार प्रदान की। उसे पीछे आने वाली भारतीय संतति ने मानव धर्मशास्त्र कहा परन्तु न तो वह मानव था न धर्मशास्त्र। भनु की भेषण चतुर्गुवैदिक स्तरों में ही कषकी विजुप्त हो चुकी थी। परन्तु ब्राह्मण की ही दी हुई उसकी आनन्दतिक परम्परा थी, वह पहला मानव नुगति था और उसकी परम्परा रसृतिकार ने किर भी कायम रखनी चाही, कुछ उसी सर्वक कुटिलता से जिसते चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को शशनी छाया में लिया था। चाणक्य का चन्द्रगुप्त से आशंका हो सकती थी, जब तक हुई भी और उसने उसे 'बृशल' कहकर युद्धारा भी परन्तु पुष्पमित्र और पर्तजलि को—अशारीरी मनु-प्रतिनिधि को—उस कृत्रिम मनु-कृत्रीय का भी ढरन था। और मनु की रक्षा में आवाज किसी गूँजी। भग्न ब्राह्मण की जिसने शुरु मनु के शब्दों का युर्नउद्दार करने का प्रयत्न किया। यह कैसे मैकियानैली का असंगत भाष्य फ्रेडरिक भरान लिखने चला हो।

निश्चय यह धर्म शास्त्र मानव न था, भाग्य था, ब्राह्मण था और जो सोचता हूँ वह धर्म शास्त्र था, तो अपनी आँखें मैं आप मीच लेता हूँ, हृदय की गति रुक जाती है। यह वाक्, परम्परा, बागाड़म्बर मूर्तिनान हो सकते लहा हो जाता है, जैसे उसे उद्देश देत रहा हूँ, उसकी वाणी मुन

रहा हूँ। धर्मशास्त्र १ उस धर्मशास्त्र में जनसंख्या के चतुर्थांश के पक्ष में अपना निर्णय दिया, दाव-शास्त्र बनाया। तिगुनी जनसंख्या के अधिकारों पर उसने स्पाही पोत दी, शीमानों और सर्वणों के पाप के मूर्तिमान स्कंध के स्वर्ण में अनेक अनेक जातियों उठ साही दुर्द यी, जिनको अनोखा कह कर उस धर्मशास्त्र ने अपने विषुले अप्यायों में गिनाया और भारती का मुख काला किया। यह सम इती नेरे ही नगर में दुआ। येरी ही खाती पर, येरी ही आँखों के सानने। अनुचित, अनन्त मात्रा में अनुचित होते मैने देखा और सुना है, परन्तु उस प्रकार अनुचित को धर्म की सांप कहते मैने अप सुना। सुनकर कौप गया। परन्तु येरा कौपना निजीब का कौपना था, मिट्टी का जो भूत है, गत है, निष्प्राण है अचेतन है—उसके कौपने कीहकीकत क्या १ पर वह न कौंगा जो चेतन था, जिसमें प्राण थे, जो प्राणियों के लिये संविधान रच रहा था और जिसकी भावुकता का मानव आदंता का मानवशब्द होना था ।

अश्वमेघ हो जुका था। ब्राह्मण धर्म और देव भाग की प्रतिडा हो जुकी थी, धर्मशास्त्र की मर्यादा देश के एक भाग से दूसरे तक सुरक्षित हो जुकी थी, परन्तु आदृत् द्वन्द्वीय और मर्यादित संग अभी अवतर की प्रतीक्षा में दुश्के पड़े थे। मेरे नगर के विशाल संघाराम के निष्ठुत कोष्ठों में स्थितियों के छिपे प्रवचनों में ब्राह्मण-दस्यु के विशद जस्ता होती जो और और आदेश बन गई। नागसेन ने शाकल के बीक मैनामदर को अपने असाधारण तर्क से निरक्षर और मुग्ध कर थोड़ धर्म में दीदित कर लिया और उसे प्रेरित कर वह मगध पर चढ़ा लाया परन्तु मेरे नगर पर इस काल शोमशर्मा अपवा वृद्धप का शासन न था जिन्हे मैदान काटता था, तलवार से डर लगता था वर्ण, पुष्पनित्र का शासन था तलवार जिसके गले का हार थी और रक्तताएँ विसुके नित्य का व्यतन था और जिने सेना के साथ अपने शाश्वत लम्बन्ध के कारण अपने को

सदा 'सेनापति' का अभिलेखों तक में, कभी उस लग्नाट शब्द से संबंधित न होने दिया जिसकी भर्याद्य शोभाशामी और दूरदृष्टि से अपने संपर्क से कलंकित कर दी थी। अयोध्या से उठकर गंगा की धाटी में शाकलपति मेनामदर से पुष्पमित्र जां जा टकराया तो दिमित के जामाता और धोद धर्म के अभिभावक उस प्रीक महान वृत्ति के शब्द ने जमीन छाड़ ली। तिर प्रविशोद की तत्त्वावधार की और मगध राज मेरे नगर से जलन्धर तक के सारे विहारों को अग्नि की समर्पित कर दिया। देश-द्रोह के अनन्त पीठों की इस प्रकार भस्माहृति हुई और विजेता ने शाकल (श्वालकोट) में वांशषा को—यो में अवश्यशिरम दास्ति तस्याहै दीनार-शतम् दास्यानु—जो मुके अवश्यों का एक तिर देमा उसे मैं सोने के सौ दोनार दूँगा। इहके बाद वहे हुए शमु को देश से वर्द्धित करने के लिये दूसरा अश्वमेष हुआ, जिसके अश्व को लिये 'सेनापति' का पौत्र वसुमित्र सिंहु नद तक जा पहुँचा और तै ल्पूक्स की सीमायें किर एक बार अपने आधार से उठाकर, मैने दूर पश्चिम में देखी। मेरे गोत्र का यह नया वितान तन रहा था। पुराहित राजा शोणित से रमे लड़ा से अपनी कोर्ति कथा भारत ब्रह्मुंधरा पर लिख रहा था।

इसके बाद जो बाटा वह अमानुषिक है, उसने दिमित के अश्वारोहियों की याद दिला दी, उनकी याद बस्तुतः इत नदी अनुभूति में खो गई। चीन के कान्तु प्रान्त से हूँसों की अर्धी उठी थी जिनके टकरा जाने से कहरी परिचम भागे थे और दजला-करात के किनारे लड़े शकों के साक्षात्य उन्होंने चूर चूर दिये थे। एक जो भागे तो बाल्की और मर्द का रीदते हिन्दूकुरा की ऊँची दीवार को लाँघते सिंहु देश में उत्तर आये थे। उन्होंने ही पिछले काल में सिंध, ददशिला, मधुरा, उड़जैनी और महाराष्ट्र में अपने पाँच राजकुला लड़े किये, उन्हीं में से पहला विजेता आमलात था। अपनी लाल लाल आँखों के कारण वह लोहिताक्ष कहलाता था।

पंजाब, मध्यदेश लौंगता मगध के दूरवर्ती अंतराली को अपने रथ के गदियों से बोधता भेरे नगर में पहुँचा और जित रक्त तारपथ का उतने भेरी छाती पर अम्भाल किया वह मैं न कह सकूँगा, उत्तरी याद भेरे रौंगटे खड़े कर देती है। जिस युग पुरायाकार ने दिवित के रणनीतक का इतिहृत लिला था उसी ने इह नरवंशार को कथा भी कही—राजा बिलर गये, प्रान्त बिलर गये, बल्लाभम धर्म नष्ट भष्ट हो गया, शहद आचार्य बने, ब्राह्मण द्वाष। बहुत पहले इतानियों और ग्रीकों के स्वर्ण और शासन से अग्रवन होकर ब्राह्मण शास्त्रार्थी ने समाज की नई व्यवस्था की थी। संस्कारों ने मनुष्य का आदि-अंत बोध दिया था और उनके विधान उन्होंने दूनबद किये थे। भारतीय नन्द-शरदी और अभ्यारतीय ग्रीक-वर्वनों ने उसे छिन-निन्ह कर दिया था। चाण्डीय, पर्तजलि और पुष्यमित्र ने शूद्रों को अपनी प्रदृष्टि से यथास्थान कर हिर धर्मशास्त्र रखे थे और पौच्छे अध्याय में मनु की ध्यारुप्या सहित आचार की यो, प्रायिक्चित का विधान किया था। उसके सारे पक्षे शकों की इह नई आँखी के सामने उड़ गये। उसके पक्षों से अपने दूतों का सुआते भेरे ही नगर में मैने शकों को स्वयं देला। भेरे नगर की सड़कों पर मारग नागरी अव देखने को भी न भिलते थे। चारों ओर खियों का ही राष्ट्र हो गया, मैने पागल कुएँ के कुएँ भुक्ता और परित्यका नारियों को घृपते देला। चौप बीस नारियों को एक एक पुरुष छुतते देला और वह पुरुष भी भया था सोलह वर्ष का शालक। नारियाँ ही हल जोततीं, बाहर इच्छर-उच्चर रक्षा का प्रश्न्य करतीं। देश धिनव था, नागरिक भयान्ति थे। शकों ने जिस कठोरता से मध्यदेश को रौंदा और मेरो सड़कों पर मृत्यु का वृत्त किया, वह मुझे कभी न भूलेगी।

लोहिताद्य अमलात का हमला थात्व में अपना मुलाया हुआ हमला था। इसमें संरेह नहीं कि मध्य शृण्या के क्षुब्ध वातावरण में

प्रलय की एक लहर हिन्दुस्तान पर तोड़ दी थी परन्तु उसको किर भी भारत सँभाल सकता था यदि उसकी अपनी रियति स्वयं चिंताजनक न होती। शुद्धों का निष्कर्षा काल कुछ श्रद्धुत श्रोजस्ती न था। अग्रिमित्र और वसुमित्र ने तो किसी प्रकार दानाराज्य की सीमाएँ यथापत रखीं और भागमद्र के शासन काल में तद्विशिला के प्रीक दृपति अन्तलिलिद ने अपने राजदूत 'तेलिश्रोदोर' के द्वारा भागध शुंग सम्भाट की मैथी भी माँगी परन्तु सच तो यह है कि तब तक शक्ति का आनास मात्र बच रहा था और मगध की सीमायें धीरे धीरे 'मूल' की ओर संकुचित होती आ रही थीं। एक बार फिर मुझे अपनी काव्य सनेठनी पही। शुद्धों के अंतिम लेख बंश भर देवनृति को उसके ब्राह्मण मन्त्रो करव वामुदेव ने अपनकाल में दासी द्वारा मरवा डाला। किर स्वयं उसने मेरी गही पर अधिकार कर लिया। परन्तु यदि पुहदय 'मतिहादुर्ध्वं' या तो करव भी किसी कदर उदास न थे और जो परन्ता शुद्धों के साथ धटी थी वही उनके साथ थटी। शोध सातवाहन निमुकशात्कर्णी ने राजदृढ उत्तरके हाथ से छीन लिया और उत्तरारथ शोध दक्षिणपथ का निखारी दुआ। दूर की तलधार उत्तर की कहाँ तक रक्षा कर सकती थी जब दुर्दान्त इमैले सानरिक मध्य एशिया से उच्छ्वलकर हिन्दू कुश के पास उत्तरारथ में आ लड़े हुए थे। उत्तर भारत की सामाजिक रियति अत्यन्त भयावह हो उठी थी, ब्राह्मण द्विषियों का पात्स्वरिक यैमनस्य देश के प्रति उदासीन होता जा रहा था और प्रजा जितनी द्वितीय राजा की क्रता से पिती जा रही थी, उतनी ही ब्राह्मण शास्त्रकार के विषानों से। जैनेचल अब जनचल न रह गया था। विदेशी शत्रु का सामना करना वर्गविशेष का दाम रह गया था। चात भी सही थी, शासन चाहै ब्राह्मण का हो चाहै द्वितीय का, चाहे विदेशी ल्लेज्ज का, निम्न वर्ग विशेषकर शृद्र व अन्त्यजों को तो उस विधान की धूटी में नितना ही था, इसलिये उनके

लिए शारक क्या स्वदेशी क्या विदेशी ? स्वाभाविक था कि जब शक अमलात आया तो प्राच्य प्रान्त के निम्न वर्गीय और निम्न वर्गीय जनता सिर झुकाती गयी, सिर झुकाती ही न गई बल्कि उसने खुल्लम-खुल्ला उनका स्वागत किया । उनकी ओर से वे स्वदेश के विशद लड़े भी । भारत के इतिहास में यह कुछ अजब बात भी न थी । मुझे याद है जब प्रीक सिकन्दर ने पञ्चाब में ब्रह्मद्वार उठा दिया था और जनराद के जनराद उसे आरप्सन्वर्षण करते जा रहे थे, तभी पंजाब में अनेक गणतंत्रों ने पद रोप कर उसकी गति रोकी थी और रोकते रोकते वे विश्व तक हो गये थे । परन्तु प्राची था विशाल मारव ताम्राच्य आँखें मीचे उसे दूसरों का भय समझ चुरचाप पढ़ा था । ऐसा भी नहीं कि वह सोता था । नितान्त जागरूक था वह, परन्तु उसने इसे अपनी विषद न समझी । उसने सोचा, जब सिकन्दर सतलज के पार उतरे तब कहीं वह राजशाही से कुलोच भरे । और इसी बीच जब कठोपनियद के प्रवर्तक कठों का गणतन्त्र सिकन्दर से जूझ रहा था और प्रीकों के जात के लाले यह गये थे, तब पश्चिमी पञ्चाब का एक विराट सैनिक सिकन्दर की ओर से अपने भाइयों के विशद लड़ रहा था । निःखन्देह यदि उसने देशद्वादिता के योग से सिकन्दर की बीठ पर हाथ न रखा होता तो पता नहीं वाबुल की समाधि उस प्रीक विजेता की कठों के देश में होती या मालबी की ? यह सैनिक भारतीय इतिहास के उत्तर विन्दुओं में गिना जाता है । उसका नाम पौरब था—प्रीकों का पोरस जिसका नाम इतिहास में स्वतन्त्रता के नाम पर ब्यंग है । अस्तु ।

आमलात लौट गया, परन्तु जिस सामाजिक व्यवस्था को उसने छिन्न भिन्न कर दिया था उसकी साथ एक बमाने तक न लौटी । महाभारत के श्रोजस्वी संगों के पाठ देश में होते रहे । गीता के प्रबन्धन करियर केन्द्रों में सीमित उत्साह का बहुन करते रहे । रामायण

का नव सामाजिक विवान जहाँ तहाँ नये विद्वान्तों का प्रचार करता रहा। नवीन आचरण को मोह और उरकएठा से लोग देखते रहे परन्तु विपक्ष आर्थिक और दामाजिक क्रान्ति ने जो पुरानी व्यवस्था के बहुत तोड़ दिये थे तो वह तिथि तिर नहीं लौटी, नहीं लौटी। प्रीकों के बाद शक आये। शकों के बाद कुपाण और दिर शक, दिर हूण। यह विदेशी ताँता लगा रहा। भारतीय प्रजा कुचली पिसी जाती रही थी। शीत बीच में नागों, बाकाटकों व गुमों के दाम्पाज्य लड़े होते रहे परन्तु सामाजिक शक्ति और जनवल नष्ट दो जाने के कारण उनकी ऊँचाईयाँ आने वाले हमलों में खो गईं।

श्रीक, शक और कुपाण। प्रीकों का लोहा किस तरह बजा यह मैं कह चुका हूँ, शकों का प्रवर्यड आगमन कितना भयानक था, यह भी मैं कह चुका हूँ। अब कुपाणों का सुनिये। कुपाणों की प्रशस्त जाति का नाम शृंशीक था, शृंशीक जिनको हूणों ने पश्चिमी ओन से शकों पर बैंका था जिससे टूट कर शक धाराएँ हिन्दुस्तान पर विलर पर्दी। उन्हीं शृंशीकों की पाँच जातियों ने आखंडी में अपने खूनी छेरे ढाले थे। इन पाँचों में प्रथलतम जाति किदार कुपाणों की थी। कुचुल और बीप नारी आरी से उसक नेता हुए और उन्होंने एक और ईरानियों हे लोहा लिया, दूसरी ओर हिन्दुस्तान की देशी विदेशी कीजो पर अपनी तक्षबारे बरसायी। जब कनिष्ठ पुरुषपुर भी गहों पर बैठा तब हिन्दुस्तान से उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों की ग्रीक और शक सरगर्मी भी काफ़ूर हो गई। काश्मीर और खुतब पर अपनी विजय के हाथ फेरता हुआ मधुरा की और पूर्वी पंजाब, पश्चिमी संयुक्त प्रान्त तथा उत्तरके पूर्वी इलाके एक के बाद एक आत्मसमर्पण करते गये। यगां जैसे शाही संघावार टूट कर विलर गये। अयोध्या और काशी के अन्तर्वालों ने मेरे नगर में शरण ली। मैंने भी भयाहुर हो मस्तक उठाया। शायद अनागत भय आगत

भयों की परम्परा से बिरोग हो पर सन्तोष है, कि जो हिताद अमलात की बठना तिर मेरी लड़कों परन थठी। निश्चय आकरण का संवर्धन जिस खूनी बातावरण को विजित राजवानी में प्रस्तुत कर देता है, उसकी लोट से मैं उद्दिष्ट हुआ, निश्चय मेरी सहकरणी पर रुचिर की धाराएँ चढ़ी, निश्चय नृशंसता के प्रमाण विदेशी सेना ने जहाँ तहाँ दिये, परन्तु अधिकतर वे विजेता के आमेन थे। कुशलों का अप्रणीत कनिष्ठ वद्यपि खड़ग की मूठ से अपनी कीर्ति कथा लिखता था, यद्यपि उसने काङ्गल और काश्मीर की घाटियों में आमने अवरोध का प्रतिकार विजित के रक्तसनान से किया था, यद्यपि उसने वह और यारकन्द की जीनी सीधा के राज्यों में अग्र भाँड उलट दिया या परन्तु निःसन्देह मेरे प्रति उसका आचरण सर्वथा सांकृतिक था। उस दुर्धन्य सामरिक के अन्तर में एक नये धर्म के मोह में जिग्ला उत्तम कर दी थी। मध्य एशिया के अनेक जीनो, तुक्की और ईरानी धर्मों का प्रशंसक होकर भी और तलबार की मूठ जकड़े रहने पर भी उसने बुद्ध के उपदेश मनोनीत किये थे। श्रीद धर्म का असामान्य दार्शनिक कवि और भिष्म अश्वघोष मेरे नगर में निवास करता था। अश्वघोष जो दार्शनिक प्रवचन में, काव्य वस्तु कथा में, नाट्य में अगतिम था, वही कनिष्ठ के आगमन का कारण हुआ। वही उसके प्रशास का आकर्षण था। और हमारे नगर की तो वह सर्वथा थी था। क्या बीद, क्या बाल्य, क्या जैन, सारी संस्कृतियों का वह निषोद पा। उनका एक मात्र लानसिन्दु और उसको कनिष्ठ उठा ले गया।

अनेक बार मैं श्री विद्वान हो गया था, अनेक बार मेरी लड़नी छिन गयी थी, अनेक बार मेरे बाहर और अंतर मलिन हो गये थे, अनेक बार अमातुष्किक रुशंसता से मैं कौप उठा या परन्तु कभी इस प्रकार मैंने अपने को आहत न समझा। कभी इतना कंगाल नहीं, जितना मैं

अपने मुकुट मणि अरविंधोर के छिन जाने से हुआ। 'गुद चरित' के उदात्त, अवतरण सहसा मेरी आँखों में नाचने लगे, 'लौदरनन्द' में नन्द द्वारा कुन्द्री के कपोलाकन बार बार मेरी स्मृति में उठने लगे, 'सूक्ष्मालंकार' के अनेक स्थल बरसा मुझे अपनी ओर लोचने लगे। अरविंधोर के अपहरण से निश्चय मेरा सांस्कृतिक निधन हो गया और बहुत काल तक मैं अपनी यह खोई हुई निधि न पा सका।

इस सांस्कृतिक दृष्टि के लानने में उत्तर राजनीतिक हानि को सर्वथा भूल गया जो विदेशी पदचाप ने मेरे उच्चत भाल पर लिख दिया था। काशी में कलिष्ठ का शासक बनकर बैठा और वही से वह निस्तर पूर्वांत्य प्रदेशों पर हुक्मत करने लगा। फिर भी कुण्डलों की अभिसर्चि अविकल पश्चिम में रही। उनका पूर्ण केन्द्र में न हुआ, पश्चुरा हुई और पश्चिमी पुकारपर।

कलिष्ठ के बाद हुविष्ठ आया, फिर दक्षिण और फिर शासुदेव। धौरे-धौरे उनकी सीमाएँ संकीर्ण होती गईं और अन्ततः बासुदेव सामाजिक रूप से भी सर्वथा हिन्दू हो गया। इधर भारतीय प्राज्ञय में एक नये नाटक के पात्र उठ रहे थे। मध्य भारत में विदिंशा के आधार से उठकर वाकाटक ब्राह्मणों ने अपनी शक्ति की प्राचीरें लड़ी की थी उधर उनके उत्तर पूर्वी पड़ोस में पंचावती के नागों ने भारतीय राजनीति में अपना साका चलाया मेरी स्थिति इस काल नगण्य हो। नगी भी परन्तु फिर भी मैं अपने भोले वैभव के स्तर अतीत की स्मृति में उलट-उलट सहेज रहा था। पड़ोस में ही काशी और कान्तिपुर में क्रमशः कुण्डलों और नागों की छापनियाँ थीं। कान्ति के आधार से उठकर नाग कुण्डलों पर धावे करते और अनेक बार उनकी सीमाएँ पश्चिम मधुरा तक घतीट ले जाते। नागराज बीरसेन ने मधुरा की कुण्डल राजधानी पर भी अनेक हमले किये। उसने उन अश्वमेधों की परम्परा

डाली जो विदेशियों के पराजय के फल रखस्त किये जाते थे और जिनकी भार-बार अनुष्ठित परम्परा में काशी में गंगा तट पर दशात्वमेव घाट की संगा थी। बाकाड़कों और नागों का वैभवनया था और भार-बार वह मुझ निष्क्रिय पादलिपुत्र को एक बार फिर अपने नेतृत्व का भार ढोने को निर्मनित करने लगा। भार-बार चन्द्रगुप्त और पुष्टिवित्र की परम्परा जैतना में जमी, भार-बार शक्ति की जमी से मेरा प्रयात्र मुष्टिवित्र हुआ। परन्तु शीघ्र चन्द्रगुप्त की प्रतिमूर्ति सा चन्द्र फिर मेरी धरा पर अद्यतरित हुआ, चन्द्र जो आदि गुप्तों में प्रबल था और जिसने मगध में फिर शक्ति की प्रतिष्ठा की। गुप्तों के प्रारम्भिक दृपति धीगुप्त और घटोत्कच नाम माज को गृहणि थे, उनकी शक्तिं अन्तर्बोद से कभी बाहर न निकली परन्तु चन्द्रगुप्त ने मेरी नगरी कां भी शीघ्र स्वायत्र कर उस प्रतिष्ठा का आरम्भ किया जिसे भारतीय इतिहास ने कभी न जाना था। किस प्रकार उसने अपनी अभिभावकता के पीछे से उछल कर मगध की गहरी पर अमानुषिक अधिकार किया यह शर्म की बात है और उस शर्म के कारनामे 'कीमुदी-महोसुब' में प्रथित है परन्तु उस आचरण की व्यापक सत्ता उसने अपने अधिकार के शोदार्थ से शीघ्र प्रभागित कर दी। चन्द्र जानता था कि मगध और लाकेत और गंगा अमुना के दो आव में प्रतिष्ठित शक्ति ही भारतीय राजनीति में अप्रणी होती आई है और उनका आधार अब उसे उंपलक्ष्य था परन्तु यह यह भी जानता था कि केवल इतने से ही साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा की रुति थी न होगी। सफल नीति एक जीज है और अभियान दूसरी। अभियान की सत्ता नीति की सफलता में है और चन्द्र शीघ्र मगध पर अधिकार कर उसके दुधरे पहोसियों की ओर मुक्त। पूर्व और दक्षिण मृतप्राय थे और पश्चिम स्वायत्र परन्तु उत्तर की गणतान्त्रिक शक्ति अब भी कुठित न हुई थी। उपनिषदों के विचार दर्शन के अप्रणी जनक विवेद के

एकतन्त्री शासन को जिन वज्री, लिङ्घवियों ने उत्तर कर गणतन्त्रोप कर दिया था वे अजातशत्रु की मारक चोट से बिछल होकर भी अभी जीवित थे और पूर्वी राजनीति के चेत्र में अब भी उनका साका चलता था। चन्द्र ने देखा कि यथापि लिङ्घवि उसे सेना की सहायता नहीं दे सकते परन्तु उनकी मान-मर्यादा निश्चय उनके गौरव को अप्रसर करेगी। उसने लिङ्घवियों के विशिष्ट परियार में विवाह किया और हिमालय तक के उत्तरी जन सब उसके मित्र हो गये। चन्द्रगुप्त की महत्वाकांक्षा पर्याप्त थी परन्तु जितना वह कर सका वह एक जीवन काल के लिये कुछ करन न था। उसकी महत्वाकांक्षा अब उसके वश की बात न थी और वह उसके कर्मठ पुत्र समुद्रगुप्त के हिस्से पड़ी।

समुद्रगुप्त भारतीय आकाश में राहु की तरह उदय हुआ। वाकारकों और नागों का सूर्य उसके प्रताप से कबलित हो गया। उसने दिग्मिज्य के लिये एक महान अनियान किया। नीतिशास्त्र का वह विशारद था, वृग्मण्डल का वह केष्ट होना चाहता था। उसने शुद्ध और कौटिल्य के मिथुरंक श्रीयशास्त्र पर अपनी महत्वाकांक्षा के पाये रखे और मुके राजधानी बना उसक कर खेल-खेल में अनेक राजकुलों को विनष्ट कर दिया। आर्यवर्त के राजा पदोंसी में और साम्राज्य के निर्भाषण में पहोंची वशसे बद्धा शत्रु होता है इससे उसने आर्यवर्त के नी राजाओं में से किसी को जोता न छोड़ा। सारे राजकुलों को समूल उत्थाप किया। आर्थिक राज्यों को कुचल कर वह दक्षिण पथ की ओर बदा और बहाँ से राजाओं को भी पराहृ कर उन्हें उसने उनकी गढ़ी बरुश दी। अन्तों प्रत्यन्तों ने डर कर उतकी शक्ति का दिरोधार्थ किया। स्वतंत्र दीपों ने दिंदल तक उसकी मैत्री का दम भरा। भारत में अब भी अनेक गणतन्त्र ये परन्तु समुद्रगुप्त ने अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाग्रन्थ में सबकी उमाहृति कर दी। मालव और यौवेय, आभीर और उनकानीक सभी उसकी

बढ़ती सीमाओं में खो गये। उसकालीन समर्थ इतिहासकार ने किर भी उस स्थानंभ्य विरोधी धारा के विरुद्ध अपनी आवाज उठान्द की—“यह राज्य का प्रतर क्यों? उसका विस्तार क्यों? गणतन्त्रों के अधिकार की इस प्रकार अवहेतना क्यों? निश्चय यरा: शरीर के निर्माण के लिये। यश: शरीर का निर्माण साम्राज्य खदे कर खु और यम ने भी किये परन्तु क्या उनके साम्राज्य भी काल के उदर में न रहा गये? आज जो जीवित है उनको खु और यम की कार्तियों में सन्देह हो चला है। क्या समुद्रगुप्त की यदि यश: काया उर्दा असु रण बनी रहेगी। निश्चय उसका भी लोप हो जायेगा। साम्राज्य को धिकार! ऐश्वर्य का धिकार! पुराणाधार के यह बचन सत्य हुए और उनकी सत्यता का प्रमाण येरा साक्षात्कार है।

इसमें सन्देह नहीं कि मेरे प्राचीरों के बीचे ऐसे प्राकृत्य में जब असंख्य प्रागव सेना को पद्धताव घनित होती तो ये उच्चत ललाट उठाता चमक उठता। पुराना खोया वैभव मिर लौट लौट याद आने लगता। नगर से निकलती और दिग्नव में फैल जाती। चन्द्रगुप्त मौर्य को सेनाओं की बार-बार याद आती है। वैभव एक बार किर मेरा परिचारक बन गया था और उसकी पराकाढा दब दुई ब्रह्म समुद्रगुप्त के तनय चन्द्रगुप्त ने शकों को मालवा से बहिर्गत कर भूंग के समिलित शकुओं का संय तोड़ किम्बु के सातों सुखों को सौधि वाहलीक में बच राट के केसर के सेतों में अपने पद्धाव ढाले, जब दुनिया की छुट पार्मीर के महातक पर उसके धोड़ों ने अपने खुरों की छोट की, जब अपने यश से उसने चारों समुद्रों के जल को सुधारित किया। एक बार किर न केवल मेरी तलवार मेरे नगर से उठकर कमज़ोरों के कंधों पर पही बरन भारती भी एक बार किर मेरे कानों में मधुर धनि बरलाने लगी। चन्द्र-गुप्त की राजत्रभा के नवरत्न मेघाची थे, असाधारण मेघाची यद्यपि

उनकी लेखनी चन्द्रगुप्त की रक्फ रक्षित तलबार की प्रशासित ही लिखती थी। कालीदास, विशालदत, बत्तमट्टी उन्हें गुप्तों की ही अपने ग्रन्थों में की तैयारी गई। केवल एक मनस्वी दार्शनिक ब्राह्मण थमं और इन कायर लूट लक्षोट के भिरोधी दिद्धनाग ने उनके विरुद्ध आवाज उठाई। दिद्धनाग की याद सबमुब मेरे भाज पर विजय का तिक्कक लगाती, कभी अश्ववोर ने मेरे कोख से उठकर भारतीय दर्शन परम्परा को समुचित समृद्ध किया था, कभी-कभी नागार्जुन ने अपनी बाल्यपरम्परा से नेधा की शक्ति प्रसारित की थी। अब दिद्धनाग ने दर्शर सेवी कवियों के विरुद्ध अपनो शक्ति लगा दी यद्यपि कालीदास ने अपने 'वकास्थ' में कोई अन्तर न ढाला और उसका रसिक मित्र मिजुल दिद्धनाग से लड़ता रहा किर भी उसने उस ब्रौद दार्शनिक की श्रौचित्य चची भुलाई नहीं।

मालवा के मेरे साप्ताहिय का प्रान्त यन जाने से मेरे घन और समृद्धि में अत्यधिक प्रवृद्धि हुई। पश्चिम समुद्रतट पर भिश, प्रोत, रोम, याजुल, अख आदि देशों से वाणिज्य के फलस्वरूप धाराधार घन बरसता था और गुरुपारक तथा मरुकच्छ से आने वाले घनधार के राजपार्ग में उड्ढैनो एक विशाल केन्द्र थी और वह उड्ढैनी मेरी परिचारिका चेती थी। उसके घन का भी मैं ही घनी था। मेरे प्रालाद में अब दूरदूर की अनन्त बस्तुएँ भरने लगी। ऐपेन्स और रोम और मुच्चि फेनपथल दासियाँ नव्याणशिया के वामन और क्रीष्ण (जीने और खाने), दूर देश की मदिरा और स्तन सब मेरी सेवा में प्रालाद में विलगे रहते। अन्तःपुर की परिचारकार्थ किसी भी नरेश के अवरोध की शोभा बढ़ा सकती थी और उनकी संहृदया मेरे यदौं तैकड़ों में नहीं हजारों में थी।

कला का शिल्प अब सूखे के बोडों की गति रोकने लगा था। विलास की माइकला अब मेरे भीमानों को अंदरी करने लगी थी। कुमार-

गुप्त की अवाधुता ने सीधे यहस्यों को शंकित कर दिया और पर्याप्त विचलित कुललङ्घी को पुनः स्तम्भित करने के लिए स्कन्दगुप्त ने नंगी जमीन पर रथ के मैदानों में रातें वितान्प्रियकर तर किया। गुप्तों की विगत लङ्घी, न लीटी। प्राणों की आहुति लिये स्वदेश का यह मनस्वी सद्वर उत्तराध्य के एक रक्खावार से दूसरे रक्खावार को दौड़ता रहा परन्तु विलास की निव धारा ने साम्राज्य की नींव में अपनी शीद जमा दी थी उसने उप श्रद्धालिका को एकदम भैठा दिया। मध्य-एशिया में पश्चिमी चीन से लो दूणों की आँखी चली थी उसकी याग निश्चय रक्ष्य ने कुछ जण सिन्धु नद पर रोकी पर वह उस पेर न सहा और गुप्त साम्राज्य की कमर उसकी चोटों से टूट कर लड़खड़ा पड़ी। वस्तुतः चोट इतनो दूणों की नहीं जितनी आत्मसंचित विलास की थी।

मुके किर एक बार शकों कुशाखों की याद आई जब दूणों ने अपनी शकि की द्वारा यग्य और परिवर्मो मध्यदेश के जलते नगरों और गाँवों पर डाली। उनकी प्रगति की कथा उठती हुई धूल के बादल और आग की लपटें कहती थीं और यद्यपि मैं उनकी दशाउता से बहुत कुछ बचा रहा, उस प्रकार आहत न हुआ जिव प्रकार यवनों और शकों के आकमण से हुआ था, तिर भी उनकी चोट ने अनेक बार मेरी काया में भी गड़े कर दिये।

जब सारा देश दूणों की इस चोट से कराह रहा था तब मैंने जो कुछ देखा मुना यह स्वयं कुछ कम न था। जैसे शकों के आकमण के तमय निम्न वर्णाय जनता ने विदेशियों का स्वागत किया था वैसे ही उन्होंने अब दूणों का किया और दूणों को रहदरों और बालकों में कोई अन्तर तो जान पड़ सकता था न जान पड़ा। दोनों को उन्होंने उमान रूप से समझा। परन्तु मुझे जो बात विचित्र जान पड़ी, वह थी उस

कानू के ब्राह्मणों की विचित्र नीति । उनको शक्ति क्षित जाने की इच्छा परखाइ न थी जितनी समाज की व्यवस्था भंग हो जाने की थी । उन्होंने मेरे नगर के अनेक निमूत कुंजों में अपनी गोप्तियाँ की और बार बार सोचा कि समाज का किस संगठन किस प्रकार करें । कल्पस्वरूप जो उन्होंने किया वह निरचय अद्भुत था नितान्त राजपूर्ण और अपूर्व भूत । इन्हियों से संपर्क अभी उनका बना था । बहुत काल पूर्व मेरे ही नगर में उन्होंने शूद्र को हथियार बना कर राजनीति में एक नया प्रयोग किया था । अब उस महान् नीति को उन्होंने इस नये आक्रमण के अवसर पर दिखाया । हूण विजेता थे । ब्राह्मणों के मलेच्छ कहने भाग्र से मलेच्छ होना उन्हें स्वीकार न था । वे रण मैदान और भूमि दोनों के स्थानी थे, सामाजिक व्यवस्था को तो वे छिप-निप दर ही छुके थे । उन्हें शूद्र बनाने की बाध्यणों में शक्ति न थी और उन्हें ब्राह्मण बनाना उनको अनीष्ट न था । इसलिए एक ही स्तरसमाज का ऐसा वच रहा था जहाँ गुर्जर, आभीर, हूण और अन्य विदेशी जातियाँ समाज में नेपी जा सकती थीं । वह राज या ज़ंत्रिय । इससे पुराने दैर का निर्वाह भी हो जाता और नये आखुब से प्राचीन शक्ति का दमन भी । आखू के पर्वत पर ब्राह्मणिक श्रमिकुण्ड से प्रायशित रूप से विदेशी निरन्तर ज़ंत्रिय होने लगे । चौहान, परमार धीरे धीरे उस आधार से उठ खड़े हुए और ब्राह्मणों का उपकार मान उनके चिर सेवी हुए । इस विदेशी पुट ने समाज में एक नयी शक्ति भरी और भारत में उससे उस अद्भुत शोर का आरम्भ हुआ जो राजपूत बीरता के नाम से प्रसिद्ध है परन्तु राजपूत कार्यक्षेत्र मेरे नगर से मेरे, आधार से बहुत दूर था । मैं उस कारण अनियंत्रित न सका परन्तु हाँ उसकी पारस्परिक चोटें जब तब मेरे आधार की भी छू लेती ।

अब मेरा वैनव सूर्य अस्त हो चुका था । बास्तव में उसका अंत

रभी हो चला था जब हुशो ने देश में पदार्पण किया और गुप्तों का साम्राज्य विलय गया। अब मेरे नगर की लक्ष्मी पश्चिम के कब्जोज में जा बसी थी, महोदय में जो कब्जोज की तत्कालीन सार्थक तंशा थी। कब्जोज के भाग्य का तथ निश्चय महोदय हुआ जब मौखियों ने उसे अपनी राजधानी बनायी और जब हर्ष ने उनके नाश के बाद अपना राजनीतिक केन्द्र पानेश्वर से उठा कर बर्हा रका। कब्जोज के उठते हुए गीरव के सामने मैं लांडित पड़ा था और यद्यपि पड़ोस का यह वैभव स्वीकार न होने के कारण कुछ काल तक मगध गुप्तों की छाया मैं उससे टक्कर लेता रहा बस्तुतः नेपा विलुप्त गोरख फिर न लौटा। हाँ वैसा इधर कह चुका हूँ शक्तियों के संघर्ष में अब तथ निश्चय चोट के छीटे मुझ पर भी जा पड़ते। कब्जोज के लिये पौच्छों राष्ट्रकूटों और गुर्जर-प्रहिंदारों का विवरिक संघर्ष चल रहा था और अनेक बार मेरे आत पास पालों और प्रतिशारों की टक्करे हुईं। घर्म पाल ने अब कब्जोज की गही से एक राजा को उतार कर दूसरे को विभाया तथ उसकी विजयाधिनी मेरी ही यह पश्चिम गई थी और जप राष्ट्रकूट दृगति ने गंगा-न्यमुना के दो ओर में उसे परास्त कर उसके छत्र-चमर छीन लिये ये तथ भी वह भागा पूर्व की ओर मेरी ही राह से था। इस प्रकार यद्यपि मैं उन संघर्षों में प्रमुख दल न था फिर भी अन्यमनस्तु या मैं उनकी वित्तियिकि देखता निश्चय रहा।

सदियों गुजर गए। राजनीति के प्रबल केन्द्र एक स्थान से दूसरे स्थान को बदलते रहे पर मैं तुमचार गंगा और सोन के संगम पर खोया था पड़ा रहा। और गंगा और सोन का वह संगम भी अब मुझे छोड़ चला। समुद्रगुप्त के शासन में मैत्री का इन भरने जब शाही राजानु-शाही शक मुहँडों और दीर वालियों द्वारा भेजे रखे भेटों और चिल्ल के उपरारों की बात जब मैं शोचता हूँ तब मुझे वही ज्ञानि होती है

परन्तु यह सोचकर कि किसी की रिपति सदा समान नहीं रहती मैं संयत हूँ। काशी और कौशल को मैंने बिलीन होते देखा है। तच्चरिता और शाकल को निष्पाण होते मैंने मुना है इससे मुक्ते उस गतानि में पिर भी थल मिला है।

मेरा पिछला इतिहास शक्ति का नहीं कहणा का है। जब भारत के सिंहदार पर इस्लाम की नई सेनाओं ने अपनी चोटें शुरू की तब मैंने कहा 'भगवान् आद क्या होना है?' परन्तु विशेष उद्दिष्ट में न हुआ क्योंकि मैं जानता था कि चोट शिखर पर पहती है और मैं अब शिखर न था। हाँ इस्लाम के रिसालों की पद्धतिनि हमने भी मुनो, उनकी तल-कार से मैं भी मर्माइत हुआ परन्तु निर्जीव निःशक्ति मैं कर ही क्या सकता था। बल्कियार मुट्ठी भर ज्यानों के साथ मेरे ही बाजारों से गुजरा तब मुक्ते मेराघटनीज ली आवाज याद आई और अरने नगर से निकलने वाले उन सेनाओं की पहचान की जिन्होंने हिन्दूकृश तक है प्रान्तों को उसके स्थानी से छोन उसे निरस्त कर दिया था। परन्तु अतीत की याद किसी को कर्मण्य नहीं बना देती और मैं भी शुपचाप मिट्ठी सूँचता अपनी पीठ पर से उत्तर बलियार को गुजर जाने दिया जिसने पास के विद्यापीठ नालन्दा को अग्नि के समर्पण कर दिया। नालन्दा मेरे ही औदाये से बटा था। प्रगाथ के इस विद्याकेन्द्र को दूर दूर के गेधावियों ने अपनी मेथा से समुज्ज्वल किया था परन्तु मैंने उसकी आद्वालिकाओं को अपनी औद्धो धूल से बिल्कुर जाते देखा। बलियार आखिरी न था जिसने इस राज-मार्ग से पूर्व की ओर धावा किया था। अनन्त सेनाएँ अनेक बार दिली के आधार से उठी और उन्होंने मुक्ते नाचीज़ समझ रींदते हुए पूरब की राह ली। बलचन के भयानक प्रतिशोध की कथा मुक्ते आज भी याद है जो मेरे ही पात्र से दंगाल के नवाब को कुचलने के लिये गुज़रा था। बलचन के तेवर जिनके सामने मंगोली और दूसों की दृश्यता पानी

भरती थी आज भी मुझे याद है। परन्तु मैं उदासीन दर्शक मात्र था जैसे गुजरती दुर्दृष्टि सदियों ने मुझे अकर्मण्य देखा था। बलबन के रिसालों ने भी मुझे बैठा ही दूक देखा। जमाना गुजरा। गुलामी के बाद पठान आये, खिल्जी और दुगलक और उम्हीने भी मेरा बचा गौख लूटा। एक बार कुछ काल बाद किर ने ही हिति गतिमति हुई जब सासाराम के अकान दीनिक भोजपुरी शेरशाह ने अपनी सेना का केन्द्र मुझे बनाया। अनदेखे राजपूतों की कीर्तिकथा मैं सुनता आया था। जयपाल और पृथ्वीराज की शक्ति की गाथा मैंने सुनी थी। चन्द और जगमल के 'रास्ते' और 'आलदा' की भनक अब भी मेरे कानों में गंजती थी परन्तु जब इस भोजपुरी पठान ने मेरे आधार और पदोन्घ में उठाफर राजपूतों की शक्ति पहिचानो। इसी प्रकार ही और यशस्वी विजेता ने अकबर को अपने शासन पिघान दिये और भारत को राजरय। कुछ ही काल बाद ही ने राजा विक्रमाजोत की उपाधि लेकर बाबर के बंशधर अकबर पां पानीपत के मैदान में मेरी सेना लेकर लतकारा था तब एक बार मुझे ऐसा जान पड़ा मेरी विगत कीर्ति किर लौटेगी और यहि सचमुच हैमू का तोपखाना अकगानों की गलती से थिरम साँ के हाय न पड़ गया होता तब निःसन्देह आगरे की विनृति शायद मेरी होती। शुनार से बदती हुई हुमायूं को सेनाओं की राह मेरी ही ऊरर से होकर राजमहल की पहाड़ियों में लो गई थी। मेरी ही ओर से होकर अस्त्री गोड़ से विधिला लौटा या जहाँ उड़ने सुगल साक्षात्कार का ताज अपने सिर पर रखा और भाई की शक्ति को कुठित होते स्वयं देखा। शेरशाह के पैतरे अपने पास ही चौका में मैंने देखे थे जिनकी चोट से भाग कर हुमायूं किर भारत की भूमि पर न टिक सका। वह अब पुरानी बात है और उन बातों में मेरे

साथ सादी मात्र ही है । मैं उन दीती सदियों का उन, दीती घटनाओं का गवाह मात्र हूँ स्वयं उनमें भाग लेने वाला कर्मठ नहीं ।

मुगलों के बाद विदेशियों ने देश पर आक्रमण किया जो योरप से आये थे । अंगरेज फिरंगी कलकत्ते के आवार से छापे मारने लगे और धीरे-धीरे बंगाल के नवाब को अपना बन्दी बना लिया । थोड़ी ही दूर पर बस्तर के यात दिल्ली के शाहजालन और अबध के शुजाउद्दीला की समिलित सेवाओं को कम्पनी की फौजों की मार से विद्युते देखा । बंगाल की दीवानों अंगरेजों के हाथ आ गईं । गुरुगोविंदसिंह जिन्होंने मेरे ही नगर में उत्तर दोकर गुके पावन किया था, जिन्होंने गुगल तत्त्वनव के पिछले दिनों में सिक्खों को सैनिक का बसा दिया था ये शिवाजी की भाँति कप के मिट्टुके थे और मैं कभी बंगाल, कभी अबध, कभी दिल्ली के चीज़ और बैटाव में इधर-उधर होता, रहा कभी शहु के हिते पहता रहा कभी मित्र के । अलोवर्दी खाँ का लाइला तिराजुरीला लब सल्तनत और जान दोनों लोकर बिनष्ट हो गया, जब मीरजाफर लब कुछ क्लाइव को देकर भी कंपनी का न हो सका, जब मीरकासिम रमानदारी के कौल पर सुलग सुलग कर अंगरेजों से पेच खाता पटने श्राया तब अफाल के दिनों में एक बार मेरी नसों में रफ्तार जागी । वह पिशाल 'पोलघर' जो आज भी मेरे मस्तक की भाँति ऊँचा लड़ा है उस मानवता का प्रतीक है जो मीरकासिम का प्राण थी । समरू बेगम और किरंगियों का हत्याकाल उन्हीं दिनों मेरे नगर में हुआ था । मैंने उससे परले भी घोर पड़न्त्र देसे थे, अमानुषिक हत्या देसे थे परन्तु इस हत्याकाल का राज कुछ और था मैं उसे भुला न सका ।

कंपनी का वातावरण धीरे-धीरे इतना, अपावन इतना भयानक होता गया कि मैं भी कराह उठा । मैं जितने सदियों के दौरान मैं क्या नहीं देखा था ! क्या नहीं सुना था ! आखिर बंयुक्तप्रान्त और विहार की

जनता ने विद्रोह किया जो तन् ४७ के गदर के नाम से विल्यात है जिस विद्रोह का नेतृत्व लक्ष्मीवर्द्धन नाना लालच और तात्या टोपे ने किया था। उसका पूर्वी प्रवन्ध भेरे ही इलाके के एक जवाँमर्द के हाथ या जिसने ८० कर्व की पकड़ी आगु में भी तलवार अपनी मृठ में पकड़ी। आरा का कुँवरसिंह वही चाँका लड़ाका था जिसके आतंक से संयुक्तप्रान्त के पूर्वी इलाके और विहार के पश्चिमी उपनिषद प्राहि आहि कर डटे। इलाकों के घटने वाले नहीं, उनके विदेशी शालक और उन विदेशी शालक के देशी हिमायती। आरा और मेरा नगर कुछ काल के लिये पूर्व के गेठ और दिल्ली हो गये थे और कम से कम कुछ दिनों के लिये तो उन्होंने विदेशी शूलकला निश्चय तोड़ ही दी थी और यदि कहीं पंजाब और देशी रियासतों ने इमारी राह में रोडे न अटकाये होते, हमारे साथ दगा न होती तो देद सी वर्षों का वह इतिहास जो किरंगी कलम से लिखा गया दूसरे प्रकार से लिखा गया होता।

अब मैं अपनी कथा के अंतिम भाग के बहुत निकट प्राप्त हूँ परन्तु यह निकट-पास स्वयं कुछ साधारण नहीं। ४७ का गदर बिना हो गया। कम्पनी के हाथ से शक्ति निकलकर अंग्रेजी पालियामेन्ट के हाथ में गई और भारत समुद्र पार से शासित होने लगा। अनेक प्रकार से भारतीय सुविधा की बात कही गई परन्तु भारतीयों को अब वह भूला। पसन्द न थी जिसके बे कुछ काल में शिकार थे। उसे तोह फैकने का उन्होंने हट निश्चय कर लिया। सन् १९२० में कलकत्ते की कामेस में मोहनदास कर्मचन्द गांधी ने जिस सत्याग्रह और असहयोग की बात चलाई थी उसका पहला रूप उस महात्मा ने मेरे ही प्रान्त के विदेशी जमीदारी के विदद प्रकट किया था। गवर्नर के बाद गवर्नर आते गये थे और उन्होंने अपने अनुचित गोरख की शक्ति मेरे ही वह दर प्रदर्शित की और जैसे मैंने स्वदेशी सता खोकार की थी वैसे ही विदेशी उत्ता भी

स्वीकार करता गया। एरन्तु आग भीतर ही भीतर सुलगती गई थी और सभ्य पाकर भइक उठी।

चक्रवर्योग अधिकार के साथ-साथ देश में एक नये संघर्ष की शुरुआत पंडी और उस संघर्ष के अनेक नोचें मेरे ही मैदान पर लड़े गये। आजादी की यह दूसरी लड़ाई थी और स्वतंत्रता के उस चीज़ के लड़ाके गोवी के नेतृत्व में देश ने अपने इतिहास का एक नया अध्याय लिखना शुरू किया। सैकड़ों इजारों की संख्या में नर-नारी, युवा-वृद्ध मेरी सहकों पर ब्रिटिश नादिरशाही के शिकार होने लगे। इजारों-लालों की संख्या में आजादी के लड़ाकों ने जेल अपनाए। मेरा पुराना जेल आजादी के कैदियों से भर गया। एक नया कैम्प जेल बना, वह भी भर गया और निरन्तर मेरी सहकों पर लोग आजादी के नारे लगाते रहे, नियम लोग गिरफ्तार और कैद होते रहे।

मैने सदियों की दौरान में यहुत कुछ देखा था। एक से एक चिनेता आए, खँरेजी की। लालों से उन्होंने मेरे नगर की सहकं पाट दी। उनके भुजम से आसमान और अमीन ईरत में आ गए। पुराने दुनियाँ ही जैसे उन्होंने मिटा दी। पर जो मैने अब देखा वह कभी न देखा था। निर्मांक, निहरणे नौजवान अहिंसा और सत्य के नारे लगाते सामने आते और पुलिस की गोलियों के शिकार हो जाते। दुनिया ईरत में थी। बंसार की सबसे बड़ी शक्ति बृद्धि सरकार अपने दृथियाँ में लालानी थी पर पह उनके आवजूद भी इन निहत्यों को सर न कर सकी। ईरिट्री और पक्कील, प्रोपेसर और मुदर्सिं, किलान और अहल्कार भंडे ले ले उस आजादी की लड़ाई में फूट पड़े। लंबे अरसे के संघर्ष के बाद सरकार को झुकना पड़ा।

सन् ३७ में कॉम्प्रेस ने अनेक प्रान्तों में आपने मंत्रिरण्डल बनाए।

विहार में भी कांग्रेस मंत्रिमंडल बना । पर कुछ ही दिनों बाद उसे मजबूर होकर इस्तीफा देना पड़ा, किर लहारे छिह्नी । किर स्वतंत्रता के लड़ाकों को लालियाँ और कैद भेलनी पड़ी । पाँच वर्ष बाद एक भयंकर तृष्णान आया । सरकार ने एकाएक कांग्रेस के नेताओं को पकड़ लिया किर तो जनता ने सर्वप्रथम बगावत कर दी । जेल टूट गए, कच्छरियाँ खुट गईं, थाने जला दिए गए, रेलें उत्थड़ गईं ।

मेरी सहको पर तब सरकार ने बदले की तैयारी की । दैनंदी दोहने लगे । इबाई जहाज ऊपर उड़ने और लोगों में आतंक जमाने लगे, किरंगी फौजें आरों और किरने लगीं । गाँव जला डाले गए । मेरी सहको पर जगह-जगह लोगों को पकड़-पकड़ कोडे लगाए जाने लगे । अंग्रेज अस्तर किरंगी फौज की टोलियाँ लिए आते और निहत्ये निरपराध नौजवानों पर गोली दाग देते । कितने पिताओं के देखते उनके बच्चे भून दिए गए । कितनी माताओं के सामने उनकी जिंदगी के अरमान सदा के लिए मुला दिए गए, कितनी नारियों के सुहाग धूल में मिला दिये गए ।

पर जनता अपने कौल से न हिली । आजादी की लहार में नित्य जीवन का बलिदान करती गई । किर तो जमाना बदला और अपना अधिकार भारत ने विदेशियों से छीन लिया । देश स्वतंत्र हुआ । अंग्रेज भारत छोड़ ल्वदेश लौटे । आजादी भिली पर भारत बैठ गया । शहुतों की उम्मीदों पर पानी किर गया ।

कांग्रेस ने किर अपना मंत्रिमंडल बनाया । मेरे प्रान्त में भी मंत्रिमंडल बना । आजाद हिन्द ने हुक्मत हाथ में ली । पर मैंने देखा आभी जिंदगी ढावोंडोल है । लोगों में शर्म और ईमानदारी की कमी है, जिम्मेदारी का अभाव है । लालच से डिग जाते हैं, स्वार्थ से

उनकी दृष्टान्त चिंगाह जाती है। चोरचाजारी का दरिया रखा है, इमानदार वे आवर्स हैं।

मैं आज अरने दाइं हजार वर्षों के इतिहास को लीट-सौट कर देखता हूँ। आज को देखकर कुछ ग़लानि भी होती है। कुछ दादस भी देखता है। पर संतुष्ट नहीं हूँ। आशा है जो है वह भी बदलेगा और नया सुरज निकलेगा जिसकी रोशनी नेरे नगर को प्रकाशित करेगा, मेरी सद्दो पर अपनी किरणों से समृद्धि विलंगेगा।



कन्नोज

मेरा प्राचीन नाम कान्यकब्ज और महोदय है। आज मैं कन्नोज कहलाता हूँ। वर्द्धनो, गुर्जर-प्रतिहारों और गढ़वालों के क्षीन-दीन साम्राज्य मेरे नगर में खड़े हुए और मिरे। गुप्त सम्राटों के पतन के बाद मगध की राजधानी पाटलिपुत्र का भी अवसान हुआ और तब मैं कान्ति मान हुआ। पाटलिपुत्र की लक्ष्मी मुक्ते प्राप्त हुई और मेरी महोदय भी देश के नगरों की ईर्ष्या का कारण बनी। महोदयश्री को स्वायत्त करने के लिए भारत के राजकुल परस्पर संघर्ष करने लगे। मैं तब भारत का प्रमुख नगर हुआ और जो मेरे स्वामी होता वही उत्तर भारत का भी स्वामी होता।

मेरा आरम्भ प्राचीन है परन्तु महाभारत और उपनिषद् काल में

पंचाल के कामिल्य और अहिन्दूत्र ने मुझे अधिकतर टक लिया था। जब उनका हास हुआ तब मैं धंते-धीरे उत्कर्ष के मार्ग पर चढ़ा और तबसे सदियों निस्तर मेरी सत्ता देश पर व्याप्त रही। जब वहसों ने कौशाम्बी के चतुर्दिंक अपना साम्य स्थापित किया तब मैं उनके प्रमुख नगरों में से या और अनेक बार मैंने अहिन्दूत्र और कामिल्य की मर्दाना छोन ली। धरि धरि वे अतीत की सूति में खो गए; कौशाम्बी स्वर्णनष्ठ भ्रष्ट हो गई परन्तु मैं दिनोंदिन उत्तरि करता गया।

ऐतिहासिक धाल में जब उदयन की विलासिता ने वहसों को निर्धार्य कर दिया और नन्दों ने शैकुनागों का अन्त कर मगध में अपना साम्राज्य कायम किया तब मैं उनके शासन में आया। पिर जब नन्दों के हाथ से लद्धी सरक कर मौर्यों के हाथ चली गई तब स्वाभाविकतः मैं उस महासाम्राज्य का नागरिक हुआ जिसकी सीमाएँ हिन्दुकुश से महियमरुदल (मैसूर) तक फैली। अशोक के महासाम्र जब कौशाम्बी के केन्द्र से उत्तर के प्रान्त पर शासन करने लगे तब मैं भी उस प्रान्त का एक विशिष्ट अंग बना और जब मौर्यों का साम्राज्य शुगों के हाय में आया तब मैंने कौशाम्बी के साथ ही उनका शासन स्वीकार किया। शुगों का अधिकार पहुंच दिनों मेरी भूमि पर न रह पाया और शीघ्र मैं कौशाम्बी के साथ ही स्वतंत्र हो गया। तब मुझ पर 'मित्रो' का अधिकार हुआ और उनके शासन में मगध से स्वतंत्र हो मैं अपने भाषी उत्कर्ष के स्वप्न देखने लगा यद्यपि मेरा अपना और एकाकी उत्कर्ष अभी दूर भविष्य की बात थी।

इस बीच भारत में विशेष उथल-पुथल देखी और चंकि मैं उत्तर-पश्चिम की ओर से पूर्व जानेवाली सेनाओं के प्रशस्त मार्ग पर चला था, मुझे अनेक बार विदेशी सेनाओं का सामना करना पड़ा। विदेशी सेनाएँ जो उस काल आईं दृशंसत्ता में लासानी थीं। पहले प्रीक आये

किर शक और किर कुशाण । विदेशी इस दिशा में बहुत काल न ठहरे, यद्यपि उनका एक राज्य पूर्वी पंजाब के राजकुल में स्थापित हो गया था और मैं उनके प्रभाव में कम और मगध के प्रभाव में अधिक रहा और जब जब उनका अधिकार सीमित होता रहा तब तब मैं भी स्वतंत्र होता रहा यद्यपि मेरे पास अपनी कोई विशेष शक्ति नहीं थी । शक भी मध्य देश में बहुत काल तो न ठहरे परन्तु मधुग के केन्द्र से उन्होंने अनेक शार मुक्ते लूटा । उनका एक वृसरा राजकुल उड्जयिनी में प्रतिष्ठित हो गया था और मधुग और उड्जयिनी के राजदूत अक्षर मेरी और कौशाम्भी की राह आते और जाते रहे । परन्तु विदेशी राजकुलों में सबसे लम्बा और गहरा अधिकार मुम्भपर कुपाणी का रहा । कनिष्ठ ने मेरी ही राह जाकर पाटलिपुत्र से अश्वपोत को छीना था और उसकी सामाएँ मगध तक होने के कारण मैं भी कुशाणकाल के प्रायः अन्त तक कनिष्ठ के वंशाधरों के अधिकार में बना रहा ।

धीरे धीरे वाकाटकों और नागों को चोटों से जब कुपाणी के प्रान्त भिसर गए तब मैं पहले वाकाटकों किर नागों के अधिकार में आया यद्यपि वाकाटकों का अधिकार शासन के रूप में नहीं परन्तु जब तब उनके धावों के रूप में मुझ पर हुआ । यस्तुतः शासन मुझ पर नागों का हुआ जिन्होंने कुपाणी के अन्तिम राजा को भगा कर मधुरा पर अधिकार कर लिया था । नागों का परिचयमी केन्द्र मधुरा और पूर्वी मिर्जापुर के बिसे में कान्तिपुर (कनिष्ठ) और काशी हुए । और इनके बीच की भूमि पर कुछ काल तक वराचर नागों का प्रखर तेज बरसता रहा । धीरे धीरे उनके कई राजकुल अन्तर्वेद में स्थापित हुए और लग्य के अनुकूल मैं कभी एक के कभी दूसरे के अधिकार में जाता रहा । धीरे-धीरे मगध में गुमों का उदय हुआ और उनकी बढ़ती सीमाएँ मध्य देश को सबंधा निगल गईं । समुद्रगुम ने दिग्बिजय और अश्वमेष किए और उसी क्रम

में आर्यावर्त के राजाओं को उलाहा रौका । तब औशाम्बी में नाग राजाओं ने एक साय उलका सामना किया और उसकी चोट से विनष्ट हो गए । उनकी पराजय का परिणाम मुस्के भुगतना रहा और मैं समुद्र-गुप्त के शासन में आया ।

गुप्तों के साम्राज्य को हूणों ने तोड़ दिया और तब पाँचवीं सदी के अन्त में पाटलिपुत्र की सीमाएँ नितान्त संकुचित हो चलीं । मगध में तब भी एक गुप्त राजकुल प्रतिष्ठित था पर उसकी शक्ति कुछ विशेष न थी । जब गुप्तों का छठीं सदी के शुरू में प्रायः सर्वधा अन्त हो गया और इस विछले गुप्तकुल ने आसपास के प्रदेशों पर अधिकार किया तबीं मेरा उत्कर्ष भी शुरू हुआ । अब मेरे लिए यह सम्भव न था कि मैं शुपचाप मगध का जुआ अपने कंधों पर ले लूँ और मैं ब्राह्मर इस काल पाटलिपुत्र के स्थानियों से उलाक पढ़ने का अवसर हूँ देने लगा ।

अवधर मिलते ही मैं, अवधर जिनका मैने पूर्णतः समुपर्यं ग किया । मेरे नगर में एक महान् राजकुल प्रतिष्ठित हो शुका या और उसने नए हिरे से अन्तर्वेद में अपनी शक्ति बढ़ानी शुरू की । यह राजकुल मौखिकियों का था, मौखिकियों का जो छठीं सदी ईस्ती के शारम्भ में ही अपनी शक्ति का स्वर्ग देखने लगे थे । उनका प्रारम्भ नए मागध गुप्त कुल के प्रायः समकालीन ही था और इसी कारण दोनों राजकुलों में टकरै हो जानी स्वाभाविक थी । टकरै क्या उन्होंने आमरण संघर्ष का रूप धारण किया और निरन्तर पाटलिपुत्र और सुभर्में लोहे से लोहा बनाने लगा । कभी मेरे मौखिकियों द्वाते कभी मागध गुप्त, परन्तु एक विषय ही दूसरे युद्ध का कारण बन जाती और आग की लम्हे सदा आसमान धूमती रहती ।

परन्तु मेरा उत्कर्ष यास्तव में छठीं सदी के मध्य झुआ जब ईशान-वर्मन्, ने अपने विजयों का ताँवा बाँध दिया । मौखिकियों की शक्ति के

साथ मैं पहली बार स्वर्णप हुआ था और पहली बार मैंने तब शक्ति का स्वाद पाया । मैं एक उद्दीपनान राजकुल की अथ राजधानी था । और मैं अपने उत्तर शक्तिम प्रगति पर आलंद हुआ भी भाषी ने मेरे भाष्य में लिख दिया था ।

ईशानवर्मन मौखिकियों में सबसे शक्तिमान हुआ यद्यपि उसकी शक्ति बहुत काल तक कायम न रह सकी । गुतों से संवर्ध चल रहा था । कुमार गुप्त तृतीय और ईशानवर्मन में जो अन्तिम युद्ध हुआ उसमें मेरे स्वामी को हार लानी पड़ी । कुमारगुप्त ने प्रयाग पर भी अधिकार कर लिया और मरने पर उसका भाईकर्म निवेद्यों पर हां हुआ । संवर्धन ने दामोदर गुप्त को परास्त कर पिंड की हार का बदला लिया और एक बार फिर मैं गर्भ के साथ पाटलिपुत्र की ओर देखने लगा । सर्व ने हूलों का भी पराभव दिया और मेरी सीमाएँ फिर एक बार थड़ चलीं । पर मेरे उत्कर्ष को भी दम लेना पहा नवगृहवर्षन का भाष्य मेरे भाष्य से बंया । ऐसा नहीं कि गृहवर्षन बीर न हो, महस्याकांक्षी न हो । या वह दोनों परन्तु यह उस राजनीतिक दुरुभिसनिधि को सही सही न समझ सका जिसने उसकी शक्ति के साथ ही उसके जीवन का भी अन्त कर दिया ।

गृहवर्षन के शासनकाल तक मेरी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि थानेश्वर के उस समुद्रत और यशस्वी प्रभाकरदर्ढन ने भी मेरे मौखिकी राजकुल के साथ विवाह सम्बन्ध की प्रार्थना की जो हूयों और गुरुजों के स्वम का दैत्य हो गया था । उसने अपनी कन्या राज्य भी गृहवर्षन को ब्याह दी थी । कुछ पहले मगध के महासेन गुप्त ने मालवा में एक नए गुप्तकुल की स्थापना की थी । उस कुल के दंवगुप्त ने बड़ी शक्ति अर्जित की और एक बार तो वह अग्नी सेनाएँ लिए आलाम तक जा पहुँचा था । कामरुर के भास्करवर्मा के शाशुगौड़राज शाशांक के साथ उसने मैत्री की ओर मौखिकियों से दंशगत बैर निभाने के लिए नए मित्र के

साथ वह मुझ पर चढ़ आया। ऐसा करने की विशेषता उसकी हिम्मत तब हुई जब उसने मुझ के प्रभाकर वर्द्धन की यानेश्वर में मृत्यु हो गई है।

मेरे स्वामी यज्ञवर्द्धन को युद्ध में मार उसने मुझ पर अविकार कर लिया और मेरी रानी राज्यधी को कारागार में ढाल दिया। प्रभाकरवर्द्धन का पुत्र और राज्यधी का भाई राज्यवर्द्धन तब तक यानेश्वर की गहरी पर बैठ चुका था और अप्रैल वह अपने सम्बन्धी के हन्ता देवगुप्त के विहार बढ़ा परन्तु इस श्रीदार्य का मूल्य उसे अपने प्राणों से चुकाना पड़ा। देवगुप्त और राजाक ने जिस राजनीतिक दुरनिष्ठि के जाल मूले में इसी में वह भी आ कैसा और उसकी हस्ती हो गई। मौलियों का आनन्द उसने मेरी धरा से उठ गया।

राज्यवर्द्धन वा अनुज इर्ष्वर्द्धन तब यानेश्वर का राजा हुआ और शीघ्र वह भाई और वहनाई को हत्या का बदला होने शघुओं को और बढ़ा। देवगुप्त तो सम्बवतः उसकी चोट से विनष्ट हो गया परन्तु नीति-कुशल गौड़राज राहांक राज्यधी को मुरत कर खदेश लौट पढ़ा और हर्ष की प्रतिशो के बावजूद भी वह उसके हाथ न लगा। मौलियों के नाश का मुक्ते दल निश्चय या परन्तु जो भावों सम्बद्ध मुक्ते यानेश्वर के संयोग से मिली उसका मैं बयान नहीं कर सकता। अब भी अर्थात् हर्ष के मेरे राजा होने के पहले भी मैं स्वतंत्र राजकुल की राजधानी पा परन्तु प्राचीन पाटलिपुत्र की प्रतिष्ठा से मैं तभी लौटा हो सका जा। मेरे प्राणों में हर्ष का निवास हुआ। हर्ष ने राज्यधी को टूट कर पाया परन्तु बहिन की शासन सम्बन्धी उदासीनता के कारण स्वयं उसकी भी मुझमें विशेष रुति न हुई परन्तु मैत्रियों के आनन्दण से उसे मौलियों का सिद्धान्त भी यानेश्वर के साथ ही स्वीकार करना पड़ा।

अब मेरा उत्कर्ष दिनों दिन यह चला। हर्ष यद्यपि बौद्ध मत की

ओर करका झुक चला था । उसे अन्य शैद्ध राजाओं की ही भाँति रक्ष-पात्र से धूषण थी । हिंसा उसको दीक्षित अर्द्धिसा का हृदय थी और वह अरने साठ हजार हाथियों, एक लाल धुक्कवारी और अनन्त तरुणक पैदल सेना सेकर उत्तर भारत की विजय के लिए निकल पड़ा । गोद के विशद उसने कामरुण से सन्धि की और उत्तरायण पर इस चक्षा दिया । किर वह दक्षिण लौराप्ट्र को और मुहा । उसके आक्रमण से बलभी का राजा प्रबुत्तेन द्वितीय राजधानी द्वांड भद्रांच के दह द्वितीय की शरण चला गया यद्यपि उसकी मदर से वह किर लौटा और उसने अपनी गहरी पर अधिकार कर लिया । हर्ष ने उससे निपता कर उसे अपनी कंपा भाह दी ।

सारे उत्तरायण के स्वामी हो जाने पर भेटी तृष्णा थड़ी । शकि की तृष्णा भो काम की हो तृष्णा की भाँति है जो विद्यों की आहुति से घटती नहीं निवृत्त, अद्वृती ही जाती है । हर्ष अब दक्षिणायण के शक्तिमान् चालुस्य पुलकेशिन द्वितीय से जा भिड़ा । पुलकेशिन अप्रतिम योद्धा या और उसने हर्ष को न केवल परासत किया बरन् उसके हाथियों को मार कर उसने मैशन पाट दिया । और भव विगतित हर्ष मैशन थोड़ पीछे लौटा । पुलकेशिन ने ईरान के बादराह खुशरो द्वितीय से मैशी की और हर्ष ने उत्तर में बीत के सप्ताट से । हर्ष के दिग्गिजय ने मुक्ते समस्त बंदुकधान्त, मगव, उड़ीसा, बंगाल, कुरुक्षेत्र, पूर्वी राजपूताना और पूर्वी पंजाब का स्वामी बना दिया । सिंध और हिमालय के अनेक राजाओं से भी कर प्रदण किया था और मै इस विशाल साम्राज्य को राजधानी या ।

जितना गौरव मुक्ते हर्ष ने इस काल दिया उतना मुक्ते कभी न मिला, न पहले, न पीछे । चीनी यात्री हेनञ्चांग इस समय देश में भ्रमण कर रहा था । नालम्ब के उठ विश्वविद्यालय में जो अधिकार

मेरे हर्ष के दान सम्मान से ही बढ़ा था और जो संघार के विद्यारीटों में कपालमणि था । चीनी भ्रमक ने अपनी बुद्धि का परिचय दिया था । उसका सम्मान और महायान का प्रचार करने के लिए हर्ष ने मेरे नगर में एक बड़ा समरोह किया । कुमारराज, भास्कर वर्मा और अपने आतिथि के साथ मंजिले सर करता गंगा के दक्षिण किनारे नव्ये दिन चल बह राजधानी पहुँचा । मेरे नगर में तब तक अट्ठारह माण्डलिक राजा और हजारी निनन्त्रित विविध सम्प्रदायों के आचार्य आ पहुँचे थे । हजार हजार भोताओं के बैठने लायक दो विशाल मण्डप और आदमकद बुद्ध की स्वर्ण मूर्ति, प्रतिष्ठित ऊँचा स्तम्भ पदले से ही प्रस्तुत हो चुके थे । परिपद की कार्यालयी उष जलूस के शार्द आरम्भ हुआ जिसमें हर्ष ने बुद्ध मूर्ति की परिचर्या में शक का स्थान प्रदण किया था और कामरूप के भास्कर वर्मा ने ब्रह्मा का ।

पाँच दिनों तक हेन्व्याग महायान-पिदान्तों का निरूपण करता रहा और अन्त में उसने अन्य साध्याधिकों को अपनी बुकियों काटने की जुनीती दी परन्तु ब्राह्मण दार्शनिक जब उससे तकँ में कुछ भारी पहने लगे तब हर्ष को बह असह था उठा और उसने जो पोशण की उसका अन्याय मैंने साक्षात् देखा । उसने ऐतान किया कि यात्री का विरोध करने वालों की जबान काट सी जायगी और उसका नतीजा यह हुआ कि परिपद समाप्त हो गई परन्तु इसका परिणाम हर्ष का स्वर्ण भुगतना पड़ा । ब्राह्मण उसकी इस अनोति को बदाश्वत न कर सके और उन्होंने उस पर आक्रमण किया । पाँच सौ ब्राह्मण तब देश से बाहर निकाल दिए गए और यात्री का अधिकारिक आतिथ्य हुआ ।

मैं अपनी शान की बात उसने मुह का बहूँ । उसका शयान बुद्ध उस चीनी यात्री ने किया है । बह लिखता है कि इस नगर में जो थे मोक्ष लन्दा और सबा मोल चौड़ा है तो बीद विहार है जिसमें दस हजार

भिन्न निवास करते हैं, और दो लो देवालय। नगर विस्तृत, मुन्द्र और सच्च है, उसके भवन चूने से पुते सादे और स्वास्थ्यकर है। राजधानी वस्तुतः भारतीय संस्कृति की राजधानी है जहाँ रेशम के सुम्भर दर्पण सहश त्वच्छ वस्त्र पहने नागरिक देवताओं को भी लजा देने वाली गुद वाणी में वार्तालाप करते हैं। उनका उच्चारण स्पष्ट और सार्वक होता है और उनकी भाषा देश के भाग भावियों के लिए प्रमाण है।

निश्चय विदेशी द्वाय प्रस्तुत मेरी यह प्रशंसित तानिक भी इताधात्मक नहीं। मेरे वैनव और समूद्रि का अन्दाज उत्त अनन्त दान से लगाया जा सकता है जो मेरे स्वामी ने महामोहगरियद् के अवतरण पर प्रथाग में त्रिवेत्ती के संगम पर यात्री के सामने हो किया था और जैवा वह हर पाँचवें वर्ष किया करता था। हर पाँचवें वर्ष मेरे लजाने का धन इसी प्रकार स्थापा होता था। परन्तु किर प्रान्तो की आय से वह भर जाता था। प्रान्तो की आय कैसे आती थी, किस तरह मेरे राजपुरुष का धन, उसके पसोने की गाढ़ी कमाई छीन लाते थे, इससे न मुकेकोई गरज यी और न मेरे स्वामी हर्ष को। जब तक उसके हाथ धन की कमी से न रुकते थे, जब तक इस दान किया से स्वर्ग में बनते उसके प्राप्ताद का काम न रुकता तथ तक उस आय-कर्पण के तरीकों को जानने की उसे जरूरत न थी। छः छः बार यह दान उभारोह चला और धन पानी की तरह चला। यद्यपि यात्री सहकों पर लुटते रहे, स्वर्वं हर्ष का मित्र चीनी यात्री थो दो बार उसके राजमार्गों पर लुट गया।

हर्ष का शासन इतना अरियर था, उसकी अनियाद इतने कमज़ोर पायों पर लहड़ी थी कि उसका टिक सकना असम्भव था और वह टिक नहीं सका। हर्ष के मरते ही उसके मन्त्री अर्जुन ने उसके विद्वान पर अधिकार कर लिया। इस काल मेरे नगर में कासी रक्तपात तुआ जिसमें अनेक दलों ने लक्ष्य की होती खेली। हर्ष ने जीव के सांग सम्बद्ध को

अपने दूत भेजे ये जिसके उत्तर में उसने अपने दूत भेजे और वह दूत महादल मेरे नगर में तब पहुँचा जब अर्जुन राज्य पर अधिकार कर चुका था। उसने जीनी दूतों को मरवा डाला परन्तु उसका भेता निकल भागा और तिब्बती-नैगली उनाहों को नदद से उसने अर्जुन को परास्त कर चीन में ज़िद दिया। इसके साप्राच्य के प्रान्त विलर गए और मैं किर शक्ति दृष्टि से अपने भावी स्थानी छी राह देखने लगा।

सातवीं सदी के मध्य में मेरे नगर में यह राजनीतिक कान्ति हुई थी। उसके कुछ ही काल बाद सहसा एक नया राजकुल मेरे आँगन में उत्तरा। उसके पिछले राजा तो अत्यन्त कमज़ोर हुए परन्तु उनमें पहला यशोवर्मन् विशेष प्रभावशाली हुआ। मैं उनके कुल को नहीं जानता पर कहते हैं वह नौजारियों का ही बंगधर था। उसने मेरे नगर और अन्त-वेद की डॉविडोल स्थिति स्थिर कर दी। जीवितगुप्त द्वितीय को उसने परास्त कर भागीदों को अपनी सीमा में रहने को मजबूर किया। और अनेक कायों से उसने मेरी निर्बलता का मार्जन किया। काश्मीर के ललितादित्य मुकामीद ने तब उस पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया। उसके द्वारा मैं साहित के दो विशिष्ट कवि प्रविद्ध हो गए हैं, एक भव-मृति दूरा वाक्पति। यशोवर्मन् की पिछली पराजय ने मेरा तिर कुका दिया था और उसका परिणाम यह हुआ कि उसके उत्तराधिकारियों को बार बार अपने मुँह की खानी पड़ी।

इसके बाद मेरे नगर में आयुधों का राजकुल शासन करने लगा जिसके तीनों राजा बद्रायुध, इन्द्रायुध और चक्रायुध अपनी दुर्बलता के लिए देश में प्रविद्ध हो गए हैं। बद्रायुध पर काश्मीर के जयापीद ने सकल आक्रमण किया; इन्द्रायुध के समय राष्ट्रकूट नृपति श्रव ने गंगा-यमुना के दो आव पर हमला कर गंगा-यमुना को अपना राजनिह बनाया। इन्द्रायुध पर बंगाल के खर्मपाल ने भी आक्रमण किया और उसे सिंहासन

न्युत कर गही चक्रायुध को दे दी तब मेरी राजनीति इतनी कमज़ोर हो गई थी कि हर कोई मुझ पर आकमण करने लगा। राष्ट्रकूट तो प्रायः अपने दक्षिण आधार से उठकर मेरे हँसते खेतों को उखाइ फँकते। इसी प्रकार प्राल और प्रतिशार भी अक्षर मुझ पर छापे भारते। वसुतः इसी काल गंगा जमुना के दो ओर और मध्यदेश के लिए राष्ट्रकूटों, पालों और प्रतिहारों में चिवांव संवर्ष गुरु हुआ। धर्मपाल ने जब इन्द्रायुध को जगह चक्रायुध को मेरे सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया तब और गृहति तो चुप रहे पर राष्ट्रकूटों को पालों का यह विधान मान्य न हो सका और भ्रष्ट के पुत्र गोविन्द तृतीय ने उहां दो ओर पर आकमण कर दिया। चक्रायुध और धर्मपाल दोनों को उसने चुरी तरह परात्त किया और गौद के दृगति को आरने छव चैवर द्वाइकर भागना पढ़ा। धर्मपाल हार चुका था और गोविन्द तृतीय की मृत्यु हो गई तब अक्षर पाकर प्रतिहार नृपति नागभट्ट द्वितीय ने कल्पना पर अधिकार कर लिया। गुर्जर-प्रतिहार, मारवाड़ और उच्चायिनी में प्रतिष्ठित ये यद्यपि नागभट्ट के पिता वत्सराज को राष्ट्रकूटों ने उच्चायिनी से निकाल मरभूमि में शरण लेने को बाध्य किया था। और जब उसके पुत्र ने कुल की मालवा में सोई सम्रति पर फिर से अधिकार करना चाहा तब गोविन्द तृतीय ने उसे मार भगाया था। नागभट्ट ने उभर से हाथ लीच मुझ पर डाला और मुझे उसने प्रतिहारों की राजधानी क्वाया। अपने संरक्षित चक्रायुध को इस प्रकार दृटे देस धर्मपाल ने नागभट्ट के विरुद्ध युद्ध यात्रा की पर मुंगेर में नागभट्ट ने उसे इस चुरी तरह परात्त किया कि उसे उलटे पौंछ लौटना पढ़ा।

नागभट्ट की विजय और सम्राट्टवदीय प्रतिहारों के मेरे नगर में प्रतिष्ठित होने पर मेरा चुप हुआ गौत्र फिर लौटा। आयुधों की दुर्बलता ने मुझे बार बार विजेताओं के सामने फिर झुकाने को मजबूर किया था,

बार बार बिदेशी राजकुलों द्वाया अपनी राजनीति संभालने से मैं अपना-
नित हुआ था। अब मुझे यह कि और मान दोनों मिले। नागभट्ट ने
वत्त, मालवा और काठियावाड़ को जोतकर मुझे गोरखान्वित किया।
पूर्वी राजपूताना के मस्तों और लिंग के तुरङ्कों को भी उसने धूल
चढ़ा दी। आनंद, कलिंग, विदर्भ, आदि के राजा मुझ से मैत्री और
उत्तमता मांगने लगे।

नागभट्ट का पुत्र रामभद्र कमजोर और विजासी निकला पर उसके
पुत्र निदिरमोज ने मेरी शक्ति बुदेलखण्ड, मारवाड़ और हिनालय की
तराई तक कायम रखी। वह वहाँ सुलभ हुआ रुक्ति था। उसने जब पूर्व
की ओर हाथ बढ़ाया और घर्माल के यशस्वी पुत्र देवधाल ने उसे
परास्त कर दिया तब वह उत्तर से हाथ लीच दक्षिण राजपूताना की ओर
मुड़ा और उसे कुचलता नर्मदा तट तक को उज्जयिनी की चतुर्दिंक भूमि
चैंद बालों तक मुज्जरात के दूरति शुब्बधाराधर्म को उसकी अनोत्ति अलम्बन
हो उठी और उसने उसे परास्त कर दिया। इस पर वह सौराष्ट्र में लिल
पदा और कर्नाल पर अधिकार कर लिवा। मुलेमान लिखता है कि वह
मुसलमानों द्वा उक्से बढ़ा शक्तु था।

मेरा प्रताप दिन बूना रात चौमुना बद चला था। महेन्द्रपाल ने भी
मेरी शक्ति कुछ कम न बढ़ाई। दसवीं सदी का आरम्भ था। नई
शक्तियाँ इधर उधर उभइ रही थीं परन्तु महेन्द्रपाल चुवचाप विजय पर
विजय मेरे अग्निम में बिलेरे जा रहा था। मगध और उत्तर दंगाल उसने
जीत लिया और दीरप्पूर्व में उसके प्रतिनिधि माणिक उठकी ओर से
शारन करते थे। हाँ, पश्चिम और दक्षिण में अपना आधार कोड
निरन्दर व्यस्त रहने का एक हुणरिणान भी हुआ। महेन्द्रपाल ने कुछ
काल पश्चे पंजाब में काश्मीर तुरति से कुछ प्रदेश छोन लिये थे। अब
उसकी अस्तुता से अबसर पाकर शंकरवर्मन ने अपने प्रदेश सहसा आक-

मर्यादा कर बापल ले लिए। परन्तु महेन्द्रगाल उनको किर से जीतने के लिए जीवित न रह सका।

महेन्द्रपाल के आश्रम में मेरे नगर में एक प्रख्यात साहित्यिक ने आश्रम पाया—राजरेखर ने। राजरेखर अर्लंडार शास्त्र का भूषणप्रिडत था और उसने मेरे ही द्वारा मैं अपने विलापत 'काव्यमीमांसा' नामक ग्रन्थ का अषयन किया। उसके थालरामामण, बालभारत और कपूर-मंडरी भी मेरे ही नगर में रखे गए।

महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद मेरी राजनीति जो कमज़ोर पड़ी तो प्रतिहारों में यहयुद छिह्न गया। भोज द्वितीय और भद्रीपाल दोनों वेमात्र भाई थे और उनको लाहाने वाले एकोसियों की कमी न हुई। कोक्षसा चेदि ने भोज की सहायता की पर श्री हर्ष चन्द्रेल ने भद्रीपाल को मेरी गदी पर बिठा दिया। भद्रीपाल जपकर बैठा और उसने भोज और चेदियों को कहीं पतनने नहीं दिया। परन्तु भद्रीपाल खबर को राष्ट्रकूटों का आक्रमण घरदाश्त करना पड़ा। इन्हं तृतीय ने मेरे नगर तक के भू-प्रदेश को उजाड़ ढाला और प्रयाग तक सूटमार की। पालों ने अपने अनेक भू-सरहड़ सौन के पूर्व तक फिर से जीत लिए। भद्रीपाल ने अपनी स्थान की पृथ्वी मध्यभारत के अनेक भागों को जीतकर की। मध्यपि उसके पिछले दिन सुख से न बीत सके और राष्ट्रकूट हम्म तृतीय ने फिर घेरे प्रदेशों को लूटा खतोटा।

महेन्द्रपाल द्वितीय ने निश्चय काफी काल तक प्रतिहारों की शक्ति और राज्य पूर्वकृत संभाल रखा परन्तु दिन दिन प्रतिहारों की शक्ति कमज़ोर होती गई और उनके प्राप्त विलापे गए। उन प्राप्तों में नई शक्तियों की प्रतिष्ठा हुई—महोवा में चन्द्रेलों की, ग्वालियर में कच्छ-पश्चातों की, दाहल में चेदियों की, मालवा में परमारों की, अन्धिलवाह

में चालुक्यों की, दक्षिण राजपूताना में गुहिलों की और अजमेर सौंभर में चाहमानों की।

परन्तु प्रतिहारों का सर्वथा विनाश ही न हो गया और मेरे नगर तक में कुछ दूल तक उनका अधिकार बना रहा। राज्यपाल दसवीं सदी के अन्त में मेरा राजा या जिसने सुखुमगीन के विश्व जयपाल की मदद के लिए सेना भेजी और हार खाई। सुखुमगीन के पुत्र महमूद गजनवी को रोकने के लिए आनन्दपाल ने जब हिन्दू राजाओं को सहायता के लिए आमन्त्रित किया तब राज्यपाल ने फिर अपनी मदद भेजी और पिर उसे हारना पढ़ा। १०१२ ईस्ती ने उसे स्वर्य अपने नगर से महमूद के सामने भागना पढ़ा। महमूद उत्तर भारत के युक्तमणि सुभ्र कज्जीज के बैमव और समृद्धि का संवाद पा चुका या और अब वह मुझे लूटने चल पड़ा या। राज्यपाल ने जब उसके आने की स्थिति महमूद के खिलाफ़ में जा दिया। महमूद ने मुझे तुरी तरह लूटा और मेरे मन्दिर नूमिसात कर दिए। अनन्त अनन्त धन रत्न अपने ऊँटों पर लाद वह गव़नी ले गया। सदियों से मेरे मन्दिरों ने अगाध सम्पत्ति संचित हो गई थी। हिन्दू राजा एक बूँदे से लड़ते जरूर थे मगर जहाँ तक मन्दिरों का सम्पन्न या वे उन्हें छूते तक नहीं थे और उन पर धन भी चढ़ाते थे। सदियों ही वह सारी संचित सम्पत्ति महमूद उठा ले गया।

अब जो उसके सौटने पर राज्यपाल लौटा तब पढ़ोयी हिन्दू राजाओं को उससे बड़ी शिकायत हुई और चन्देल दृपति गण्ड ने अपने युवराज विद्याशर देव को तेना के ताय भेज राज्यपाल का बध करा दिया और उसकी गहरी उसके बेटे त्रिलोचन पाल को दे दी। परन्तु मैं चन्देलों की यह नीति समझ न सका। जब कि महमूद के हमले के समय वे स्वर्य अलग रहे थे। अब जो महमूद ने यह सुना तब वह

लौटा । उसने त्रिलोचन पाल को उखाइ फेंका और मेरे नगर को उसने छिर लूटा । परन्तु सबं चन्द्रेल भी उसकी चोट से बच न सके । प्रतिहारी में किंवि प्रकार पश्चाल किर भी बच रहा जो इस कुल का अन्तिम राजा था । प्रतिहारी के बाद मेरी राजनीति किर छिप गिया हो गई । किर मुझ पर मत्स्य-न्याय का दुराचरण होने लगा और मैं मज़बूतों की छीना भवठी से ऊब उठी ।

यमारस की ओर जाने वाले नियालितगीन ने मुझे बुरी तरह लूटा, जेदि गाँगेय देव और उसके बेटे कर्ण ने भी मुझ पर अपने आकमणों के अनुप्रह किए और मालवा के परमार भोज ने भी मुझे अपनी शक्ति और लूट-लिप्सा का मजा लेताया । इस प्रकार जब मैं इस निरन्तर छीना-भवठी और अनधरत आकमणों से ब्याकूल थी तभी एक असामान्य सामरिक चन्द्रेष्व ने सहसा मुझ पर अधिकार कर मेरी रक्षा की । उसी ने प्रसिद्ध गहडवाल राजकुल की मेरे नगर में प्रतिष्ठा की और मैं किर एक जार गौरव और उत्कर्ष के लम्बे ढग भरने लगा ।

चन्द्रेष्व ने शीघ्र सारे संयुक्त प्रान्त पर आगना अधिकार कर लिया । दिल्ली भी उसके कब्जे में आ गई और अपने अभिलेख में उसने उचित ही अपने आप को काशी, अयोध्या, कल्याज और इन्द्रस्थान (दिल्ली) का रक्षक लियताया । परन्तु बस्तुतः गहडवालों के शासन में गोविन्द-चन्द्र ने मुझे विशेष गौरव दिया । जब वह केवल युवराज या तभी उसने गज़नी के सुल्तान नवाज़ तृतीय के भेजे हाथिय तुगलकिन को बुरी तरह परास्त कर दिया । इसके अतिरिक्त उसने मारव का भी एक भाग जीत लिया और पटने सथा मँगेर के जिलों में आकमणों को गाँव दान दिए । किर कुछ तो अपने राज्य की सेनाल के लिए उसने काशी को अपनी पूर्वी दूसरी राजधानी बनाया । पूर्वी मालवा को भी उसने जीता जिससे न केवल मेरी समृद्धि

बड़ी बर्तन में उत्त समय के संसार के सबसे प्रसिद्ध नंगरो में गिना जाने सका । गोपिन्दचन्द्र गहड़बाल कुल का सबसे प्रतापी दुश्मि था और उसको मैरी दूर दूर के राजाओं से थी । कारमीर का जयसिंह, गुजरात का तिद्दराज जयसिंह और दूर के चोल तक मेरो मैरी का दम भरते थे । गोपिन्द चन्द्र के मन्त्री लक्ष्मीधर ने इसी काल मेरे नगर में अपना प्रसिद्ध 'कहनतरु' लिखा जो कानून के साहित्य में लासानी प्रचलित है ।

जहाँ तक विदेशी शक्ति के नुकाबले को यात है विजयचन्द्र भी कुछ कम सफल न हुआ । गजनी से निकाले जाने पर अमीर खुसरो ने लाहोर पर कब्जा कर लिया था, और अब वह कच्छ की तरफ बढ़ा परन्तु विजयचन्द्र ने उसे दरा कर उल्टे रौंब लौटा दिया । विजयचन्द्र के शासन काल में शत्रुपि मेरे दूसरे प्रान्त मेरे अधिकार में चले रहे, दिल्ली मेरे हाथ से निकला गई । शाकम्बरी के चाहमानों का सूर्य उदय हो रहा था और उनके वत्तराज चतुर्य योत्तल देव ने दिल्ली मुझसे छीन ली ।

इस कुल का मैय अन्तिम राजा जयचन्द्र हुआ । मैं पहले कह चुका हूँ कि मेरी नहता राजनीतिक इष्टि से इन दिनों बड़ी थी जो कभी शाटलिपुत्र की रह नहीं थी या जो बीचे दिल्ली को हुई । और यद्यपि जयचन्द्र वह पहुँचते पहुँचते गहड़बालों को शक्ति चीण हो चुकी थीं परन्तु अपने २०५ से उत्त सूपति ने उसे प्रतिष्ठित रखा । अनेक राजा उसका लोहा मानते थे और एक बार तो वह चौहानों की नाक के नीचे से गुजरात ही और शद गया था और उधर उसने मारकाट मचा दी थी । पिछले दिनों में वही एक राजा या निकने अश्वमेष किया । उसके अश्वमेष में अनेक राजाओं ने परिचर्या की; स्वर्यं चौहान नरेश पृष्ठीराज के लिए द्वारपाल का स्थान नियत किया गया था इस अर्थ में कि दिल्ली मैय पूर्वी द्वार थी और वह उसका रक्षक था । परन्तु पृष्ठी-राज स्वर्यं कुछ साधारण राजा दा योद्धा न था । उसने देश के भीतर

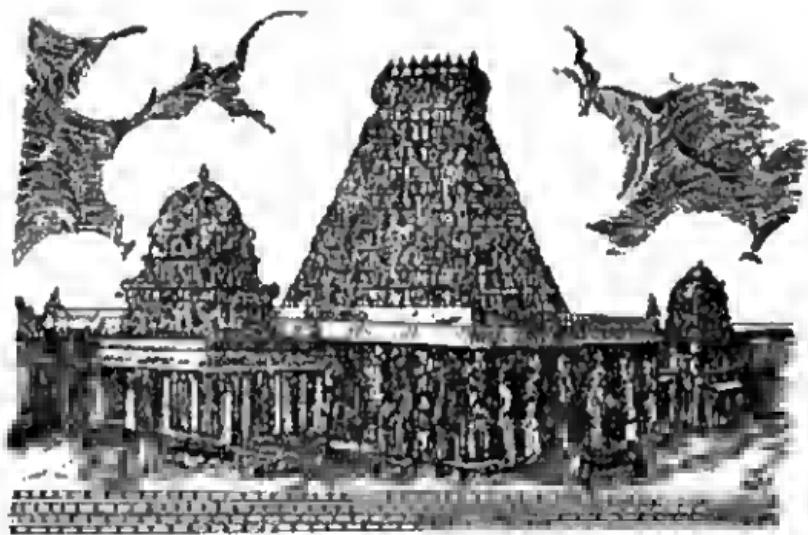
अनेक प्रदेश जीते थे और यद्यपि वह प्रगट विलासी था उसने अपनी चौरता के भी अनेक परिचय दिए। और वह उत्कालीन ललित कथाओं का उदयन की भाँति नायक हो गया। परन्तु उसकी अधिकतर लहाइयों नारियों के लिए ही हुई थी। स्वयं जयचन्द्र के साथ उसने उसकी लहाई भगाकर उससे शमुता पाली और उसका नवीजा यह हुआ कि जिस जयचन्द्र की मरी से पहली बार उसने शाहाबुदीन गोरी को हरा दिया था, दूसरी बार उसी के अभाव से उससे वह हार कर मारा गया।

दूसरे साल वही शाहाबुदीन तिर लौटा और उत्तर भारत के राजनीतिक केन्द्र मुक़ब्ले सर किए व्हीर उसे कल न रखी। शक्तियाँ असमान थीं पर जयचन्द्र चन्द्रावर के मैदान में अपनी सेना लेकर पठान गुल्तान के सामने आ डटा। लहाई जम कर हुई और अपनी सेना के साथ अस्सी वर्ष का यह वृद्ध भी सेत रहा। इस सम्बन्ध में मैं यह सह कह देना चाहता हूँ कि इतिहास ने पुष्पोदाज के दर्शारी कवि चन्द्र के 'पुष्पोदाज रासो' पर विश्वास कर अनुर्ग कर डाला है; जब उसने जयचन्द्र को कायर और देशद्रोही कहा है। मैंने तलावड़ी के मैदान के मुद्द का वर्णन कुना है और जयचन्द्र की बहादुरी खुद देखी है और मैं कह रखता हूँ कि उस बीर ने चन्द्रावर के मैदान में प्राण देकर मेरा मुख उत्त्वल किया।

अब मुझे आगे इतिहास के संम्बन्ध में गिराव इसके कुछ कहना शेष न रहा कि मेरी स्थिति अब दिग्ड़ कर एक मामूली इसे को हो गई जो आज तक बनी है। दिल्ली जो कभी मेरी चेती थी दिनोंसे उत्तरिं भरती गई और आज वह भारत की सिरमोर है। परन्तु मुझे इस बात की तर्जिक भी ज्ञानि नहीं क्योंकि जीवन किसी का सदा एक रा नहीं रह पाता और जो कभी चढ़ा कुछ अजब नहीं कि नीचे भी उत्तर आए और इसी उम्मत पर मैं जिन्हा हूँ। हाँ, पिछले दिनों में मेरी

अपनी हकीकत गो कुछ खास नहीं रही मैने अपना मुँह छिपा लिया । मुझे याद है विहारी अक्षगान शेरशाह की राजनीति और तजवार दोनों की टक्कर खाकर हुमायूँ जब भागा तब उसे राहन मिली थी परन्तु हुनिया को अपनी ताकत और बादशाहत का यहीं कराने जब वह बाबर का विलासी बंशधर एक लाल सेना लेकर मेरे मैदानों में शेरशाह के विरुद्ध आ उतरा तब मैने सोचा शायद पानीपत मेरे मैदानों में उत्तर पड़ा है । पर बास्तव में देखा मैने वह जो शायद कभी किसी ने न देखा । दोप का अभी एक गोला न छूटने पाया था, सिराही ने अपनी बन्दूक न दाढ़ी थी कि एकाएक मुगल सेना भाग चली । शेरशाह अपने जवानों को लिए देखता रह गया । उसकी भुजाएँ दो हाथ चलाने को बेताज होती रही पर उन्हें मौका न मिला और मैदान साफ हो गया । किर हुमायूँ जो भागा वो मारवाड़ और सिंध के रेगिस्तान की खाक छानता तेहरान में ही बाबर रुका । उसके बाप बाबर ने बाहर हजार छुड़सवारों के साथ इबाहीम लोदी की एक लाल सेना शेरशाह के नाम से कौंग कर भाग गई । इबाहीम ने तो राजधानी की रक्षा के लिए अपने प्राण तक सो दिए हे पर हुमायूँ ने मुद चेत्र में एक नया तेवर दिया ।

उस लड़ाई में पहले की ही भाँति मेरा कुछ अपना न था । बास्तव में मेरे नागरिक रुदा से लड़ाइयों से उदासीन रहते आए थे । राजनीति में भाग लेना उन्होंने कभी मुनासिब न समझा । राजनीति के बाल ज्ञानियों की समझी जाती थी और हारना जीतना उनका ही काम था । नागरिक अपने काम में रुदा नुपचार लगे रहते आए थे । विजेता चाहे देशी हो ज्ञाहे विदेशी, मुद का परिणाम चाहे हार हो चाहे जीत उनको उससे कोई दिलचस्पी न थी यद्यपि उनके परदार, उनकी जपीन रियासत अस्तर छिन जाया करती ।



कांची

मेरी गणना भारत के प्राचीन सात नगरों में है और मैं संसार की उन नगरियों में से एक हूँ जिन्होंने अपनी भूमि पर साम्राज्यों का उत्थान-पतन देखा है और पिर भी जीवित रही है। मैं आज भी जीवित हूँ यद्यपि मेरा प्राचीन गोरव अब न रहा। पल्लवों और चोलों के साम्राज्य मेरी ही धरा पर उठे और गिरे हैं और मैंने पाण्ड्यों तथा चालुक्यों से संघर्ष किया है।

मैंने धर्म और लक्ष्मि का भी दक्षिण में नेतृत्व किया है और मैं चराचर पुरानी परम्परा की समर्थिका रही हूँ। अन्ध विश्वास, धार्मिक कठुरपन और सामाजिक कठोरता ने अनेक बार मुझे अपना गद बनाया है। मेरी प्राचीरों के पीछे मनुष्य मनुष्य में देव दानव का सा अन्तर रहा

है और मैंने अपने प्रतिदू मन्दिरों के द्वार निम्नवर्णीय अद्वालुओं के सामने बन्द कर दिए हैं। मेरा इतिहास शक्ति, गौरव और कूर्महृत्ता का है। फिर भी मैं जीवित हूँ उसी प्रकार ऐसे काशी, प्रयाग और मथुरा। दक्षिण की तो मैं काशी कहाँ ही जाती हूँ।

मेरी इस्ती भी काशी प्राचीन है। यद्यपि मैं उस प्राचीनता का दावा नहीं कर सकती जो उन नगरों को प्राप्त है। फिर भी दक्षिण में मेरा जन्म काशी प्राचीन काल में दक्षा था यद्यपि उत्तर के आयों ने मुझे बहुत पीछे जाना, तब जब मेरी समृद्धि वैभव और कंचन उनके हाथ लग चुका था। फनकर्षण और स्वर्ण संचिता होने के कारण ही संभवतः उत्तर भालो ने मेरा नाम कौची रखा है परन्तु आज तो मुझे यह भी याद नहीं कि वास्तव में मेरा नाम इससे पहले क्या था।

मेरा उल्लेख पहले पहल महर्षि वत्ससिंह ने अपने 'महाभाष्य' में किया फिर तो मेरा निर्देश उत्तर की कथाओं और अभिलेखों में निरन्तर होने लगा। मेरी राजनीति मुद्रू अतीत में खोई हुई है और उसके प्रारम्भ के चरण में अपनी धुंधली टट्टि से साष्ठ नहीं देख पाती। पर पल्लवों का उत्कर्ष और उनकी कीर्ति मेरी स्मृति में घूम रहे हैं, मेरे नेत्रों के सामने सूर्तिमान हैं।

पल्लव फौन थे। यह सही लही कोई नहीं जानता। मैं स्वयं नहीं जानती। इतना मुझे याद है कि ये संभवतः ब्राह्मण थे और वाकाटक ब्राह्मण वंश की ही किसी शास्त्र से समुद्रभूत हुए। भारत के अनेक राजकुल ब्राह्मण रहे हैं जिन्होंने शब्द की उपातना के कारण दक्षिय संदर्भ ग्राप की है। वाकाटक स्वयं ब्राह्मण थे। पल्लव अपने को द्रोणाचार्य और अश्वेत्यामा के वंशजं बताते थे और मैं नहीं समझती कि उनकी उस धारणा में क्यों सन्देह किया जाय। इतना निरचय है कि छालान्तर में उनका ब्राह्मण होना लोगों को भूल गया और तभी, स्वयं पल्लव

हो, उन्हें केवल चत्रिय मानने लगे। चौथी सदी ईसवी के मध्य ब्राह्मण कदम्ब राजकुल की नीति ढालने वाले मध्यूर शर्मा का जब भेती नगरी में अपमान हुआ तब उसने पल्लवों को चत्रिय कह कर ही चिकारा। मतलय यह कि भेरी नगरी में वेदाध्ययन करने वाले विचहण मध्यूर शर्मा तक को यह पता न या कि जिन पल्लवों को वह चत्रिय कह रहा है कस्तुतः वे ब्राह्मण थे। और अपने चाप कर्म के कारण चत्रिय माने गए।

पल्लवों ने प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं की संरक्षा की। उनके भेदाभ्यासी दार्शनिक और सारित्यिक उगकी संरक्षा में और भेरी नगरी में समित्प्राणी होकर आए और विधिवत् विद्यम हुए। पल्लवों ने अपने अभिलेख प्राकृत और संस्कृत में लिखवाए और इन्हीं अभिलेखों से उनके प्रारंभिक राजाओं की कीर्ति फैली।

भेरी भरा पर उनकी कीर्ति का आरंभ शब्ददेव ने किया—बद्धदेव जिसने राजकुल का तो प्रारम्भ न किया पर उसकी प्रतिष्ठा निश्चय बढ़ाई। पल्लवों का गौरव बाह्यतम में भेरी नगर में उसके पुत्र शिवस्कन्धवर्मा ने स्थापित किया। पिता ने ही तैलगृ आन्ध्रपथ और तमिल तोएड-मण्डल पर अधिकार कर लिया था। इसी तमिल तोएडमण्डल की मैं राजनीतिक केन्द्र थी और शिवस्कन्ध वर्मा ने याएँगों आदि की विजय कर भेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई। उसने विजयों का ऐसा तीर्ता बैंधा कि उस उठते हुए राजकुल से आए पास के राजा आतंकित हो उठे। सातवाहनों की विजयी शक्ति के ऊपर पल्लवों का पहला विजान तना था और शब्ददेव ने अपने उत्तरी प्रान्त आन्ध्रपथ को उन्हीं से फ़रट कर छीन लिया था। सातवाहनों का पतन और पल्लवों का उत्थान प्रायः एक ही सदी का है; तोपरी का—तभी का जब उत्तर के भगव भे एक और शक्ति—गुप्तों की—अपना मस्तक उठा रही थी।

शिवस्कन्ध दर्मा ने यहों की परम्परा भाँध दी । अश्वगेश, वाजपेय, अग्निशोम उसने सभी किए और इस प्रकार अनने ब्रह्म चत्रियत्व का उसने परिचय दिया । शिव के परम भक्त उस दृष्टि ने पढ़ोली राजाओं के हृदय में आतंक जमा लिया । उसने अपने अभिलेख उत्तरी प्राकृत में लिखवाए । उसके बाद ही वह प्रसिद्ध विष्णुगोप नाम का नरेश ने री गढ़ी पर बैठा जिसका नाम अशोक द्वारा स्थापित सत्तम पर समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में खुश । समुद्रगुप्त मारव गुप्तों का साक्षात्य निर्माण था । आर्यवित्त के पढ़ोली राज्यों का उन्मूलन कर आटविक राज्यों को संत्रस्त कर वह पूर्वी समुद्र के तट से पहाड़ और नदियों लाँचता भेरे नगर में आ पहुँचा । जीत पर बीत उठके कदम चूमती गई और भेरे स्थापी विष्णुगोप को भी कुछ करते न बना । दक्षिणापथ के सभी राजा धीरेखीरे उसके रथ चक्र द्वारा कुचल गए थे । विष्णुगोप भी उन्हीं की भाँति अपनी स्वतंत्रता और साय ही भेरी भी खो चैठा ।

समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्नियज्य के अवसर पर ऐसी जातियों तक की आजादा खोन लो यो जिन्होंने शत्रु को तिर न झुकाया था । मैंने स्वयं अपने ग्राजीयों के पीछे पहले कभी शत्रु को दहाड़ते न सुना था । परन्तु चन्द्रगुप्त ने मेरे उस गोरख में दाग लगा दिया । अपनी प्रशस्ति में उसने दर्प के साथ लिखवाया कि धर्मविजय दृष्टि की भाँति उसने दक्षिणापथ के राजाओं की 'भी' तो छोन ली पर 'मेहनी' उनकी उसने लौटा दी । यह धर्म-विजय की नई परिभाषा थी, ईमानदारी की विड-भना । मेहनी जिवकी वैदेशिक नीति उसकी जनता या राजा के अधिकार में न हो बल्कि उसका संचालन विदेशी सप्ताट करता हो, कैसे स्वतन्त्र कही जा सकती है ।

परन्तु दूर की सता चाहे वह कितनी भी शक्तिमती क्यों न हो उन ग्राजीय सदियों में विशेष सफल न हो पाती थी । दूरी और यातायात

के साधन की कमी के कारण दूर से अधिपति का अपने मंडलों के ऊपर दृष्टि रखना सम्भव न हो पाता था । लम्बद्वयुपति वो ही पकड़ दक्षिणापय के राज्यों पर कमबोर पह गई और मैंने भट्ट अपनी स्वतन्त्रता फ़िर स्वायत्त कर ली ।

कालान्तर में वीर कुर्च ने अगली सदियों में मेरे लिए प्रायः वही प्रताप अर्जित किया जो कभी शिवस्कन्ध वर्मा ने किया था । और मैं फिर एक बार दक्षिण के आकाश में बाल रवि को भौति उठ चली । परन्तु मेरे साम्राज्य और गौरव का आरम्भ वस्तुतः छड़ी सदी ईस्ती में हुआ । उसके मध्य के बाद जब सिंहविष्णु ने आस-पास के राज्यों को अपनी शक्ति से हिला दिया उसने पार्वत्यों, कलान्त्रों और अन्य राज्य-शक्तियों को अपनों चोट से बचाया तो उसका फ़िर दिया । वह परम भागवत था, विष्णु का अनन्य भक्त और उसने अनेक मन्दिरों से मेरा मंडन किया । मेरे पहलव स्थामी साहित्य के अप्रतिम प्रेमी थे और सिंहविष्णु ने भी उत्तरेश्वर में अपना भाग अमित मात्रा में पाया था । उत्तर भारत के तत्कालीन साहित्यिक जगत में उस महाकवि भारवि का उदय हुआ था जो विष्णुली सदियों में अपने कान्द के 'गौरव अर्थ' के लिए प्रसिद्ध हुआ । किरातार्जुनीय के असाधारण काव्यकार भारवि को सिंहविष्णु ने अपने आतिथ्य के लिए आमन्त्रित किया । भारवि आया और उसने अपनी भारती से मेरा वातावरण मुखरित किया ।

सातवीं सदी के आरम्भ में सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रवर्मन् के हाथ में मेरा, राजदण्ड आया । महेन्द्रवर्मन् प्रथम कुङ्कुम यशस्वी न था । आरम्भ से ही उसे वातापी के प्रबल चालुक्यों में जो भयानक कशायकशा हुई उसका आरम्भ महेन्द्रवर्मन् के शातन काल से ही हुआ था । उत्तरपथ के राजा निरन्तर अपनी राजनीति में बराबर 'प्रसर' से छिद्रान्तः प्रेरित रहते थे । कम्भोज के ऊर्ध्वस्थित हर्षवर्द्धन का काल या वह । और

वह प्रभाकर बद्धन का तनय 'तद्वलोत्तरापय' का स्वामी था । उत्तरापय के आजाद राजकुलों की आजादी छोन दक्षिण के चालुक्यों से बद टकरा गया था । परन्तु पुलकेशिन् द्वितीय भी कमज़ोर हायोतलबार नहीं पकड़ा था और उसने हर्ष को परास्त कर अवहाल के अपने अनिलेश में लिखवा या दुधि पतित गजेन्द्रानी कवीभृत्य भूती
भय विगलितरप्यो येन चाकारि हैः ।

वही पुलकेशिन द्वितीय उत्तरापय के हर्ष को पराजित कर अपनी प्रत्यरुप लिप्ता से प्रेरित दक्षिणापय के महेन्द्रवर्मन् के साथ तलबार नापने चला । पुलकेशिन् बढ़ता हुआ मेरी प्राचीरों तक सदसा आ पहुँचा और जैसा वह गर्व के साथ अपनी प्रशस्ति में लिखवाता है—“पह्लय दृपति को अपनी ही सेनाओं द्वारा उठाई धूल से आवृत कौची की प्राचीरों के पीछे शरण लेनी पड़ी” मैं अनिलेश के इस वक्तव्य की सत्त्वता का प्रतिवाद नहीं करता चाहती । परन्तु यह भी असत्य नहीं कि महीनो देरा ढाले रहने और मेरे द्वारों पर निरन्तर चोटें करते रहने पर भी पुलकेशिन् उनकी अगौला न तोड़ सका और अपनी क्लान्त दूर कर नई कुमुक की मदद पा नेहीं सेना जप प्राचीरों से बाहर निकली तब चालुक्य राज की सेना भी बातापी की ओर भागती अपनी ही उठाई धूल से आवृत हो गई ।

महेन्द्रवर्मन् पहले जैन मतावलम्बी था । यद्यनि मैं नहीं समझ सकी कि जैन धर्म में दीक्षित होकर भी नियन्त्र भद्राचीर द्वारा प्रसरित अहिंसा का द्रष्ट लेकर भी राजा विल प्रकार अपने को उस धर्म का वृती समझते थे । उनके दुर्मिल रथों का रक्त रंबन किष्ट प्रकार उनकी दीक्षा को सार्यक करता था यह आज तक मेरी समझ में न आया । भौर्य साज्जन्य का वह अप्रतिम निर्माता वह चन्द्रगुप्त भी अरने को जैन कहता था और उसने हिन्दूकुरा से भावण्यवेलगोल तक की भूमि तलबार से नोड़ दी थी । महेन्द्रवर्मन् भी जैन था । यद्यपि वह भी अन्य जैन दृपतियों की भाँति

रक्ताचरण को अपनी धार्मिक दीद्धा के प्रति अरुंदति न मानता था । मुझे सत्तोव है कि हीब उसने वैष्णव का रहस्य जान लिया और खुल्लम-खुल्ला वह रैव धर्म में दीक्षित होकर उस राजधर्म का प्रतिपालन करने लगा जिसमें राज्यानुशासन धर्म का एक अनुलंबनीय अध्याय है । रैव धर्म में उसे सन्त अपर ने दीक्षित किया था । मेरी नगरी में वह धर्म अनजाना न था, परन्तु उसका विशेष विस्तार इह दीद्धा के बाद ही हुआ ।

वह पल्लव दृपति न केवल शासक और योद्धा था बरन् वह निर्माता भी था और शिव के अनेक मन्दिर जां । उसने अपने राज्य में बनवाए थे, आज भी अपनी प्राचीन शक्ति से खड़े हैं । दक्षिण भारत में पर्वतों में काटकर मन्दिर बनवाने की परामर्श का आरम्भ महेन्द्रवर्मन् ने ही किया और इसी के पल्लवरूप उसने अपना 'चैत्यकारि' विद्व भारत किया । वह ललित कलाओं का भी असाधारण पोषक था । चित्रण, नर्तन और गायन की कलाएँ मेरी नगरी में उसकी संरक्षा में खूप कली फूली । संगीत का तो वह स्वयं आचार्य था और उहकोड़ा की रियासत में कूड़मिशनी की चढ़ान पर जो संगीत संबंधी शाख खुश है वह उसी के आदेश से खुदा । वह स्वयं सकल नाटककार था और उसने ही प्रख्यात मत्रविलास-प्रहसन की रचना की जिसमें विविध सम्बद्धय के परिजागको का प्रहसन है ।

महेन्द्रवर्मन् के बाद उसका यशस्वी पुत्र नरसिंहवर्मन्, प्रथम मेरा स्वामी हुआ । पल्लवों के राजकुल में उसका सा प्रतापी दृपति बूढ़ा न हुआ । चालुक्यों के साथ संघर्ष चल रहा था और पुलकेशिन शब्द मी निष्क्रिय न था परन्तु नरसिंह ने उससे अन्ततः निपट लेने का विचार हट कर लिया । चालुक्यराज यद्यपि संतार प्रसिद्ध था । ईरान के तप्पाइ खुबरू द्वितीय के साथ तक उसने दूत-विभिन्नय किए थे और अजन्ता को चित्र-राजा में उस दोत्य का अंकन भी हो चुका था । परन्तु नरसिंह ने उसे इतना नगरण लम्भका कि उसके विरुद्ध वह स्वयं मैदान लेने तक को हैयार

न हुआ। उसने केवल एक विशाल सेना अपने पश्चकमी सेनापति परन्जोति की अध्यक्षता में चालुक्यों की राजधानी बातोपी भेजा। परन्जोति का आकमण पुलकेशिन के लिए वर्षथा: अचूक पिछ हुआ यद्यपि उसने उसके लापने पीठ न दिखाई। हर्ष का विजेता पुलकेशिन अपनी राजधानी की रक्षा करता हुआ जूफ मरा। सेह वशों तक चालुक्यों को दक्षिणी भूमि और उनकी राजधानी पर नेरा अधिकार रहा। मेरे नृपति नरसिंह-बर्मन् ने उस विजय के स्मारक स्थल पर 'बातापिकोरद' नाम विद्वां शारण किया।

नरसिंहबर्मन् भी अपने विता की ही भौति शैव था और उसने भी महाबलिपुरम में अनेक मन्दिर बनवाए। महाबलिपुरम उसी का बसाया हुआ था और वही से उसने सिंहल के विश्वद दो दो भार अपनी नौ सेना के साथ आकमण किया। उसके दरवार में मानवर्मा नामक तिहल के राजकुमार ने आभ्रद लिया था। उसी की सहायता के लिए नरसिंह ने सिंहल पर आकमण किया। पहला आकमण तो निष्कल गया। परन्तु दूसरे ने मानवर्मा को बहाँ का चिंहासन जीत दिया और पल्लवों का प्रतार उस द्वीप पर छा गया। वह आकमण राम के आकमण के भौति भूत काल तक चिंहलवासियों को न भूला। मेरा गौरव आसमान चूमने लगा था।

नरसिंहबर्मन् ने दक्षिणापय के प्रायः सभी राजाओं को जीता था और उसकी शक्ति उपर्युक्त सम्मान्य हो गई थी तभी उसका पुत्र मरेन्द्रबर्मन् दिलीय पल्लव चिंहासन पर बैठा। परन्तु उसकी विलाहिता असुप्रय में ही उसे खा गई। मेरा उससे पिछ छूटा और मैं उस पर मेरेश्वरबर्मन् प्रयत्न के ओर विशेष आशा से देखने लगी जो अब मेरा तरुण स्वामी हुआ। परन्तु नेरी आशा शीघ्र ही भग्न हो गई। मेरे उत्तरी प्रान्त नेरै हाथ से निकल गए। कारण यह या कि बातोपी राजकुले ने तेरह हर्ष

चाद द्विर प्रतिष्ठा पाई पी । पुलकेशिन द्वितीय का पुत्र विकमादित्य प्रथम असाधारण योद्धा और कर्मठ व्यक्ति था । उसने बैंगी के चालुक्य राज से मदद ली और दोनों ने निलकर बातानी तथा उत्तरके दक्षिणी प्रान्त मुख से छीन लिए । बैंगी बास्तव में कभी मेरा ही प्रान्त था जिसे पुलकेशिन द्वितीय ने महेन्द्रवर्मन् प्रयन से छोनकर अपने अनुज को दे दिया था जिसने पूर्वी चालुक्यों की शास्त्रा बहाँ जमारै थी । विकमादित्य अपने छोए प्रान्तों को लौटा कर ही न रुका थरन् उसने नई शक्ति अर्जित कर मेरे नगर पर भी धावे आराम किए । एक बार तो उसने मुक्ते प्रायः जीत ही लिया था कि सदसा परमेश्वरवर्मन् को युद्धनीति ने वौला पलट दिया और आक्रमक को अपने पहने वस्त्री माप को लेकर सप्त भागना पड़ा । उत्तरके राष्ट्र संक्षिप्त, छुत्र, चैंबर आदि सभ योद्धे छूट मए । परन्तु विकमादित्य ने अपने दक्षिणी प्रान्तों पर अपनी यकड़ मज़बूत बनाए रखी ।

महेन्द्रवर्मन् द्वितीय का पुत्र नरसिंहवर्मन् द्वितीय हुआ । उसके शासन काल में भी चालुक्यों के साथ हमारा संघर्ष चलता रहा । विजय कभी मेरे हाथ, कभी बातानी के हाथ आती रही और युद्ध समाप्त न हो सका । इतना अवश्य था कि चालुक्यों की चोटी से येरी शक्ति दिन दिन चोत्य होती जा रही पी । नरसिंहवर्मन् द्वितीय गिरती हुई रिप्ति को विशेष न संभाल सका । किर भी विकमादित्य द्वितीय के आक्रमणों के सामने उसने कभी तिरन भुक्ताया और अनेक बार तो चालुक्य नृपति को अपनी मुँह की खानी पड़ी ।

नरसिंहवर्मन् द्वितीय का शासन काल अपनी साहित्यिक रचनाओं के लिए भी मुख्य कम प्रतिद नहीं । संस्कृत के अलंकार शास्त्र का प्रकाशद पंडित और सूप्रकार दण्डी नरसिंह वर्मन् की ही संख्या में फलान्मूला । अपने विख्यात अलंकार प्रन्थ और 'दशकुमारचरित' की उसने पैरे ही नगर में रचना की ।

नरसिंहवर्मन् द्वितीय स्वयं कुछ विशेष कर्मठ न था । परन्तु उनके पुत्र परमेश्वरवर्मन् द्वितीय ने तो पदन की पराकाशा ही कर दी । अब तक जो मैंने केवल समृद्धि और शक्ति जानी थी, अपने मरण की सौंस गिनने लगी । परमेश्वर का अन्यायु जोबन समाप्त होते ही मेरे नगर में रक्त की दोस्ती खेली जाने लगी । राजकुल के विविध व्यक्ति ने भी सत्ता को स्वायत्त करने का प्रयत्न करने लगे और दिन-नात उनमें राजनीतिक कठर व्योंत होने लगे । महीनों के लहूलुहान के बाद नन्दिवर्मन् याजा हुआ । वह राजा हुआ क्या यह गजा चुना गया और मुझे इसे कहते रहते होते होता है कि मेरी जनता ने राय की राजकुलीय स्वाभाविक परंपरा को दोष औचित्य को अपना साधन बनाया और उस समर्थ व्यक्ति को मेरा स्वामी चुना जो अपनी कर्मठता और योग्यता का पिछले गद्युदों में प्रमाण दे दिया था । नन्दिवर्मन् सिद्धविष्णु के अनुब के वशवर हिरण्यवर्मन् का पुत्र या और उसने विषम शक्तियों को परम्भूत कर मेरी नगदी में फिर से शक्ति की प्रतिष्ठा की । चालुक्यों की चोटें मुझ पर निरन्तर पड़ रही थीं और इस महीनों की उथल-पुथल के कारण तो मौका दा वे दुगुनी दो गईं थीं । परन्तु नन्दिवर्मन् ने उनका सकल प्रतिकार किया । अनेक राजाओं को चालुक्यों के अतिरिक्त उत्तरे पराप्त भी किया और दक्षिणपथ पर फिर एक बार मेरा प्रभुत्व था गया । प्रताप का जीवन वितानेवाली में अपने गद्युदों से ही परेशान होकर जीवन से ऊब चली थी क्योंकि बाहर वालों की ही हुई प्रतिष्ठा त्वरित्रता के बदले मुझे कभी संपत न हुई ।

इतना मैं कहूँगी कि नरसिंहवर्मन् का शौर्य भी मेरे उस राजनीतिक स्वल्पन को सर्वया रोक न सका जो शक्ति ही मेरे भाग्य की रेखाएँ लिलने लगा था । उसने केवल उस स्वल्पन को अपने कन्धे द्वारा टेक दे दी । फिर भी बुझती आग की उस चिनगारी ने मेरे मुख की शामा कुछ काल के लिए निःतन्देह प्रशायित कर दी ।

उत्तर में इसी काल एक कान्ति हुई और बातारी का चालुक्य राजवंश भी काल की विकट गति से बचित न रह सका। यह भी उसके प्रहार से असनी अन्तिम घटियों मिनने लगा या और शीघ्र राष्ट्रकूटों ने उनके हाथ से शक्ति छीन ली। नवीं सदी में राष्ट्रकूटों के उस राजकुल में अपनी राजधानी मान्यस्त्रेड में विशेष स्थापित पाई। उत्तर की राजनीति में तो उन्होंने कीर्ति अर्जित की ही, उनके राजाओं ने उन्होंने, कज्जीज और प्रयाग तक तो धावे प्रारे ही, दक्षिण की ओर भी उन्होंने अपनी हाँटि कीरी। दन्तिर्गुर्ग जिसने एलोरा के प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर का निर्माण आरंभ किया था, गेरी ओर किरा और मेरे राजा को परास्त कर दिया। उससे अपनी आजादी, धन के मोल ले जैसे ही मैं चंभली बैठे ही उस संवर्ध के प्रति मुझे आकृष्ट होना पढ़ा जो अब चालुक्यों के स्थानापन्न राष्ट्रकूटों ने प्रारंभ किया था। दन्तिर्गुर्ग ने यिजमी होकर भी पल्लव राज को अपनी कल्या ब्याह दी यो जिससे दक्षिण या दन्तिर्गुर्ग दुश्मा। परन्तु यह वैवाहिक संवर्ध द्वय भर के लिए भी उस प्रत्यर लिप्ता का प्रतिश्वस्य न हो सका जिसका भ्रुव और गोविन्द रूपों ने जिर से प्रारंभ किया। गोविन्द ने तो कुछ तमय के लिए मुझ पर पूरा अधिकार ही कर लिया यद्यपि शीघ्र उसके चंगुल से निकल आजाद हो गई। कृष्ण वृतीय ने भी मुझ पर कुछ कम क्षारे न मारे परन्तु जिर मैं अपनी काया घसीटती ही गई।

इसे मैं काया पसोटना ही कहूँगो क्योंकि मेरा जीवन अब गोत्तमय न रह गया था। अब अपने इष्ट देवता से यही मनाती कि मुझ पर विदेशी लोड़े न हो और ही तो कम हो। परन्तु मुझमें अब इतनी शक्ति न रह गई थी कि मैं अपने सोए हुए प्रान्तों को लौटा लौं। किर अपराजित वर्मन के शासन काल में तो मेरी स्वतंत्र स्थिति की इतिहासी ही हो गई। बोल नृपति उसी प्रकार दक्षिण की ओर से तुझ पर आकमण कर

रहे थे जिस प्रकार राष्ट्रकूट उत्तर की ओर से । और आदित्य प्रथम ने तो पल्लव कुल का सर्वया नाश करके मुक्तों सदा के लिए अपने अधिकार में कर लिया । मुझे अब भी याद है कि अकर्मण वीरवहीन पल्लव अधिकार किस प्रकार तद निरह और विपन्न हो गए थे ।

मैं पल्लवों की समृद्धि से फूली-फली थी । उनकी अर्जित शक्ति का केन्द्र होकर मैं जगत में गौरवाभित दुर्ई थी और निश्चय अपने संरक्षकों का पराभव और सर्वनाश मुझे अविराज्यगा । परन्तु राजधानी आलिंग कव किंसकी हुई है । सदा वह राजनीति में पलटते हाथों में आती जाती रही है । सर्वदा दुर्बल की ओर बीठ कर उसने विजेता खामी की ओर बल किया है । बसुन्धरा बीर भोग्या होती है । जिस बीर में उसे आरोती से छोन लेने और अपने अधिकार में रखने की सामर्थ्य होती है उसी की वह सदा से होती आर्ह है । मुझे अपने विपन्न प्रभुओं के शोड से उठ कर चोलों के अंक में जाते न देरी लगी, न दुःख हुआ । और चोलों ने मुझे कुछ कम गोरख न दिया । उन्होंने भी अपना तोपड़कोएड का विशद धारण कर मुझे उस प्रदेश की राजधानी दी रखा है । अनेक बार उन्होंने अपनी विजयों से मुझे समृद्ध किया, अनेक बार अपनी पराजयों से भागकर मेरी प्राचीरों में राखा ही । मेरा जीवन बहुत, यद्यपि मैं ऐसा पहले कह चुकी हूँ, समाप्त न हुआ था । उसकी केवल राजनीति प्रदल गई थी । पहले मैं पल्लवों से राजन्वती हुई । अब चोलों का उत्कर्ष दिन-दिन होता गया ।

चोलों के उत्कर्ष के साथ अब मेरे भाग बँध गए थे । राजाधिराज और राजेन्द्र चोल ने तो अद्भुत शक्ति अर्जित की, दक्षिण में अनजाने साम्राज्य का विस्तार किया । एक ने सागर के द्वीपों को अरनी नौ सेना के आकर्षण द्वारा जीत लिया, दूसरे ने उत्तर में बंगाल तक मालवा और महाकोशल, महोदय और तिरभुकि रीढ़ बंगाल तक अपनी

तलवार की छाया ढाली । जिस मात्रा में चोलों का प्रकर्ष हुआ उसी मात्रा में मैं कोर्टि और शक्ति अर्जित करती गई । पल्लवों ने मुझे राजनीति में दीक्षित किया था, उत्तर दिशा में उन्होंने मुझे अतिथा में प्रगति दी थी । चोलों ने मुझे पराकाष्ठा दी । मैं अब अपने चोल स्वामियों की उन्मुखी आशाकारियों थी, उनकी गविंशी राजधानी ।

ऐला नहीं कि चोलों का पराभव न हुआ हो, ऐसा नहीं कि उन्होंने दिलिया भी राजनीति में गूर्ध्वविद्विक हो जाने पर अवगति का मार्ग न देखा हो । असल तो यह है कि गूर्ध्वविद्विक हो जाने पर अबतरण का मार्ग ही बह रोप रह जाता है और चोल भी कुछ सदियों बाद दुर्बल हो जले । वातापी के चालुक्य तो निश्चय मिट जुके थे परन्तु कल्पाशी और वंगी के आज भी शक्तिमान थे । वंगी के चालुक्यों ने चोलों भी अनेक बार प्रायः वही दण कर दी जो वातापी के चालुक्यों ने कर्त्तव्यी लबों की की थी । अनेक बार उन्होंने मुक्त पर अधिकार कर लिया था और अनेक बार मेरे राजाओं को उन्हें कन्या देकर उनका प्रलाद अर्जित करना पड़ा था । एक आध बार तो उन्होंने इसे अपना दूता भी बना लिया और कालान्तर में तो वंगी का ही एक राजकुमार जो मेरे एक राजकुल का नवासा था मेरा स्वामी हुआ ।

पाण्डियों ने मेरे ऊपर कुछ कम प्रहार न किए । विरोधकर जटावर्तीन सुन्दरपाण्डिय भी चोट की बाद तो मुझे आज भी विचलित कर देती है । पाण्डियों और चोलों में भी दीर्घकालिक संघर्ष चला था और अनेक बार मेरे स्वामियों ने मटुरा पर अधिकार कर लिया था । जिस प्रकार कभी मुझमें और वातापी में संघर्ष चला था उसी प्रकार इधर की सदियों में मटुरा के साथ मेरा संघर्ष चला था । अन्त में मटुरा जौती और मैं हारी । यद्यपि स्वयं मटुरा का वैभव भी विरकालिक न हो सका । तेरहवीं सदी में सुन्दरपाण्डिय ने मुझे लूट लिया था । कुछ काल

बाद अलाउद्दीन सिलजी के उस हिन्दू-गुलाम सेनापति मलिक काफ़ूर ने लूट लिया जिसने नए मुसलमान के नए जोश से इस्लाम का प्रसार और उसकी विजय शुरू की थी। कोयशलों की चोट मुझे अब भी याद यी परन्तु मलिक काफ़ूर ने जो मुझे माय तो मैं सर्वथा दूट ही गई। मेरे मन्दिरों को जिन्हें यह तोहँ सका उसने तोहँ और उनके स्थान पर उसने प्रसिद्ध देखँड़ी की और मेरी हिन्दू सत्ता कुछ काल के लिए भिट गई।

यह मेरा क्रमबद्ध इतिहास है। इसके बाद का मेरा इतिहास वे उत्तरांकर का है। इस काल बाद मेरी राजनीति कभी इद और स्थिर न हो सकी। छोटे राजकुलों की चपेट और वहे विजेताओं की चोटें मुझे बास-बार सहनी पड़ी। मुसलमानों का विशेष प्रभाव यद्यपि मुझ पर न पड़ा परन्तु उनकी ताकत और हमलों का मजा मुझे कितनी ही चार चलना पड़ा। पिछले काल में मैं अधोगति की पराक्रान्ति की पहुँच गई जब कभी मराठों, कभी मुसलमानों, कभी किंरंगियों ने मुझे अपनी शक्ति का साथक बनाया। मुझे लूटा, और लूट कर कीर्ति अर्जित की। विजित होने-से मुझे कभी धृष्टा न हुई थी, बास-बार में विजित भी हुई थी, परन्तु मैं चाहती थी विजेता की शाक्तिक रिंगरता जो मुझे न निली।

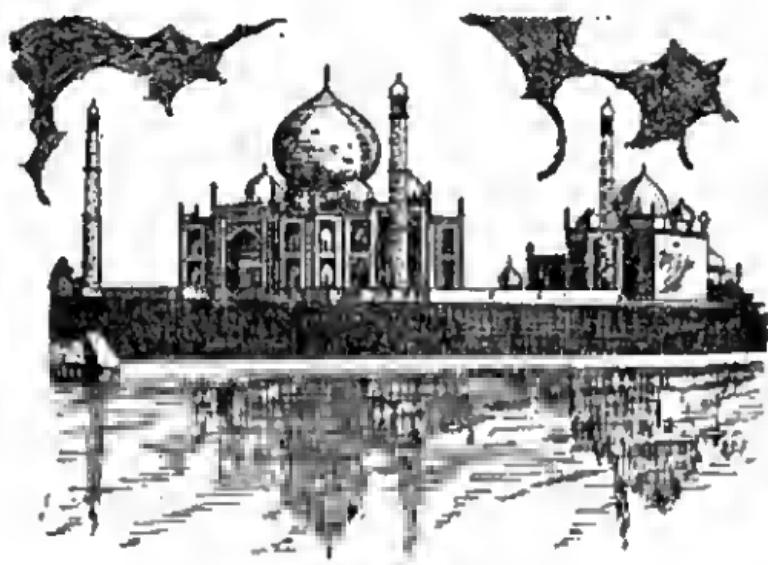
उचित तो यह था कि मैं अपने इतिहास की कहानी यहाँ बन्द कर देती पर ऐसा करने से-मैं उस धार्मिक वैश्वम्य और सांस्कृतिक रहस्य का उद्घाटन न कर पाऊँगी जो मेरी भूमि पर निछले काल थे। राजनीतिक तत्त्व मुझसे छिन गई थी परन्तु उसके पहले बहुत पहले राजनीतिक प्रतिष्ठा के साथ ही मैंने धार्मिक प्रतिष्ठा भी पाई थी। जैसे राजनीति अर्थ की थेरी है वैसे ही धर्म राजनीति का अनुचर है और धर्म ने अनेक बार मेरे अनुकूल आचरण किया था। ऐश्वर और

शैव सम्प्रदाय, जैन और थोड़े धर्म की ओर ऐसे-ऐसे मेरे राजाओं की प्रवृत्ति हुई वैसे ही वैसे बने चिंगड़े। मेरी नगरी में विशेष प्रतिष्ठा शैव और वैष्णव सम्प्रदायों की हुई। सन्ता अप्पर ने जिस शैव धर्म का प्रचार मेरे यहाँ आरम्भ किया था उसकी पराकाष्ठा दो सदियों बाद शंकर ने की। शंकर ने तो यहाँ अपने एक प्रमुख मठ की भी स्थापना की और उसके मठाधीश रिक्ष्मी शंकराचार्य 'जगद्गुरु' कहलाए। उसी प्रकार रामानुज के वैष्णव सम्प्रदाय का प्रवाव भी मेरी नगरी में काढ़ी चढ़ा और उसका मठ भी यहाँ कायम हुआ। उसके मठाधीश शैव मठाधीशों के प्रबल दार्शनिक राज्य हुए और उन्होंने 'प्रतिवाद भयंकराचार्य' का विशुद्ध धारण किया। दोनों के परस्पर संघर्ष होते रहे जिसमें निश्चय केवल दार्शनिक प्रतिवादिता ही न थी बल्कि शृणित ईर्ष्यालु प्रयोग भी थे। राजनीतियों के विकट संघर्ष मैंने देखे हैं, उपल, पुचल मैंने भुगती थी पर कभी किसी ने मुझे बाँटने की न ढोची। परन्तु इन मठाधीशों ने मुझे सर्वथा बाँट लिया। मैं 'विष्णु-कांची' और 'शिव-कांची' में बिनका हो गई।

आज मैं साम्प्रदायिक वैश्वम्य को पीठ हूँ। जहाँ एक और मेरे शैवों और वैष्णवों में संघर्ष है वहाँ दूसरी और उनमें और मानवता की उस जनसंख्या में है जिसे अचूत कहते हैं। अचूत को मेरे मन्दिर में बुझने का अभी हाल तक आशिकार नहीं ही था। उन्होंने संघर्ष हिन्दू अपनी धारा भी बचाते थे और अचूतों को अनेक चार उनके आकांक्ष से मरण भी स्वीकार करना पड़ा। मेरी नगरी में दिल्लूनाग के से मेषाकी दार्शनिकों ने चिन्तन किया था, मधूर शर्मन के से कर्मठ, यजकुल स्थापक द्राष्टव्य ने वेदाध्ययन किया था, भारवि और दरटी से काव्य मर्मज्ञों ने साहित्य सेवन किया था, धर्मराल से विज्ञान मित्र ने आध्य पाया था। परन्तु फिर भी मेरी नगरी में निरन्तर राम-द्वेष का विचार

चलता रहा। मैं छुआखूत का वह गुद बनो जिसकी छाया तक उत्तर की कारी न छू सकती थी। अब मेरी राजनीति बदल गई है, धार्मिक धिवारों के वैषम्य भी बदल चले हैं और मैं अब आशा से उन नई जनसत्ताक प्रवृत्तियों को और दृष्टि गद्दाए एकटक देख रही हूँ, जो अभी नहीं है परन्तु जिनके आगमन को धमक अब मुन पढ़ने लगी है और जिनका प्रवेश मेरी नगरी में अब देर का न रहा।





आगरा

मैं आगरा हूँ, हिन्दुस्तान के नगरों में काकी नया। कृष्ण और महाभारत के नायकों के साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा गया है पर कीन समझदार उस पर यकीन करेगा। इसलिए मैं उस सम्बन्ध को अपनी कहानी में न लाऊँगा, और न अप्रतीन दथा अप्रभेषियों का ही कोई जिक्र करूँगा जिनसे मेरा ताल्लुक हथरहाल किया जाने लगा है।

पर यह कहना भी कि मुझे होलहबो सदी में श्रक्कर या तिक्कहर शाह लोदी ने बताया कुछ कम गलत नहीं। अपने इस वक़्तम्य से मैं उनके बताने की बात से इन्कार नहीं करता और आखिर नगर और पुराने नगर कितनी ही बार उजड़े थे हैं, मैं भी एक आध बार उजड़

बहुत चुका हूँ और मुझे सिकन्दरशाह और अकबर ने भी निःसन्देह चसाया है पर मैं दोनों से पहले का हूँ, कासी पहले का ।

अगर ऐसा न होता तो भला पुराने जमाने के तबाहीय-नवीस मोहम्मद गोरी द्वारा मेरे लूटे जाने का जिक कैसे करते ? हाँ, तो मैं कासी पुराना हूँ, हिन्दुओं के ही जमाने का, यद्यपि हिन्दुओं के और जो अनेक नगर हैं उनकी प्राचीनता का मैं मुकाबला नहीं कर सकता । मेरी पुरानी आधारी के कुछ विन्द आज भी जमुना पार नदी के बावें तट पर देखे जा सकते हैं ।

मोहम्मद गोरी ने पानीपत का मैदान जीत पहले अजमेर लिया किर दिल्ली और किर गोरो बासी आई । मैं भी लुट गया और मुझ पर भी शहायुहीन का अधिकार हो गया । उसके बाद कुतुबुद्दीन एक दिल्ली के तट पर बैठा, तब मैं गुलाम बंश के अधिकार में आया । वास्तव में दिल्ली के अधिक निकट होने से मेरा इतिहास अधिकतर उसके भाग से बंधा रहा है और दिल्ली जिस दिन के कब्जे में गई है उस उस के अधिकार में मैं भी जाता रहा हूँ ।

मेरा खतंत्र गोरख वास्तव में सिकन्दर लोदी ने ही बढ़ाया । उसके पहले यद्यपि मैं कथ का लड़ा हो चुका था और शहर भी कुछ कम छोटा न था मगर मेरी महत्ता कुछ विशेष न थी । आरहवीं सदी के अन्त में मैं अपने लुटने की बात कह चुका हूँ । तेरहवीं सदी में कुछ काल मुझ पर एक राजपूत धराने का अधिकार रहा । यद्यपि मैं खतंत्र न था और मुझे अपनी आद का एक भाग दिल्ली को देना पड़ता था ।

उसी सदी के अन्त में हिन्दुस्तान पर तैमूरी दम्ले की विजली गिरी । तुग़लकों का सिलारा कथ का दूब चुका था और उसके कठपुतली से शादशाह दिल्ली और कबीर में अपने दर्बार लिए बैठे थे । दिल्ली शहर की आधी दर्जन दर्जियों के भीतर ही करीब इक्षु मील के अन्दर दो

तुगलक बादशाह गढ़ी पर थे । उन्हीं के जमाने में वह विजली दिल्ली पर पही और उसने उसे तबाह कर दिया । चार दिनों दिल्ली लूटती रही पर मेरी जान बच गई और ऐमूर उत्तर ही उत्तर मेरठ और हरदार को बरभाद करने चला गया ।

सभ्यदों का साया कुछ ताकत का साया न था । नभी के नाम पर उन्होंने अपना रुक्मि बढ़ा रखा था । दैगम्भर के बंशज होने का वे दावा करते थे और इसी दुनियाद पर उन्होंने अपना कुछ प्रभाव भी बना रखा था । खिल्ली ने उस बादशाहत की घटनसीढ़ी में दिल्ली के तात्पर पर अधिकार कर लिया पर वह सुर्द सल्तनत को संभाल न सका और सल्तनत भी क्या थी दिल्ली के आक्षणक के इलाके घटनाम ।

सभ्यदों को उत्तादकर पठानों ने दिल्ली में अपने कुल की प्रतिष्ठा की । लोदी अकगानिस्तान के पहाड़ी पठान थे और हिन्दुस्तान में कुछ दिनों से जम गए थे । दिल्ली में तो उनका दबदबा था ही वंगाल और चिहार में थे कुछ कम ताक्तधर न थे । आखिरी तुगलक बादशाह से पहले राजदरहंड शिस व्यक्ति ने छीना था, वह जांदी ही था, दीलत लाँ लोदी । पर तब शहर में वही उथलपुथल थी और दीलत का स्वर्ण भंग हो गया । सभ्यदों ने कुछ काल के लिए बादशाहत अपने हाथ में कर ली । अब मौका पाकर लोदी अमीर किर उठे और उनके सरदार बहलोल लाँ ने दिल्ली के साय ही मुक्त पर भी कब्जा कर लिया ।

बहलोल दूर और शक्ति का बादशाह था, लूंगार और कूर भी । वैसे तो दिल्ली के तस्त पर बैठने वाले बादशाहों में पठानों का स्थान शासन की सख्ती और योग्यता के सम्बन्ध में बराबर लिया गया है और यद्यपि उनमें शिष्टता और संरक्षित की कमी थी, पदेलिखे भी ये कम ही होते थे पर उन्हें किसी ने कमज़ोर कभी न कहा और जब वे तस्त

पर बैठे तो कासी जनकर बैठे । लिलजी, तुगलक, लोदी, और पीछे आने वाले सूर लम्ही एक से एक ताकत के परकाले थे ।

बहलोल ने गही पर बैठते ही पहले तो दिली को आसपास के सतरों से लाली किया तिर वह पहोस के प्रदेशों पर मुक्का । हालत बड़ी नाजुक थी । दिली के आहरी फाटक तक पहुँचने वाली सहकों पर दिन दहाड़े ढाके पड़ते थे और सुद बादशाह का बगैर पूरी पौज के बाहर निकलना लंदरे के लाली न था । बहलोल की तखती ने न केरल दिली के आसपास की सहकों को ढाकुओं से लाली कर दिया बल्कि पास के इसाके भी अब पूरे पूरे उल्को मुट्ठी में आ गए । कज्जौज, दोआज, बगैरह और धीरे उसने अपने अधिकार में कर लिए ।

सिकन्दर लोदी उसी बहलोल का बेटा था । सिकन्दर लायक और भीर था । दिली के अनेक स्वर्तन थे उसने अपने कब्जे में किए और उसी के जमाने में पहले पहल मुझे सत्कनत की राजधानी होने का गौरव मिला । मेरे शहर में दिली के लिजाफ बगावत का भएडा लहा हुआ । उनमें दिली की मुखालफत करने की ताब तो न थी पर बहलोल के मरने पर और सिकन्दर के दूसरी और व्यस्त रहने पर मैने जरूर एक बार लड़े होने की कोशिश की पर मेरा शहर हमेशा से बनियों का शहर रहता आया है और गद जीतने के अरमान भीतर ही भीतर अप्सर पस्त हो गए ।

सिकन्दर ने अपने मजबूत दातों से मेरा विद्रोह कुचल दिया और दिली की कमजोरी और दयनीय दशा से ऊब कर उसने अब मेरे ही नगर में बहना पसन्द किया । आया तो या वह केवल विद्रोह दबाने पर मैं उसे भा गया और उसने यहीं पर अपना गद बना लिया । आदल-गढ़ के नाम से मेरे शहर में जो खण्डहर है वे तिकन्दर लोदी के ही महलों के अवशेष हैं । मेरे नगर में उसने गद बनाया, महल लड़े किए

परन्तु आज उसकी कोई इमारत यहाँ नहीं बची और सिवा तिकन्दरा में उसका नाम ज्वनित हांने के सिवा ऐसा कुछ भी मेरे शहर में आज नहीं जो उस मुख्लिय जमाने में मेरे पहले बचाने वाले की याद दिलाए।

इब्राहीम लोदी उब बंश का आखिरी शास्त्राधीया और अधिकतर मेरे ही नगर में वह डेरा डाले रहता। लोदी अस्तर रहे तो इमारे नगर में नगर वे दक्षनाए दिल्ली में ही गए और इब्राहीम ने तो अपनी आखिरी लड़ाई भी दिल्ली में ही लड़ी बाबर के खिलाफ जिन्हें पानीपत के मैदान पर इब्राहीम को मय उसके पंक्त्रह दखार तेना के मुक्ता दिया। उसके पहले भी मेरी कुछ मद्दत बढ़ गुजी थी क्योंकि एक जमाने तक मैं बेवाइं के राखा साँगा और इब्राहीम लोदी की सीमा बना रखा था। इब्राहीम को मेरे ही मैदानों में राखा ने दो दो बार इराया था और अगर वह जिम्मेदारी करने से न चबड़ता तो वह निश्चय था कि मैं दिल्ली के साथ उसके अधिकार में चला जाता। और वह कुछ कम महत्व की बात नहीं कि उसी राखा और दोलत खाँ लोदी के आमन्या से बाबर हिन्दुस्तान आया और उसने पानीपत के मैदान में इब्राहीम को और मेरे पास ही सीकरी के मैदान में राखा को परावत कर मुगल साम्राज्य की नीव डाली।

सीकरी की लड़ाई जो मेरे शहर के बाहरी मैदान में ही हुरंयी मुझे आज भी याद है। दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक और नयानक लड़ाईयों में से तीकरी की लड़ाई थी। सीकरी का मैदान राखा और उसके राजपूतों के हाथ से निरुल गया परन्तु निरुन्देर वहाँ उन्होंने साहस और शौर्य के सम्मे खड़े कर दिए। मुगल साम्राज्य की नीव किर पह गई और उसे डाला बाबर ने। पर वह नीव दिल्ली में न पड़ी मेरे नगर में वही। मुझे इस बात का फ़ल यह है कि लगातार दो संदियों तक जित तैमूरिया आन्दाज़ ने हिन्दुस्तान पर जमकर हुकूमत की

और निवके ब्रादशाही का शुभार दुनिया के नहान बादशाही में होता है, उसकी नीव पहले मेरे ही नगर में पही।

बाहर को दिल्ली तमिक न भाई। हिन्दुस्तान का कोई शहर उसे अच्छा न लगा। और सब पूछिए तो मैं भी कुछ खास उसे पतन्द न आया अगर किसी शहर को उसने अपने रहने लायक समझा तो केवल मुझे। जमुना के खाँ पानी ने उसे अपनी ओर लीचा और उसी मैदान में जिसके सामने आज ताज खड़ा है अपने महलों के गल्ले गाढ़े। वह महल अब न रहा। उसकी दुनियाद भी उल्लङ्घन गई पर मेरे नगर के चारों कोनों पर जो उसने चार बाग लगाए उनमें से दो रामदाग और जोहराबाग आज भी किसी न किसी दशा में खड़े हैं। जोहराबाग बास्तव में उसकी किसी अभीर की बेगम ने लगवाया था। इन सब बागों में शाश्र को बिरोध व्यारा चार बाग था जिसके लगाने में उसने खुद वही मेहनत की थी भगव आज उसका पता नहीं।

बाबर अपने संस्मरणों में लिखता है कि हिन्दुस्तान वहा उजड़ा रुका देखा है, यहाँ के लोगों में इस्लाम नहीं, शिष्टा नहीं, भाई-चारा नहीं। मैदानों में खाक उड़ती है, आग धरती है—दोनों को दूर करने का चल एक अरिया है स्नान, और उस स्नान के लिए वहाँ कोई साधन नहीं। कामुल की आवहना उसे चार बार याद आती रही। उसके बाग और अपानगोष्ठियों वह कभी भूल न सका और चार बार अपने संस्मरणों में वह सलत्त कर उनका स्थान करने लगता है। मेरे नगर को उसने कामुल के से ही चमनों से सजाना चाहा और सजा भी दिया। गुलाब की क्यारियों से मेरे शहर में उसके लगाए हुए बाग भर गए जिनमें फ़बारी और फ़स्तर की नालियों में वहने वाले शीतल जल का सर्व बायु की उष्णता शांत करने लगा।

अपने बगीचों में और बाहर उसने अनेक तालाब भी खुदवाए

जिनके किनारे ऊँचे पेड़ों की घनी छाया में अपनी लड़ाइयों की पकान वह मिटाता, दोस्तों से बातचीत करता, अर्थात् उसकी दानिश में इस लायक हो गया था कि वह अपनी लड़ाइयों से फुरसत पा कुछ दिन वहाँ दम ले लकड़ा था, रम सकता था, पर वह ज्यादा दिनों जिन्दा न रह सका। मेरे ही नगर में उसके चारों ओर के उस कुंज में जहाँ अस्तर वह अपने रोमाँचक संस्मरण लिल चुका था उसने अन्तिम तांत ली। काबुल के उस मुन्दर शीतल बगीचे में वह दफनाया गया जिसे उसे अपनी आखिरी और अनन्त नींद के लिए कभी से जुन रखा था।

बाबर के बाद हुमायूँ गहरी पर बैठा और उसने कभी दिल्ली में, कभी मेरे शहर में दर्जार किया। आखिर वह बार का बेटा था और बाप को काबुल के बगीचे आमरण कभी न भूल सका था अल्प इसी मेरे शहर में उसने एक छोटा काबुल ही आयाद कर देना चाहा था। बेटे को भी काबुल पठन्द था और उसका आयाम अगर कुछ उसे मिल रुकता था तो वह मेरे ही नगर में जिसे शीतल और मुश्त बनाने की आपर ने इतनी कोशिश की थी।

हुमायूँ आरामपसन्द बादशाह था। बाबर की जिन्दगी से लड़ाइयों और उनकी हार जोत से भरी थी, करगना से भिन्न तक उसने उलबार चलाइ थी और इस लम्बे भूखण्ड पर कितनी ही भार उसके बान के लाले पढ़ गए थे। युद्ध हुमायूँ की जिन्दगी भी कुछ बहुत आराम की न थी मगर बाप की सी लक्षित्याँ उसे न भेलनी पढ़ी। हाँ, हिन्दुस्तान से जब उसे भागना पड़ा तब सिंध और पारवाह की मरम्भमि में वह जल्लर कुछ दिनों भटकता रहा था। पर भी विलाय के प्रति वह कभी उदासीन न हो सका और अस्तर हुक्मत का काम तुकड़ान करके भी वह आगान गोदियों में शामिल हो लेता। वही लड़ाइयों के पहले,

और पीछे, विशेषकर पीछे तो वह निश्चय शराब की चुस्कियाँ भरता, असीम की पीनक में मदहोश हो जाता। गुजरात और मालवे के कठिन मोर्चों से जब वह लौटा तो उसने मेरे शहर में वही रंगरेखियाँ कीं। पहाव में सूख जशन हुए, मेरी रातें धूप छाए दिन की तरह चमक उठी और नगर का कोना कोना गाने वाने की आवाज से गूंज उठा और वह तब जब 'उसका वह बेटब खदरा शेरशाह चुनार पर कब्जा किए चिह्नर के आसपान पर मेव सा छाता चला जा रहा था।'

गोड में भी हुमायूँ ने कुछ कम ऐरा न किया। चुनार से वह रोग्वाँ को भगा चुका था, गोड वह जीत चुका था पर वह यहाँ इस कदर जम कर बेठा और दूनिया उसके कदम से लिपट पड़ी हो, जब चिह्नर का वह अफ़गान उसका नाका नाका बद किए जा रहा था, कब्जौज तक की जमीन पर उसने कब्जा कर लिया था।

और हुमायूँ जो अब लौटा तो चौता ने मार खाकर, भागकर वह दिली पहुँचा और सेना भरती करने के लिए मेरे नगर में भी आया पर कब्जौज में जो उसने दिना लड़े लोठ दिखा दो तो दर दर की खाक छान हिन्दुस्तान छोड़ उसे ईरान में हो पवाह लेनी पड़ी। लौटा तो वह बहुर पर मेरे यहाँ न लौटा, दिली लौटा और कुछ ही दिनों शाद महल की सीढ़ियों से चित्कर वह जो गिरा तो फिर न उठा।

इधर उसके बाहर जाने पर जिस शादशाह ने हिन्दुस्तान पर कब्जा किया वह अपनी राजत, रान, तिराहियाना रोब और हुक्मत की काच-लियत में लाभिरात था। चिह्नरी अफ़गान उल शेरशाह की याद मुझे बराबर यही रहेगी जिसने दिली छोड़ मुझे अपनी राजधानी बनाया। इससे पहले का एक किरण जो मुझे याद आता है मेरे मन को बेकाबू कर देता है। अब यह की लडाई में एक बार शेर सों दावर से आ मिला था। बादर आदमी को पहिचानता था और उसने उस पठान सरदार को

सेना का संचालन करते देखा था । उसकी एक और अङ्क का लक्ष्य ईरान के मैदान में बाबर पर वह अतर हुआ कि उसे फरगना के भूले मैदान और अपने जीतने काले दुश्मनों के पैतरे पाद आ गए । उसने शेरखाँ को दावत के लिए बुजाया । दावत मेरे ही महलों में हुई । बाबर और हुमायूँ के बीच शेर बैठा और तामने दस्तखान को धेरे मुगल उमया बैठे । मुगल दावतों में जो तहजीब बरतते थे वह गजब की थी और उसकी तैयारियाँ भी गजब की हो भी थी । शेरखाँ सख्त पठान था, चिहारी पठान और सुराम की निर्मल, कठोर और अकृत्रिम वातावरण में पला था । मुगलिया तहजीब उसकी जानी न थी । बेपर्दा सिपाही आलिम था पर दिल्ली के अमीरों के कामदे उसके बाने न थे । सामने जो शोरमाल रखा गया और उसके पास छुरी, काँटे, तो देहाती पठान एक बार तो कुछ सहमा परन्तु तुरत प्रकृतिश्वय हो गया । अमीरों की आँखें, शादशाह और उसके बेटे की आँखें भी उस ही पर लगी थीं कि वह किस तरह दावत में आचरण करता है, किस तरह छाँटे, चम्च और छुरी चलाता है पर उनको शेरखाँ ने इसने का मौका न दिया । ताज्जुब से उनकी आँखें फैल गईं जब उसने एकाएक कमर से कटार निकाल ली और उससे शोरमाल के कई टुकड़े कर दिए और तुपचाप चिला किसी भौंप के उसकी नोंक पर बारी शारी से टुकड़े उठा वह खाने लगा । दावत खत्म हुई और बाबर ने हुमायूँ को अलग लेजाकर कहा, बेटे इश्वियार रहना इस पठान से । अपना काम सुर करने के लिए वह कोई जरिया उठा न रखेगा ।

हुमायूँ को शेरशाह के सम्बन्ध की बाबर की कही बात की सहारे न देनी पड़ी । उसकी सहारे उसने बूद भुगत कर जानी । वही शेरशाह अब मेरी गदी पर था । कुल पाँच साल वह जिन्दा रहा पर उस बीच उसने मालवा, गुजरात, पंजाब, सिन्ध, बंगाल, चिहार और राजपूताने

के एक बड़े हिसे पर अधिकार कर लिया। पहली बार हिन्दुस्तान में मुस्लिम दुकूमत की लम्बे दौरान में तख्त पर एक आदमी बैठा जिसे अक्षय थी, जिसमें टाकत और दुकूमत की सूफ़ थी। शेरशाह सा लदाका और शासन की व्यवस्था में नियुण अगर कोई दूसरा आगरेनदिली के तख्त पर बैठा तो वह केवल अक्षय, और नहीं। काश वह कुछ साल और बचा रहता।

शेरशाह के जमाने की अलाकल-विलाकल नाम से प्रसिद्ध इमारत अच्छी बुरी हालत में थ्राज भी मेरे नगर में रहती है—प्रायः उसी हालत में बिसमें उसके बेटे का सहीमगढ़ है। मिर भी सलीमगढ़ एक महल के आकार में रहा हुआ है, किले के रूप में। सलीमशाह भी अब तक जिया मेरे ही नगर में जमा रहा और यही उसने अनन्ती आतिरी सौंस ली।

शेरशाह का स्थापित सूर राजकुल कुछ ही दिनों बाद उत्तम गया। उस कुल के नालायक राजपुरापरस्पर लाने लगे। दबावीय और सिकन्दर आदिल और भोजपुर सभी निकम्मे ने और उनके किए कुछ न हो तक। सिकन्दर ने लयहिन्द में हार कर दिल्ली हुमायूं के हवाले कर दी। बंगाल, बिहार की ताकत एक करता पठानों की फौज में विहारियों की दरावल आगे किए पराकरी विक्रमाजीत हेम हुमायूं के मरने पर दिल्ली की ओर बढ़ा। मेरी हालत कुछ दिनों से उत्तमी उत्तमी हो रही थी और मुझे यह मुनासित भी न जान पड़ा कि कमज़ोर हाथों तलवार पकड़ने वाले मुज़दिल शाहजादों की हिन्दायत करूँ और मैंने उस शीर-विक्रम हेम को चुनचाप आत्मतन्त्र पूँछ कर दिया। मेरे महलों में विश्राम कर वह नर पुँगव पानीपत की ओर बैराम लाँ और अक्षय के विरुद्ध भदा। राह में उसने दिल्ली पर कंजा कर लिया पर पानीपत के मैदान में उसकी किस्मत ने पौँछा पलट दिखा और वह मारा गया। देख साल की उम्र

में अकबर दिल्ली की गदी पर बैठा । बैठा तो वह दिल्ली की गदी पर, परन्तु कुछ ही दिनों बाद वह मेरे नगर में ही आ गया और अपने दादा बाबर की ही भाँति उसने भी यहाँ के मुश्किले बागों में बेरा किया । पहली बार उसने ही मुझे उस रूप में बताया जिस रूप में मैं आज लड़ी हूँ । मेरा लाल किला उसी की देन है और उसके भीतर के महल का यह भाग जो जहाँगीरी महल कहलाता है उसीने लड़ा किया था । परिचम हिन्दु-स्तान की शैली में कटी लकड़ी की जाली की नकल मेरे उस जहाँगीरी महल में हुई ।

सदन, हाल, कमरे सब तो सदन के बारों ओर लड़े हुए । मगर इतना जल्द कहूँगा कि मुझसे भी बयाद राग अमर अकबर ने उस सीकरी पर बरसाया जो मेरो आँखों के सामने ही लड़ी हुई । वह जितनी ही बाबर और सौंग की भयानक लड़ाई और मुगलों की जौत की याद दिलाती है उतनी ही उस तजीमशाइ को जितके शारिंशाद से सलीम देखा हुआ और उतनी ही उस विश्व ध्रयन की भी जितमें तत्त्वजनन के कोई साधन प्रयोग नें लाने से अकबर ने उठा न रखा । फतहपुर सीकरी का किला और उसकी नायाब इमारतें बालू में श्रप्तिम होकर भी विफल मनोरथ की अद्वितीय दृष्टान्त हैं ।

मेरे सामने ही सीकरी के महल लड़े हुए, मेरे सामने ही वे उन्हें भी गए और मैंने सन्तोष की साँख ली । जब वह अनन्त लगी तब मुझे कुछ कम ईर्ष्या न हुई थी । भला अपनी सीमा के भीतर ही प्रतिद्वन्द्वी का लड़ा होना कौन परन्द करेगा । पर सीकरी देवते ही देवते उन्हें गई और उसे मरते दम पानी तक न भिला । हाँ, उसके दुजांहे महल आगे पटने वाले कितने ही रोमांचक और रहस्यमय अनासानों के कारब्द हुए । जहानशारा और छत्रसाल के नूक प्रथम-संवाद सीकरी की दीवारों में आज भी बसे हैं ।

सीकरी छोड़ अकबर फिर मेरे महलों को लौटा और यही उसने अपनी अनिम साँझ ली। अकबर दिनुस्तान में राज करनेवाले बादशाहों में अशोक को छोड़ सक्षम नहीं था। उसको कोर्ति दिनुस्तान की सीमाओं को लाँच दूर-दूर लक जा पहुँची। हंगलैएड के बादशाह तक ने अपने अंप्रेज प्रतिनिधि उसके दर्बार में मेरे बाबूरि वे उसके बीचन काल में न-पहुँच सके। अकबर और शेरशाह के सेंद्रों बादशाहों का निवास अपने प्राचीरों के भीतर पाकर मैं पूला न समाया।

जिस सुलीम की हिन्दू माता जोध बांद को बलमराह के आशीर्वाद की छाया में रखने के लिए कत्तूपुर सीकरी के महल लड़े दुए ये थही अब जहाँगीर के नाम से बाद के मरने पर मेरी गही पर बैठा। वैसे तो वह भी कभी लाद्दौर, कभी काबुल और कभी काश्मीर में अपने दर्बार करता पर गही उसने भी अपनी मेरे ही नगर में रखी, मेरे ही महलों में, बाप के बनवाए लाल किले के भीतर। जहाँगीर मेरे ही गहलों में गयासंवेदा को बेटी महरनिसा पर मुख हो गया था। यही उसने उसके साथ क्यूतर उड़ाए, जवानी के जोश में उसे अनेक आर छेड़ा और यहीं बाप की दलन्दाजी से उसके स्वप्न के तार चिलर गए मेर उसकी प्रेयसी बदंबान के गर्वनर शेर अस्तगन से व्याह दी गई थी पर सुलीम न अपने स्तनों को भूज सका और न महरनिसा को। कुदू कर वह आहर निकल गया और जब बाप के लम्बे बीचन से ऊब गया तब उसने बागी होकर उसके प्रियजनों का कला कर उसके शुदाये के बीचन को भी दुखी करना शुरू किया। फिर बब बह गही पर बैठा, शेर अस्तगन को मार उसने अपनी महरनिसा को छीन लिया और मेरे महलों का नूर बना वह उसे यहीं रखने लगा। चार साल तक नूरमहल ने जहाँगीर के साथ न जोलने, उसकी ओर न देखने तक का नाटक किया। फिर वह उसकी मतलका बनी और नूरजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुई। मेरे किले में

जहाँगीरी महल में ही वह सम्पन्न हुआ है जो उठी नूरजहाँ की घटाई दिवाइन से बना था और खिसमें वर्ती उसने मलका भी हैसियत से देश पूर द्वृकूपत की ।

जहाँगीर आरामपासन्द, पियकङ्क और कूर था । तीनों में नूरजहाँ ने अपने प्रभाव से उसे मार्किक किया और उनमें साइगो बत्तेने के लिए उसे मजबूर किया । किले के भीतर मैंने दीवाने बादशाह को अपनो स्वयंसूत मज़कुर को बैलगाइी पर बिड़ाकर बुद्द हाँकते देता । और मेरी ही टक्काल में नूरजहाँ को शाक़वाले वे सिक्के भी दले जिनमें खुदा कि नूरजहाँ की शक्ति लिए होने की वजह से सोने को कोपत बढ़ गई है । और निरचय उन सिक्कों भी छीपत बढ़ गई ।

मेरे ही महलों में जेम्स के भेजे अंग्रेजी राजदूत आए । सर दामल ने जहाँगीर के दर्वार में यही उसकी कृपा की भिन्ना माँगी और इस देश में पहली इंटे कंसी जो आगे दूर के बमाने में अंग्रेजी राज की नीति की इंट बन गई । इन्ही महलों में पीता पीता बेहोश हो जाता और उठाकर पहांग पर ले जाया जाता । यही मुगल कलम के गजब के चित्रकार, उत्ताद और बसायन हुए जिनके द्वारा यूरोपीय तस्वीरों स्थि नकल करा, अक्षल नकल को एकता कर जहाँगीर सर दामल रो को चकित कर दिया करता था । यही राजपूतों के कितने बांके सदारों ने जीहुजूर दर्मास्तियों को मौत के पाठ लगा दिया था । जहाँगीर अपनी जिन्दगी में चल बसा बद्यनि उसकी पूरी जिन्दगी उसके बेटे खुर्रम ने उसे जीने न दिया । उसके छानेक वर्ष उसने अपनी बगावत से छम कर दिए । जब जहाँगीर मर गया तब नूरजहाँ को लाहौर भेज शाहजहाँ के नाम से खुर्रम गही पर बैठा ।

श्राक्कर और शेरशाह महान् थे । उनके सम्बन्ध से मैं मी महान् दुष्टा पर भेद की बात अगर कोई मुझे पूछे तो मैं कह सकता हूँ कि शाहजहाँ

सा प्यारा भेटा कोई न हुआ । शाहजहाँ ने जिन इमारतों की नेरे किले में और बाहर परम्परा लड़ो को उनकी प्रशंसा में थी कहूँ, उन अद्दट आने वाले पर्यटकों ने की है जिन्हें मेरे ताज और मोती मस्जिद ने बार बार आकृष्ट किया है । ताज जिसे बीस हजार मजदूरों ने बाईस साल में बनाया था, जिस पर करोड़ों रुपये खर्च हुए थे अपनी खूबसूरती में दुनिया में सानी नहीं रखता । शाहजहाँ के चौहर बड़ों की मा उठकी अप्रतिम प्रेयसी आरजूमन्द बेगम शानू मुमताज महल के नाम से प्रसिद्ध हुई और जब वह मरी तो उसके शान्तिमय आवास को गौरव देने के लिए शाहजहाँ ने यह अद्भुत मकबरा बनवा किया ।

शाहजहाँ ने दिल्ली का किला भी बनवाया था । वहाँ उसने दर्जेरे आम और खास भी खड़े किए थे और उसके बाहर दुनिया की तरसे बड़ी आमा मस्जिद भी बनवाई पर उससे उत्तरा जी न भरा और उसने यहाँ भी आमा मस्जिद बनवाई । किले में दीवाने आम और खास खड़े किए और वह अचरण की मोती मस्जिद जो नजाकत के लम्बे में मरिजदों में लाभिताल है । खास महल की रीनक का तो शयान नहीं किया जा सकता जिसके पश्चर, जिसके बेशकीयत रूप, जिसके लाभिताल कटान अपनी निताल आप हैं । अंगूरी बाग के पञ्चारों के सीकरों से नम दवा की ताजगी अब उस दवा में कहाँ जो शाहजादियों की दयी कराए से बोनिल है । उसी बाग के सहन में उन शाहजादियों ने अपने प्रलय के तार बुने थे जिनको किसी से बिषाद करने का अधिकार न था पर जिनके प्रलय को तकल करने के लिए हजार-हजार थोड़ियाँ, हजार-हजार खोजे हाथ थांधे खड़े रहते थे ।

बीच में कई कारणों से शाहजहाँ नेरे नगर से अपना तख्त और दर्वार दिल्ली उठा ले गया पर जब घमांत की लड़ाई में उसके तीसरे बेटे शोरगंगेज ने उसके प्यारे दारा को परास्त कर दिया तब जाईक शाहजहाँ

फिर मेरी शरण आया पर किर भी उसका बीचन दुखमय ही चला था । उसे याद आई उन दिनों को जब उसने खुद घार से बगावत बर डलका जीना मुश्किल कर दिया था और अन्त में जिसे उसने कैद तक कर लिया था । वह दिन दूर न था जब उसे अपने बेटों के हाथ खुद कैद होना पहाड़ क्योंकि जिस दक्षत के आधार से वह स्वयं कभी कभी अपने घाप के खिलाफ उठा पा और रंगबेब भी वही से उसके खिलाफ उठा और स्वें पर दूजा जीता । मेरे नगर के बाहर सामूद्र में आ लहा हुआ । सामूद्र की लहार सत्तनतों की शक्ति शदल देने वाली लहारों में से एक है । उस मैदान में अपनी भागतों हुई सेना के बीच औरंगजेब ने अपने भागते हुए हाथी के पैरों में जंजीर डलवा दी थी और जंजीर जमीन में गाढ़ दी थी ताकि हाथी भाग न सके । उसी लहार में उसने शाहजहाँ के प्रिय बेटे दारा को कुचल दिया था और मैदान जीत वह सहसा मेरे किले के सामने अपने सर्दारों के साथ मुराद को पीछे किए था लहा हुआ । शाहजहाँ ने अपने सात लोगों को भेजा और फैलाया कि औरंगजेब आगरा छोड़ कर चला जाय । ८८ बेटा आलिंग घाप का था और उसने हुक्म मानने से वह कह कर इन्कार कर दिया कि मादशाह जिन्दा नहीं, हुक्म जालो है । और वह अपने बेटे मोहम्मद को कुछ मतलब की बातें समझा खुद महल घेरे लहा रहा । मोहम्मद ने मादशाह को बन्दी कर लिया और मादशाह ने जमाना बदला जान कर खेलों में जंजर कर ली । आगरा में, दिल्ली और लालौर में, अनेक-अनेक रुद्दी ऐसे थे जो शाहजहाँ की उत्पाजी से उत्पत्ति हुए थे पर किसी ने उसके बचाव को कोशिश न की, एक परिन्दे ने उसकी ओर से पर न मारा ।

शाहजहाँ अपनी प्यारी बेटों जहानशाह के साथ सात बाल अपने ही किले में अपने ही बनशार महलों में कैद रहा, जहाँ उसने अपने विलास के अनन्त साधन भोगे थे, अपनी रम्पुदि के अनेक सम्म लड़े

किए थे । शाहजहाँ के रोब की ऊँचाई का शादशाह मेरे महलों में कैद हुआ । मैं दंग था । और हाँ, वह कैद भी कुछ आसान न थी । यह सही है कि औरंगजेब बाप को आराम देने के लिये वही तत्परता दिखाता था परन्तु शाहजहाँ के अनेक दृश्य निःसन्देह ऐसे भी थीं जब वह जिन्दगी से जब गया । मरहूर भी है कि एक बार उसने स्त्रीकर कहा—“हिन्दुओं को गुलाम कहा जाता है, यह गुलाम भी तुमसे अच्छे हैं जो अपने मरे बाप तक को पानी देते हैं, पर वे तू तो अब यह मुसलमान हैं जो जिन्दा बाप को पानी बगैर तरकारता है !” पानी, जिसकी शाहजहाँ को हसरत थी जमुना का था । जमुना ने भी शाहजहाँ की यह विलहती आवाज सुनी और चुरचाप अपनी राह यह बहती रही । उसमें भी आलमगीर के डर से इतनी हिम्मत न हुई कि वह एक बूँद महल के भीतर उछाल दे ।

शाहजहाँ यही मरा, अपने ही महलों में और तब तक, सात साल, औरंगजेब मेरे ही आधार से रुक्तनत पर तुकूनत करता रहा । मेरे ही नगर में उसने अपने आगे के जीवन का सक्रितर साका सीचा और अपने लम्बे जीवन में उसको चारितार्थ करने का उसने प्रयत्न किया । बाप के मरने पर यह दिल्ली चला गया । मेरा अवसान शाहजहाँ की कैद से ही शुरु हो गया था और मैं निरन्तर नीचे गिरता रंगा । औरंगजेब के बाद उसके बंशजों ने अनेक बार मेरे ही महलों में दर्जार किया । फर्मसियर मेरे ही किले में मरा ।

अगले दिनों दिल्ली के तख्त के लिए जो श्रीसियों शाहजादे खड़े हो गए उन्हीं में यह हुऐनश्ली खाँ भी था जिसने नगर और मेरे महलों को लो लूदा ही, ताज के भीतर की नूरमहल की कब्र टॉकने वाली मोतियों की चादर तक उसने न छाँझी । नूरजहाँ और नूरमहल के जबाहरात श्रव भी मेरे मलहों में संचित थे उनको भी उसने लूट लिया । शहर-

की लूट मुझे शाहजहाँ की उस लूट की याद दिलाती है जब अभी वह खुर्म था और जहाँगीर के जिन्दा रहते उसने मेरे शहर पर छापा मारा था ।

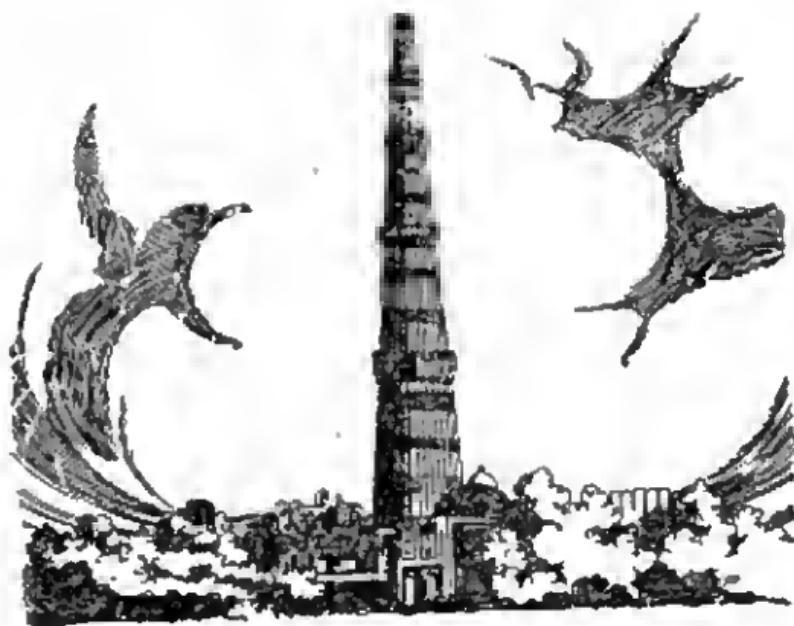
फिर मुझे ईरान के नादिस्याइ ने लूटा जिसने चार ही दिन पहले दिली को शत्रुघ कर दिया था । प्रोटम्पद्याइ जो कोहनूर उसने ले लिया था और जिसकी कीमत जानकारी ने दुनिया का रोज का आधा सच्च आँख है पहले दुमायूँ को मेरे ही नगर में निला था । मेरे ही मदल में भालियर के उस राजा का खान्दान टिका था जो इब्राहीम लोंदी के साथ पानीपत के मैदान में मारा गया था और जिसके खान्दान को दुमायूँ ने रहमत बहुती थी । इस उपकार के बदले राजा के कृतज्ञ बेटे ने दुमायूँ को कोहनूर दे दिया था ।

फिर मराठों ने मुझे लूटा और प्राप्त तीस बर्डों तक वे मुफ्फ पर अपना अधिकार जमाए रहे । पानीपत के मैदान में अबदाली ने जब उनकी ताकत तोड़ दी तब उनका पंजा मुफ्फ पर ढीला पड़ा । भरतपुर के जाटों ने भी मुझे दुरी तरह लूटा । मेरे महलों के कीमती पत्थर उन्होंने निकाल लिए और मेरे ताज तक के चाँदी के किंवाइ निकाल कर पिलाया दिए । जाटों की इस लूट में उस आधे फैल्च आधे बर्मन बाल्टर रीनहार्ड ने भी काफी मदद की जो इस प्रकार के कामों के लिए सदा कमर कसे रहता था और जिसने अभी हाल के लहूलोदान में बश कमाया था ।

१८५७ के गदर में मैंने कुछ विशेष भाग न लिया यद्यपि मेरे नागरिकों ने भी जेल तोड़ कैदी रिहा किए, अंग्रेजों को मारा और उनकी कच्चहरियाँ जला दी और फिर वे दिल्ली के शागियों से गा मिले ।

याद का येरा इविशाव कुछ विशेष प्रह्ल नहीं रखता । मैं अब भी जिन्दा हूँ और मुरवार जनाने की रक्षार देते रहा हूँ । मैंने अपनी

जिन्दगी में दिल्ली या पाटलिपुत्र की तरह कुछ सास न देखा, न मैं इतना बहा करनी हुआ ही। पर मैंने भी कुछ देखा है और जा देखा है वह दिना किसी बनावट के कह दिया है। मेरी सादगी जमुना के बहते पानी के पात खड़ी उस ताज की सादगी है जिसमें दुनिया की ऊची इमारतों की चुलन्दी सो नहीं पर शाति की सदा जरूरी है।



दिल्ली

मैं दिल्ली हूँ, सल्तनतों की खण्डहर। मुझे हिन्दू, मुस्लिम, और ज़ी
तीनों ने भोगा है और अप्सराओं की कान्ति की भाँति मेरी कान्ति सदा
दमकती रही है। दसन्दहर राजकुलों ने मुझे अपनी ताकत, प्यार और
लाइं से पाला और सजाया है। प्रतिहार, गढ़धाल, चौहान, गुलाम,
खिलजी, तुगलक, दैय्यद, लोदी, शर, मुगल और अंग्रेज वारी-शारी मेरी
जगीन के त्वामो हुए हैं और उन्होंने अपने-अपने समय मेरे केन्द्र से
हिन्दुस्तान की मुस्कराती जगीन को भोगा है, उसे उजाहा और बीरान
किया है, उस पर हुकूमत की है।

समुन्दर के ज्वार-भाटे की तरह सदियों के दौरान में आदमी की मेहनत, उसके दुख और उल्लास सुख पर छुड़े और मिट गए हैं। सत्त्वनतों को अपनी छाती पर किए मैंने जब करवट ली है उनके पाए उखड़े गए हैं, उनके कलश कंगरू धूल में मिल गए हैं जिनके दुकड़े आज भी जब तब मेरी मिट्ठी में मिल जाते हैं। मेरी खड़ी इमारतों और उन मैदानों के खण्डहरों से मेरी पुरानी शान का कुछ अन्दाज़ लगेगा जो दारुल जलीसा, नुगलकाशाद, जहाँपनाह फिरोजाशाद और शाइजहाँनाशाद के नाम से कभी लड़े हुए फिर मिट गए। उनके भग्न स्तूप समझदारों के लिए अपने भीतर सदियों का रहस्य खिलाए हुए हैं परन्तु जितना मैं जानती हूँ उतना कोई नहीं जानता, न वे खण्डहर और न मैदानों को दूटी हुईयाँ।

माना मैंने कि शायद मैं उतनी पुरानी नहीं जितने हिन्दुस्तान के कई दूसरे शहर हैं, कि शायद मैं उनमें सबसे नई हूँ, और इसे मन्त्रकरते गुके जरा भी शरम नहीं होती। मगर दिल बोहिला देने वाली जितनी घटनाएँ मेरी जमीन पर घटी हैं उतनी दुनिया के किसी शहर में न घटी, न दमिश्क में, न चगदाद में, न समरफन्द में, न फाहिरा में और अच मैं वही कहानी कहने जा रही हूँ जो बोते इतिहास के लिए भी नई है और उसको हैत भें डाल देने की ताकत रखती है। मेरी इंट इंट खून से साधपथ है और जब मैं ऐसा कह रही हूँ तब सब मानिए वह कुछ साहित्यिक या अद्वी मुद्दावरों में नहीं बल्कि जिन्दगी की तरह सच्चा जो मेरे नजर के नीचे गुजरा है और अगर आपको यकीन न हो तो सोरों की बुनियादी इंटों के सूखे गारे से पूँछ जो आज भी मुख्य है।

मेरी कहानी में जिन घटनाओं का समावेश है उन पर विश्वास नहीं होता, विश्वास करने का जी नहीं चाहता—आसिर बेटे द्वाय बाप का खून, खान्दान के खान्दान का नाश, शहर के शहर का कलोश्राम भला

आसानी से किसके विश्वास की वस्तु बन सकते हैं। परन्तु जो मैं कहने जा रही हूँ उसकी बुनियाद कुछ ऐसी ही है।

हाँ, उसे मैं बुनियाद ही कहती हूँ क्योंकि यद्यपि वह उही है कि मेरी लगातार उसी प्रतिहारी और तोमरों के पहले की नहीं है। मेरा 'इन्द्रप्रथ' महानारत काल की उस भूमि पर लड़ा है जिसे कभी पाएँदवी का इन्द्र प्रथ कहते थे और जिसके महलों में दुर्योधन को जमीन पानी और पानी जमीन दीख पड़ा था। और जिसके इन्द्रप्रथ की बुनियाद भारती के उस भगवदे परतही थी जिसने एक बार सारे भारत को महात्मर में स्तोक दिया। हस्तिनापुर पर पाषाठवों का रुचना हो जाने के बाद इन्द्रप्रथ की लहरी मलिन हो गई और जब हस्तिनापुर के गंगा की शाढ़ से वह जाने पर निवधु ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया तब तो इन्द्रप्रथ भारतीय राजनीति से भुला ही दिया और वश से वह अपना कान्तिरीन जीवन अब तक घसीटता आ रहा है।

परन्तु मैं उसी की प्राचोरों के पास जो तोमरों के शासन में उही तुरंत तो आज तक मैं निरन्तर उही रही। दिन बुरे भले दोनों मैंने भी देखे, कौन नहीं देखता, पर मुझे उस बदलते जमाने का कोई गम नहीं, अन्त भला तो उच भला, कुछ आज की ही कहावत नहीं और मुझे आज वह फक्त हासिल है जो इस देश के किसी नगर को, यानी कि मैं हिन्दुस्तान और आजाद हिन्दुस्तान की राजधानी हूँ।

तो मैं अपनी बुनियाद की कहानी कह रही थी, अनंगपाल की उस गहरी नीव की जिस पर उही होकर मैंने कभी दम न तोड़ा। अनंगपाल तोमर पा, उन प्रतिहारों का मायदलिक जो पहले जोधपुर के पास मन्दोर में प्रतिष्ठित हुए थे, फिर उन्नैनी में और अन्त में कल्जीब में। वश से कुछ काल तक कल्जीब के साथ ही मेरी गाड़ बँधी रही। अनंगपाल ने न केवल मुझे इन्द्रप्रथ के पास लड़ा किया बल्कि उसने मुझे मन्दिरों, महलों और

तालाबो से सजाया भी ; बुद्धुबनीनार के पास मेहरीली में जो लोहे की लाट लही है और जिसपर चत्त्रगुप्त विक्रमादित्य के यश से दक्षिण समुद्र के भुवासित होने वाया लिन्गु में शातों मेंहों को लाँघ बलख के हूणों को पूल चढ़ा देने के बाद लिखी है । वह पहले वहाँ न थी पर उसी मेरे जनक ने उसे लाकर वहाँ लहा किया ।

तोमर बुद्ध विशेष शक्तिमान न थे, वे भी वे प्रतिद्वारों के सामन्त ही जो अन्त तक वे इने रहे और उनके हाय से निकलकर गद्दवालों के समय में पूर्णतः कब्जोज के अधिकार में चली गई । यद्यपि उसके साथ भी मैं बहुत छाल न रह सकी । बास्तव में मैं राजनीति का केन्द्र होना चाहती थी और मुझे कब्जोज और काशी के साय दौँदी की भाँति धने रहना कभी न भाया । मैं राह देख रही थी उस विजेता की जो मुझे गद्दवालों से छीन देरी स्थिति खतन्त्र कर देता, मुझे अपनी राजधानी बनाता और वहाँ अपने सल्तनत के पाये रखता । मैं नहत्याकांशिणी थी । मुझे अपना स्वप्न बच करना था और उसके लिए तब अवधर पिला जब वह विजेता आया जिसकी मैं अपें से राह देख रही थी । शाकम्भरी (बामर) और अजग्नेर का चहमान (चौरान) विप्रहराज चतुर्थ बीसलदेव या वह विजेता जिसने विजयचन्द्र गद्दवाल से मुझे छीन लिया । बीसलदेव को कुछ अकारण ही महाकवि सोमदेव ने “ललित-विप्रहराज” नहीं कहा । वह सचमुच थी रोमाचक और ललित था । उसका ‘इरिकेलिनाटक’ सदृश प्रमाण है कि उसने सरस्वती को अपने सर्वां से पुलकित किया था परन्तु विशेष पुलकित मैं हुई जब उसने मुझे राजधानी का गौरव दिया । किर तो शीघ्र बाद वह पद पृथ्वीराज तृतीय के शासनकाल में सुरक्षित हो गया ।

पृथ्वीराज उस लालित्य और विलास का मूर्तिमान पराकाढ़ा या जिसका उसके पूर्वज विप्रहराज ने प्रारम्भ किया था । बुसलंमान तवारीख-

नवीसों का 'गायरियोरा' तत्कालीन भारतीय संलिपि कथाश्रोका अपने रोमांचक कृत्यों से नायक बन गया। हिन्दू काल में बग्गुतः मैं राजवन्ती उसी द्वारा हुई। उद्यन की कथा मैंने सुनी थी। मेरी ही जमुना की धारा उस कीशाम्बी का भी सर्व करती थी। उसके तट से होकर भी बहती थी जिसके महलों को वसराज उद्यन ने अपनी बीणा से कभी निनादित किया था, मैं भी कोशाम्बी की ही भाँति पृथ्वीराज के विलास से सहसा कानितमती हो उठी। मेरे महलों में भी प्रदत्तपुष्कर की लिङ्ग गंभीर ध्यनि पतर-पतर गंजने लगी।

और मेरे स्वामी के अपने विलास को चरितार्थ करने के साधन भी थे। सबसे बड़ा साधन उसका शौर्य था। जब ताल ठोक मैशन में वह उत्तर आता तब बाँके से बाँका लड़ाका पीठ दिखा जाता। मार्ग में जब वह तेवर बदल देता तब विशाल गज उसकी यह छोड़ देता। देश में अनेक लड़ाइयाँ जो उसने लड़ी चाहे हिन्दू गोत्र के लिए यह बात देखा हो, वे सब विलास के राग से रंजित हैं। शायद ही कोई लड़ाई उसने लड़ी हो जो किसी प्रेमसी के लिए न लड़ी हो। चन्देलों के महोने और गहड़-बालों के कब्रीज में जो रक्त भदा यह निःसन्देह इसी कामना की भूमि के कारण वह। कालिजर और महोने पर अधिकार कर पृथ्वीराज ने कब्रीज से लोहा लिया। कब्रीज आज से नहीं कब से मेरी आँखों में खट्ट रहा था। एक जमाने तक उसके दानन से मैं दैंवी रही थी पर अब जो मेरा नायक उधर बढ़ा तो भुक्त होइ छुरी हुई। कब्रीज का राजा व्यचन्द्र उद्दीप भारत का सन्नाट माना जाता था। उसने अनेक प्रदेश तो बीते ही थे, अश्वमेज भी उसने किया और राजसूय के अपने उस महोत्तम पर जहाँ अनेक राजा उसको परिचर्या में सोन दे और अपनी पुत्रीं संयुक्ता का स्वयंबर जहाँ उसने ठाना था वही स्वामी पृथ्वीराज को उसने हाराल नियुक्त किया था। और जब पृथ्वीराज ने उस अधिष्ठिता पर हँड दिया

तब उसने उसकी मूर्ति बनवाकर द्वार पर लट्ठी कर दी। पुर्खीराज कव का पतिग्रिताश्रों का रहस्य हो गया था और जिस प्रकार चालुक्य राज को हरा उसने उसकी कन्या छीन ली थी उसी प्रकार कन्नौज पर लूट उसने संयुक्त को लूट लिया। हाँ, उस लूट का मूल्य उसे महाप्राणों से चुकाना पड़ा—कह और कैमास के प्राणों से जिनके तेवर के लड़ाके तब के हिन्दुस्तान में न थे।

इतना सब खोकर भी कन्नौज के पराभव के कारण मैं प्रसन्न ही हुई थी यद्यपि मेरी प्रसन्नता चिरस्थाई न हो सकी और मुझे रक्त के अर्णव रोने पड़े, विशेषकर इस कारण कि आगे के युद्धों में कन्नौज ने मेरी मदद से इन्कार कर दिया। उन युद्धों की कहानी हिन्दुस्तान की हार की कहानी है, उसके स्वतन्त्रता के अपहरण की, जिसका बयान औरों ने तो किया ही है मैं भी करूँगी।

गजनी का सख्त गोर के उस पहाड़ी पठान ने उस लूट दिया जिसे हिन्दुस्तान के इतिहास में शहाबुद्दीन कहते हैं। शहाबुद्दीन ने हिन्दुस्तान के लहलहाते खेतों पर हस्त भरी निगाह ढाली थी जब दुश्मन की ओट से भाग कर उसने सिंध के द्विनारे पनाह ली थी। महमूद की लूट की कहानियाँ कहने वाले अब भी गजनी और गोर के पहाड़ों में कुछ कम न थे। उनकी जश्नी कितनी ही कहानियाँ शहाबुद्दीन ने सुनी थी और उन्होंने उन खुशनुमा भैदानों की लूट के लिए नहीं उन पर दुश्मन के लिए उस पठान के दिल में एक आगं पैदा कर दी थी।

शहाबुद्दीन एक बड़ी सेना लेकर सरहिन्द कहे और बदा और उसे लाँच तलावड़ी के उस मैदान ने जा उत्तरा जहाँ पुर्खीराज अपने राजपूतों के साथ ढाया था। राजपूत, पठानों के लिए एक नहं चीज़ थे। शहाबुद्दीन ने सैसजुकों के नेजे देसे थे; ईरानियों की तलवार भी उसने देखी थी पर राजपूतों की शान उसे अभी देखनी थी। जब उसके रिखाले उस

पानीरत के मैदान में अकगानों पर टूटे तब उनके पैर उड़ा गए और शहाबुद्दीन ग़ज़नी जाकर ही रका पर वह अपनी हार की राद भुक्ता न सका। इस्लाम की कोजो ने कान्फिर की चांट इत कदर कभी अपनी पीठ पर न ली थी। शहाबुद्दीन लौटा एक लाल श्रीस हजार सेना लिए, जिसमें मध्य एशिया के लालानी लड़ाके थे और जो इस्लाम के नाम पर हिन्दुस्तानी मन्दिरों की लूट की हविस लिए दौड़ पड़े थे। बब उसी मैदान में जो अभी पिछली लड़ाई के लहू से लाल या अकगानों ने चौहान शुह़स्तवारी पर हमला किए थे उस से मर न हुए। पठानों की समुद्र से उठती हुई लहरें जैसे लोहे की दीवार पर टूटीं और खिल फड़तीं। चौहान उस से मर न हुए। पर वहाँ लोहे की दाल न गली वहाँ शहाबुद्दीन की चाल चल गई। भागने के बहाने वह सचेत पीछे इटा और राजपूतों ने अपनी फलारें थोड़ा उसका पीछा किया। अब बद पठान सेना लौटी और मेरी कौबैं जो पहले ही वितर वितर हाँ गई थीं भाग चलीं। वहो मारकाट हुई और पृथ्वीपाज स्वर्य भयविगतित हो हायी से घोड़े पर चढ़कर भागा। पठानों ने उसका पीछा किया और सरत्वती के किनारे पकड़ कर मार डाला। मैं चिंतित हो गई।

कज्जौब जो मेरे पराभव से मन ही मन पुलकित हो रहा था वह भी अधिक दिनों उस अभाव से असूता न चला जो मुझे अब तक निगल चुका था। अगले ही चाल गोरी ने उसे भी लूट लिया यद्यपि रुद्र वयवन्द ने चन्द्रावर के मैदान में उससे लोहा लिया और लड़ा दुश्मा मारा गया। मुझे यह कब गवारा था कि मेरा स्वामी तो भागता दुश्मा पकड़ कर मार डाला था और कज्जौब का स्वामी बीरदा से लड़ा दुश्मा मरे। मैंने भट अपने दर्जारी कवि द्वारा 'पृथ्वीयजरासो' में आ रख क परिवर्तन करा दिए जिससे मेरा स्वामी तो इतिहास का प्रदिव नायक हो गया और जयवन्द देश की अत्यादी का दुरमन।

जो भी हो मेरी धरा से हिन्दुओं का स्वतंत्र शासन सदा के लिए उठ गया । कुदुबुहीन ऐवक ने मेरे नगर पर अधिकार कर एक नई सत्त्वनत की बहाँ बुनियाद डाली । मैं पहले चन्द्रगुन की लाट के आव पास आज की अपनी नई मस्ती तक फैलो हुई थी । उसी के बीच कुछ उत्तर ऐवक ने मुझे एक नया क्लेवर दिया और मेरे बीच उसने दो सौ पचास फीट ऊँची बह लाट लड़ी की जो बुनिया की सबसे ऊँची मीनार है । मालवा और गुजरात, विहार और ब्रिंगल पर जब मेरा अधिकार हो गया तब कुदुबुहीन ने यह लाट उसकी यादगार में लड़ी की । जिस गुलाम बंश की हुकूमत ऐवक ने मेरे नगर में शुरू की उसकी कहानी इतिहास में अपना सामी नहीं रखती । तेरहवीं सदी असल में यह जमाना था जब प्रायः सारे मध्य एशिया और मध्य में गुलामों का ही साधारण था । गुलाम वास्तव में शक्तिमान ही जीवित रह सकता है इति-हित्यान्त का प्रतीक है । कारण की बादशाह का देटा सो प्रहृति का दान है, लायक नालायक दानी हो सकता है । पर गुलाम नालायक हो और नालायक होकर भी सत्त्वनत की बुनियाद डाले उस पर हुकूमत करे यह सुमिक्षन नहीं । यह लायक ही होकर रहेंगा और हिन्दुस्तान में ऐवक द्वारा स्थापित गुलामबंश इसी सिद्धान्त की सच्चाई प्रमाणित करता है । ऐवक से बलबन तक लगातार गुलामों की शृंखला में एक भी ऐसा नहीं जो अपनी वैयक्तिक प्रतिना से न उठा हो । इन गुलामों का एक एक कूल मेरे द्वितीय पर लिखा है और उसकी याद मेरे लिये जैसे कल की घटना की याद है । जब मैं पृथ्वीराज के समृद्ध विलासी जीवन को देखती हूँ तो उधर से मुँह पेर होती हूँ और बरबस मेरी आँखें इन अन-भिजात स्वयंसिद्ध गुलामों पर बरबर अटक जाती हैं । इन्होंने अपना राज्य अपने विक्रम से अर्जित किया और ताक्त की चोटी तक ये उन परिस्थितियों से होकर गुजरे जिनकी एक एक साँस में बरणान्तक चोट

थीं थीं । कैसे यह चक्र इस प्रकार असामान्य हो गए इसका जवाब यह खुद है ।

कुलालुदीन अधिक दिनों मुके न भोग रहा और उसका तस्त अल-धारी के उस तुक़े अल्तमश को मिला जिसे उसने हिन्दुस्तान में खरीदा था और अब अल्तमश मेरी गही पर बैठा तब यीहिद्दस कापुल का प्रहरी था । कुबाचा किन्ध और लालीर सेंभाले था और पश्चिमायर विहार और बंगाल पर काबिज था । तीनों गुलाम थे । तीनों जब्तों भर्द, तीनों महत्वाकोक्ती । अल्तमश अभी मेरी जनी उमड़ी प्राचीरें ठीक ही कर रहा था कि चंगेज लाँ की बह अँधी हिन्दुस्तान की और चली जिसे पश्चिमी इतिहासकारों ने 'खुदाई कोहे' कहे हैं । चंगेज अपने भंगोलों को लिए ख्वारिज के शाह पर टूट पड़ा था और ख्वारिज का शाह जलालुदीन काकुल पर जा दूटा । किर पहले यीहिद्दस, उसके पीछे जलालुदीन और उसकी पीठ पर चंगेज एकाएक किन्ध के किनारे आ धमके । जलालुदीन को किन्ध में टक्के चंगेज लौटा क्योंकि उसे दूसरों से मध्य एशिया में लोहा लेना था । जलालुदीन भी लौटा । अपनी दस्तवज उसने एक बार अपनी तलबार और टदंता से लौटा भी ली पर जिर उसे अपनी जान के साथ ही लो भी बैठा । यीहिद्दस और कुबाचा इतिहास से मिट गए और मैं पालन्बाल बच गई । बंगाल और विहार ने भी मेरे तक्कत के सामने सिर झुका दिया ।

मालवा और गुजरात, बंगाल और विहार, काशुल और पंजाब से भन भारासार मेरे खजाने में बरसने लगा । मेरा मुल्लान अपनी कम्बाजी से दुनिया में मशहूर हो चला । खलीफा ने भी उसे लिकत मेजी और वह उन 'काफिरों' की लूट से गाजी बनने लगा जिनकी ओर से मैंने रुख़ फेर लिया था ।

अल्तमश के शाद उसके नालायक बेटे चार दिन की हुक्मत कर

ऐसा के जरियों से अपनी ध्यास बुक्स मिट गए और तब उसकी बेटी रजिया मेरे तख्त पर आई जा मेरे लम्बे इतिहास में मेरे तख्त पर सही सही बैठने वाली एक ही मुलताना है। इस तेरही सदी में किस्मत की करवट से कुछ ऐसा बना कि एक साथ तीन मुलतानाएँ मुसलमानी दुनिया के तीन लाभिदाल तख्तों पर बैठी—एक तो क्रूसेडर नवे लुई को इराने वाले मामलुक मुलतान चलादीन के भतीजे की मलका—दूर्ग मिथ की मुलताना थी, दूसरी ईरान की आधिश और तीसरी हिन्दुस्तान की यह रजिया।

रजिया ने तथारीस के तरीके बदल दिये। हिन्दू जमाने से ही कभी कोई नारी मेरी गही पर नहीं बैठी थी। और मुसलमानों को थों हिन्दुओं की तरह ही यह नाजायज लगा कि श्रीरतजात उष गही पर बैठे, जिसका विवाह न करी कुरान में था, न हीस में, न शरियत में। पिर अपनी कुब्बत, सूफ और ईदता से उठने वाले दुर्ग गुलामी को यह किसी तरह गवारा न था कि श्रीरत मर्द के पोशाक में तख्त पर बैठे और हाथी पर चढ़ सेना का संचालन करे। लातकर जब रजिया ने अपनी कुगा से हव्वी गुलाम याकूत को कुतार्य कर दिया तब तो सुरदार भवक ही उठे। और अल्लुनिया के नेतृत्व में इन्होंने उसे कैद कर लिया। पर रजिया जिस तरह दिलेर थी उसी तरह अक्लमन्द भी थी और उसने अपने कटाक्षों से अपने विजेता को बन्दी कर लिया। तब उसकी मर्दद से वह पिर मेरे नगर पर चढ़ आई मगर तब तक सल्वनत पर उसके भाई की हुक्मत एलान हो चुकी थी। रजिया को उसके दुश्मनों ने मार डाला और मेरी गही पर एक ऐसा नाचीज बैठा जो तीन दिन भी न टिक सका।

पिर मुके एक देसे धादराह के साथे में बैठना पड़ा औ अल्लमश का ही एक बैठा था और जिससे कभी खूँरेजी न की। वह नातिहीन था, मुलतान दरवेश जो कुरान नकल कर और टोपियाँ सीकर अपनी गुजर

करता था, जिसके हरम में सकत एक चीजी थी जो मुल्तान के लिये खुद साना बनाती, अपने हाथों काम करती। नासिरहीन नैक या पर नैक-नियती उस जमाने के मेरे जादशाह के लिये फ़क्र की कोई बद्दल न थी। मेरे तख्त पर बैठना तब तलबार की धार पर बैठना था। उस पर वही बैठ सकता था जो खोकबा हो, और जो दूर पाल के हर तेवर को समझ सके। मज़बूत हाथों विरोध को कुचल सके। निःसन्देह नासिरहीन में उसे भोगने की ताकत न थी और अगर एक लम्बे अर्द्धे तक वह वहाँ रह सका तो कुछ अपने बूटे नहीं थरन् उसके बूते जो अपनी कूरता, दिलेपी और मेधा के लिये गुलाम हुल्तानों में मशहूर हो गया—बलबन।

बलबन उठी अलबारी का दुर्क या नहाँ का अल्तमश या मगर भोड़ा, नाटा, बदमूरत पर जिसे उसकी जबान बैद सकार्द से चकित होकर अल्तमश ने स्तरीद लिया था। बलबन पहले अल्तमश का भिश्टी बना, किर उसका शुद्धसवार, किर नायक, किर सेनापति और तब एक जमाने तक नासिरहीन का बजीर और अब मेरा स्वामी हिन्दुस्तान का मुल्तान। इतने अद्दने से इतना आला होते मैंने और किसी को न देखा और वही बलबन की महानता का रहस्य है। बलबन कुछ महीने अल्तमश और नासिरहीन के बेटों की आरबी लदाई देखता रहा किर जब उन्होंने कूरता और रक्षात से परदेज को जुनौती दे दी तब बलबन उठा और उन्हें दूर कर तख्त पर आ भैड़।

कूर, सख्त, गम्भीर, न कभी दैरने वाला, न किसी को अपने सामने हँसने देने वाला बलबन जब मेरा स्वामी हुआ तब मैं खुद सहम गई। बलबन कुछ विशेष उदार न था। परन्तु राहो शान निभाना वह भले प्रकार जानता था। उठने कम से कम शहर और उसके पास दूर के इलाकों से चोरी और डाकुओं को दूर कर दिया। उसकी एकमात्र कामना अब मंगोलों से मेरी रक्षा करनी थी जो बार-बार हिन्दुस्तान पर

खापे मार रहे थे। इसी कारण मुझे छांड वह कभी बाहर भी न जाता था, यद्यपि एक बार उसे बाहर जाना पड़ा। चंगाल का सूबेदार दुगरिल अपने इलाके में स्वतंत्र हो गया था। उसने अपने आपको आदशाह एकान कर दिया था और तिक्के अपने नाम के ढलवाए थे। बलबन ने उसको 'पकड़वाने के लिए दो-दो बार सेना भेजी और दोनों बार दुगरिल ने उसे मार भगाया। तब बलबन खुद एक बड़ी सेना ले बरसात की मुसीबत की राह तय करता निर्दियाँ लांघता चंगाल जा पहुँचा। दुगरिल भागा पर पकड़ गया। उसे मार कर बलबन ने उसकी राजधानी में उसके सारे हिमायतियों को टाँग दिया। हजारों को उसने फाँसी दे दी और अपने बेटे बुगराखाँ को चंगाल का हाकिम नियुक्त करते हुए उसने कहा कि 'देस बुगरा दिल्ली से बगावत करने का नवीजा और अपनी भी हकीकत सोच ले।'

बलबन मुगलों से मेरी रक्जा का भार अपने बेटे पीर मुहम्मद पर छोड़ पूरब गया हुआ था। अब जब वह लौटा तो मंगोलों ने उसके बेटे को मार डाला था। पीर मुहम्मद ही हिन्दी के पहले मुख्लमान कवि अमीर खुसरो का संरक्षक था। उसके मरने से बलबन के दिल को बहुत चोट लगी। दिन भर तो वह किसी तरह दरबार में जमा काम में लगा रहता पर रात भर अपने बाल लींच-लींच बेटे की याद में रोता। इतने घड़े किसाही को जो इस कश्त सख्त और बेरहम था जब मैं अपने भहलों में बार-बार रोते देखती तो मेरे भी आँदू छलछला आते। बलबन के साथ गुलामों का राजकुल बहुतः समाप्त हो गया यद्यपि उसके पांते ने पिर भी कुछ दिन सुभे भोगने की कोशिश की।

कैकुआद जो बुगराखाँ का बेटा था दादा की देख रेख में उसके सख्त कादों की पावनी में फ़ड़ा हुआ था। उन्हें साल की उमर उक्के न उसे खूबसूरत लड़की को देखने का मौका मिला था न शराब की

एक चुरकी लेने का । नतीजा यह हुआ की गही पर बेठते ही उसने व्यभिचार और शराब के नाम पर बड़े-बड़े लोगों को लाला दिया । दुगरा ने लौटकर उसको संभालने की चेष्टा की पर सारा प्रयत्न निष्कल हुआ और कानिल के हाथ से कैकुवाद मारा गया । यद्यपि यह हत्या, हत्या नहीं खुदकुशी थी क्योंकि जब उसका अन्त करने के लिए इत्यारा उसके कमरे में पहुँचा तो, मुझे अच्छी तरह याद है, कैकुवाद शराब की आखोर चुरकी के साथ दम तोड़ रहा था और हत्यारे को सिंशा उसकी लाश डुकरा देने के और चुड़ करना न पड़ा ।

मैं पिर बगेर तुल्यान के हो गई । यह अराजक स्थिति मुझे अनेक चार भोगनी पही थी और इस स्थिति में मुझे रक्त से नहाना पड़ता था । मजबूत हाथ हटते ही बरबर तस्त के लिए फरामकरा होती और खूँरेजी के थार जब कोई गही पर पैठता अपने प्रतिपद्ध के बच्चे को खत्म करके ही दम लेता । इस बेक भी बैठा ही हुआ और मेरे महलों की पर्यां शाही खानदान के बच्चे ड्रूटों के खून से भूल गई । तब लिलजी जलालुदीन ने सदसा मेरे तस्त पर कम्जा कर लिया और उसने उस राजकुल का आरम्भ किया जिसमें धस एक बादशाह हुआ अलाउदीन, जो कैसे तो अपढ़-गँवार था परन्तु तलबार जिसने मुझी में कस कर पकड़ी और तस्तनत की हुक्मत में लाभिताल हुआ ।

जलालुदीन नेक और रहमदिल था, जहूक और मजहबपरस्त, भगर नेक और रहमदिल बादशाह के लिए तब भी गंगी गही न थी । कुच्चे की नीद सोनेवाले, कौवे की तरह सर्फ़, और बाज़ की तरह दूड़ पहने वाले ही सही सही उस स्तनत की हुक्मत कर सकते थे । नैकी उस जधाने का सबसे बड़ा अभिशाप थी । जलालुदीन को भी उसका फल भुगतना पड़ा । उसका भतीजा अलाउदीन न बेकल उसका भतीजा था वरन् दामाद भी था जिसे वह बेटे से छद्कर चाहता था । अलाउदीन

कहा का सुवेदार था पर उसकी महत्वाकांक्षा सुवेदारी की सुकड़ी हड्डों में न समा सकी। यह सीधा दक्षन पहुँचा और देवगिरि के राजा को दरा उससे करोड़ों की समस्ति छीन दिल्ली पहुँचा। चाचा ने आनन्द से पुलकित हो भयोजे को छाती से लगाने का उपक्रम किया तभी वह पटना धटी जो न केवल नेरे ही इतिहास में बल्कि दुनिया के इतिहास में कूरता में अपना सानी कम रखती है। कातिल की तलवार चचा के फ्लैजे पार हो गई। अलाउद्दीन चोना लुटाता सेरे तस्त पर आ बैठा और तब उसने रक्त की वह होली खेली जो मेरी याद में आज तक बनी है।

अलाउद्दीन ने बड़ी सख्ती से द्रुमूल शुरू की। हिन्दुओं को उसने बड़ी शुरी तरह जेर किया। मुख्लमान भी उससे कुछ कम न छरते थे। नए तिरे से उसने शासन का कार्य आरम्भ किया। यदा लिखा वह न था यह सच है मगर इतिहास का मादा उसमें था और खूब था उसकी भी महत्वाकांक्षा कुछ कम न थी। वह शराब की पीनक में एक चार शोला कि मैं चाहता हूँ कि मोहम्मद की तरह एक नवा मजहब चलाऊँ और लिकन्दर की तरह दुनिया पूर्त करूँ। अपने सिक्कों में तो उसने अपने नाम के आगे 'दूसरा लिकन्दर' लिखा ही दिया। परन्तु एक समझदार दरवारी ने उसको सुकाया कि वह मजहब चलाने का काम तो पैगंबरों पर छोड़ दे और दुनिया जीतने के पहले वह उस दुनिया को जीत ले जो हिन्दुस्तान के भीतर लही उसको ललकार रही है—रणवीर—चंद्री की, चित्तौरन्नालय की। निरन्देह रणवीर और चित्तौर ने ही उसके साम्राज्य के सारे साधनों को इति कर दी पर दोनों को ले उसने जहर लिया। अलाउद्दीन के जमाने में ही पहले पहल मुख्लमान दक्षिण पहुँचे और उसके एक छड़ी भाग पर अधिकार कर लिया। उसका हिन्दू गुलाम मतिक काफूर कई बार सेना लिए दक्षिण को रींदता मालाबार और रामेश्वरम तक जा पहुँचा और

अपनी लूट से उसने मेरे खजाने का कोना कोना भर दिया । एक बार तो वह हजार मन अलेला सोना लाया था, मोती, हीरे जवाहर के अलावा ।

पर इस तरह की सख्त दुकूमत में जब दर के ऊपर ही सत्तनत के पाए रखे हों बगावतों का होना बरुरी है । बगावतें हुईं भी खूब और एक बार तो उसके एक भतीजे ने उसको इतना मारा कि मरा हुआ जान कर छोड़ दिया थिर जब वह उसके हरम की ओर बढ़ा तब खोजे ने उसकी राइ रोक करा हरम में आप दालिल जम्मर हो पर उभी जब अलाउदीन का सिर मुझे दिखा दें । इसी समय अलाउदीन का थिर दिखाईं पहा पर सिर ऐसा जो उसके मजबूत कंधों पर बहले का सा जमा हुआ था । भतीजे का थिर उसी दम वह से अलग हो गया । इस तरह की बगावतें एक नहीं अनेक हुईं और उनका इस कदर दौता बैंधा कि अलाउदीन के शासन काल का हर साल मझें तक उन बगावतों से भरे रहे और खुल्तान को लगातार उन इन्तजाम सोचना पड़ा । उनका इन्तजाम इस एक या, तलवार से फैसला, जो करने में सुस्तान कभी न खूकता था । पर ये फैसले ही दूसरी बगावतों की दुनियाद साधित होते । किर उनसे ऊपर आदशाह ने एक नई धोमणी की । उसने सोचा कि बगावतें अद्यादातर दावतों और शराब की गोष्ठियों में तथ आती हैं । उसने अमीरों की दावतें बन्द कर दी, शराब के दौर बन्द कर दिए, शराब की भट्टियाँ बन्द कर दी । खुद उसने शराब छोड़ दी । पीने के वेश कीमती बरतन तोड़ दाले । दूटे बरतनी के द्रकङ्गों से मेरा बदायूँ दरवाजा भर गया । उसके पास की जमीन फैके शराब से बराबर गोली रहने लगी । अलाउदीन यहीं तक न रुका । उसने चरों का एक विभाग खोला और अब शहर के भीतर अमीरों के घर घर के भीतर उसने अपने जासूस नियत किए । कोई वात ऐसी न हो पाती जिसकी खबर उसे न

होती। प्रात्तादो के अन्दर अपने कुनै में कोई बात कान में भी कहना अमीर खतरनाक समझने लगे। 'शीवारों के भी कान 'होते हैं' यह मुहावरा दुनिया में कभी भी ऐसा सच नहीं हुआ जैसा अलाउद्दीन के जमाने में। उसने दो अमीर बरानों को शादी में बधना भी बन्द कर दिया जिससे दोनों की ताक्त मिलफर खतरनाक न हो जाए। मेरा सारा शहर मातम और सदमें की नीद सोने और जगने लगा। हिन्दुओं के साथ तो जो सलूक उसने किया वह निहायत बेरहम था। उनके रहस कंगाल हो गए। उनकी बीदियाँ मुसलमान घर में बाँदियाँ बनने लगीं। उनको हाना-नाना मुहाल था।

मंगोलों का डर अभी कुछ कम न हुआ था। मैं बराबर धराई हुई थी लादीर और काबुल की ओर देखा करती। दो दो बार उनके हमले हुए और दोनों बार ऐसा मालूम हुआ कि मैं उजड़ जाऊँगी। एक बार तो वे मेरे 'सीरी' के महलों के परकोटे के सामने तक आ गए और उन्हे महोनी बेरे रहे। अलाउद्दीन ने किर मैदान में उत्तर जहर खाँ की बहादुरी से उन्हें मार भगाया। दूसरी बार वे किर आए और मेरे बाहर कुछ काल जमे रहे। इसी बीच नेरे शहर में उनका एक मोहल्ला भी रह गया था। मुस्तान ने उनमें से एक एक को, थोड़ी, कर्वे सब को बेहमी से तलबार के घाट उतार दिया। वे तो वैसे भी कंगाल ने पर उन कंगालों के सून से मेरी गलियाँ छुल गईं।

मंगोल लंतरे से बचने के लिये अलाउद्दीन ने एक बड़ी भारी सेना प्रस्तुत की थी परन्तु चूंकि उसका खर्च आसानी से उठाया न जा सकता था इसलिये उसने अन्न की कीमत बराबर के लिए तय कर दी। साढ़े तीन आने मन येहूं, देढ़ आने मन जो, दो आने मन चावल और दो ही आने मन दाल मिलने लगी। मुन्दर कान करने पाते गुलाम नौकर दस रुपये में और रखेलें बीमुर रुपये में मिलने लगीं। रखेलों

की याद जब मुझे आती है तब इन्हानियत के इस पतन पर मैं आँख ढालती हूँ। पद्धति मैं यह भूली नहीं कि यद्यपि गजनवी के हमसे के बाद मध्य एशिया के बाजारों में उनका दर बेदर गिर गया या और उन्हें दस दस आने में वहाँ कोई खरीद सकदा या क्योंकि हिन्दुस्तानी गुलामों से वहाँ के बाजार तब भर गये थे।

अलाउद्दीन के मरने के बाद मेरी वही गति हुई जो बलचन के बाद हुई थी और जो मन्त्रवृत्त गुलामों के मरने के बाद द्वावर होती रही। बारी बारी से अलाउद्दीन के लड़के जो बचीरों के शिकार हो गए थे मेरी गद्दों पर बैठे। अलाउद्दीन के अस्सी हजार गुलाम राहर में थे। उन्हनि भी कुछ कम पैते न थिए, पर ताहत उस मुवारकशाह के हाथ लगी जिसने पहले वो छै साल के बच्चे पादराह की अभिभावकता संभाली, फिर उसे अंधा कर मरवा डाला। उसकी बेरहमी के किरणि कुछ थोड़े नहीं और मैंने वो इस तरह के अनेक अपने प्राप्तादों में होते देखे हैं। मैं यह कह सकती हूँ कि मुवारक की तरह का ऐसी मुल्तान शायद कभी मेरे महलों की फर्श पर नहीं उतरा। देवगिरि के दिन्दू रोजा दरगाल के बगावत भी सब्बा उसने दरबार में उसकी खाल जिन्दा लिंचया कर दी। खाल सीचते बड़ की उसकी चीख आज भी मेरे कोने कोने में बह रही है। बगावतों का होना स्वाभाविक ही था। मुवारक के चचेरे भाई ने खुद ही बगावत की। इस पर न केवल उसने उसको मरवा दिया मगर उसके उन्तीस भाई भृनों को भी बेमुख्यत मरवा डाला। खुद उसका शरीर भून उसकी बांदियों उसके प्रखालों को खाने के लिए भेज दी। अब वह खुद गदी पर या और उसने गुजरात के एक अबूत परवानी को अभना बजौर बना लिया था। उस परवानी के साथ यह दुनिया के सारे पान करता और दोनों ने मेरे महलों में जना का एक ताँता बौध दिया। वे नंगे दरबार में आकर:

अमीरों का अवमान करते और उनकी बेशर्मी देख मैं अँखें भीच लेती। एक दिन आखिर वही हुआ जो होना था। परशानी ने उसे रक्ख कर दिया और उसका घड़ सोगों ने एक रात किले की दीवार से बाहर गिरते देखा। परवानी जिसे मुचारकशाह ने ही खुसरों खाँ का खिलाफ़ दिया था अब नासिरुद्दीन के नाम से गदी पर बैठा और जिस बेशर्मी का उतने परिचय दिया उसका बदान नामूनकिन है। खिलजी मुल्लान के हरम पर उसने पूरा कब्जा कर लिया, जो शाहजाहियाँ उसने जरूरत की न समझी उनको उसने दूसरे परवानियों में बैठ दिया। बहिर्दी में उसने मूर्तियाँ बिठाईं और कुछ महीनों उसने तलबार के घर पर मेरे शहर में काहराम मचा दिया।

अगर वह चाहता तो उसके हाथ में सब कुछ था। खजाना, फौज, किले और इनसे कहीं बदकर शहर और सत्तनत के मजल्लम, और अलाउद्दीन के अस्ती बजार गुलाम जिनसे कुछ भी किया जा सकता था। यह निरंकुश शासन की बुनियाद ही कुछ ऐसी है जो तख्त पर बैठने वाले को गुमराह कर देती है। नासिरुद्दीन ने भी वशी किया जो उसकी रियति के लोग किया करते हैं, करते आए थे। पर आखिर वह रियति बराबर कायम न रह सकती थी और अमीरों ने लाहोर और उत्तर-पश्चिम के किलों के प्रदीरी गयासुदीन तुगलक की ओर देखा। गयासुदीन 'मेरे नगर पर छढ़ आया। परवानी ने खजाने का सोना कौज को बौट दिया और तलबार से मैदान में उतर आया पर इसी बत्त तुगलक का बेटा जौना जो बाद में मुहम्मद तुगलक के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ और जो तब मेरे पुढ़रवारों का सर्दार था, शाही रिसाले के साय बाप से जा मिला। गाजी तुगलक गयासुदीन खिलजियों के तख्त पर आ बैठा और सीरी के महल की घरवाद कर उसने मुझे नए सिरे से बसाया और मेरी नई बहती को तुगलकाचाद

कहा । मुझे याद है दो साल के निरन्तर मेदनत से लालों राजों और भज-
बूरों द्वारा दुगलकावाद और उसके भीतर का मेया शाही महल तैयार
हुआ था । पर उस महल में दुगलक रह न सका । उसमें वह प्रवेश भी
न कर सका और बेटे की मुहब्बत का वह शिकार हुआ । बंगाल की
चढ़ामनी दवाकर वह लौटा था और अपने नए नगर में वह प्रवेश ही
करना चाहता था कि बेटे की मुहब्बत ने उसे रोक दिया—कहा कि
नए नगर में शाही दाखिला गुनासिय इत्तफाशाल और बशन के साथ
होना चाहिए । बशन हुआ पर जिस पराहप में मुस्तान का खागत होने
वाला था एन मौके पर वह बैठ गया । कैसे बैठ गया यह वह बेटा जाने
जो आज इस दुनिया में उसकी कैफियत देने को जिन्दा नहीं ।

मोहम्मद दुगलक की बादशाहत कुछ अन्त थी । कुछ ऐसी कि
जिसका सानी दुनिया के इतिहास में नहीं । लोगों ने उसे पागल भी
कहा है, दूरदर्शी भी । मैं वह क्या या इसका नैसला अन्नी कहानी
पढ़ने वालों पर छोड़ी हूँ पर इतना गलत कहूँगी कि मेरे तख्त पर कोई
ऐसा बादशाह न बैठा जो इतना किस्मतवर रहा हो और सबुन में इतना
लालिसाल जितना मोहम्मद था । गुजरात, मालवा, दक्कन, दार-
समुद्र तक और सारा दिन्दुस्तान जीत कर आप खुद उसे छोड़ गया था
और दिमागी इसमें जितना सही और जितना बेअन्दाज आलिम
यह था उतना कभी कोई बादशाह मेरे तख्त पर न बैठा । गजब का
दार्शनिक और ग्रीक दर्शन का परिणाम, असाधारण गणितश और
आलिमों को भी अरने तक्ष से शुग कर देने वाला तार्किक, उस बाक्-
प्रबोगता के सुग में गजब का बक्ता, फारसी साहित्य का असाधारण
जानकार और हरकू नक्काशी में अरना नमूना आप वह मोहम्मद था ।
ऐसा भी नहीं कि वह रिक्षाया की भक्ताई न चाहता हो पर बात यह

यी कि वह गुमराह था और उसकी सारी तरफीबें आसमानी थीं, जधीन की नहीं।

चीन जीतने के लिए उसने एक सेना भेजी जो पहाड़ों में गला गढ़, वनों खुची उसने मरवा डाली। किर उसने सोचा कि दिल्ली न केवल खंडार मंगोली के लकड़ों को पहुँच में है, दक्षिण पश्चिम के सूखों से दूर, बहुत दूर है और वहाँ से आने वाली खिराज़ विद्यार्थी की सड़कों पर लुट जाती है। अगर देवगिरि को राजधानी बनाया जाय तो वह सल्तनत के शीर्छ में हो और हुक्मत मुनाविव तौर से हो सके। अपनी कामना को शुभ करने के लिए उसने देवगिरि का नाम शशकर दौलताबाद रखा और मेरे शहर की प्रजा को, अमीर गरीब को उसने यहाँ जा जाने का हुक्म दिया। उसकी हुक्म उदूली का नवीजा क्या होंगा यह मेरे नगरवासी जानते थे। सात सौ मील चल कर वे उस स्थें सुखे मराठे देश के शीर्छ पहाड़ी देवगिरि पहुँचे, जहाँ न उनके खुशनुगे जाए ये, न जमुना का निर्मल पानी, न उनकी ऊँची मस्तिश्वर, न आरामदेह मकान। रियाया तबाह हो गई। ज्यादातर सात सौ मील की उस मुसाकिरी में चल वसे ये, बहुतेरे नए शहर को तकलीफ़ी और नई शीनारियों के शिकार हो गए थे और जो बचे थे उनकी मुसीशत और उनकी तबाही देख उन्हें लौटने का हुक्म दिया। मैं उजब गई थी और अपनी मुसीशत की कहानी नैं क्या कहूँ जिसका बयान कुछ ही साल बाद मेरे शहर में आनेवाले मूर इन्वेटोर के हाल में पढ़ा जा सकता है। मैं उजब गई थी और नेरी उड़कों पर लाखों सार्हों सद रही थीं।

मुस्तान भृत्याया हुआ था। उसने रियाया पर नए करतमा दिए और कबीज तथा ढलमऊ तक के प्रदेश उजाह डाले। सही लेती छोड़ किसान ज़़़क्कों में भागे पर यहाँ उन्हें घेर कर मुस्तान ने बनैले जानघरों की तरफ़ मरवा डाला। किर जो उसे हांश हुआ तो उसने

उनका सालाना कर मारु कर दिया । उन्हें नए सिरे से लेती करने के लिए सल्तनत की ओर से उपार रूपये दिए, शीज और जहरत की चीजें दी । कुचले खाँ ने चीन ने चमड़े के सिक्के चलाए थे और ईरान के बादशाह ने कागज़ के दरवे चला कर रियाया को ठगना चाहा था औ मोहम्मद ने ताँदे के सिक्के चलाए और उन्हें चाँदी सोने के बदले लेना शुरू किया । मेरे शहर का हर घर तब ताँदे के सिक्के टालनेवाला टकसाल बन गया और खजाना उनसे भर गया, सोने चाँदी के सिक्कों से लाली हो गया । बाहर से आनेवालों ने उन ताँदे के सिक्कों का अम्बार 'दुगलकाशाद' के दरवाजे पर सालों बाद खड़ा देखा । सल्तनत तबाह थी, रियाया कुचल गई थी, बिलमंगी हो गई थी, किर भी मोहम्मद अपनी फायाजी की नई यजिलें तय कर रहा था । बिछानों को दान देने में उसने नई कँचाइयाँ नारी और बिदेशी शुनकड़ों को तो उसने मालामाल कर दिया । जागीर और खिलत, घोड़े, हाथी और घन देना तो उन्हें उक्की मामूली थात थी । इनबदूता को उसने न केवल बन, दौलत और जागीर बरुशी, छाजी बनाया, बल्कि उसे अपना दूत बनाकर चोन के सम्माट के पात भेजा । दुगलकाशाद में, गाजी के भेर नए शहर में जिसमें गाजी एक दिन भी न रह सका था उसका यह मुनहरी खपरैलों से छाया महल खाली पढ़ा रहा पर मोहम्मद उसमें एक दिन भी न पैठा । उसने लालों लच्च कर अपना नया नगर बसाया और उसमें उतने जहाँपनाह नाम का अरना नया महल खड़ा किया । यह मैं इधर के जमाने में पाँचवीं शत बढ़ी थी । पृथ्वीराज का हिन्दू-नगर कल का याद से भुलाया जा चुका था, कुतुबुदीन और अस्तमश की दीवारें भी छब्बी छब्बी थीं, सोरी की प्राचीर दुगलक ने ही छोड़ दी थीं, दुगलकाशाद बीरान पढ़ा था और अथ दस मील लम्बी-न्हींही मेरी आवादी जो जहाँपनाह के रुद्द गिर्द कैली थी, उजड़ी पढ़ी थी ।

मोहम्मद से आखिर मुझे नजात मिली जब हिन्दियों से लड़ता वह सिंधु के किनारे बुखार का शिकार हो गया और तब उसका चर्चेरा भाई इस्लाम का परमभक्त और इमारतों का नशहूर निर्माता मेरी गही पर बैठा। इस नेकदिल बादशाह को सारी जिन्दगी मोहम्मद की गलतियों को दुरुल्ल करने में लगानी पड़ी। इसने जिन जिन पर बुल्म हुआ था उनसे माफी लिखवा कर मोहम्मद के साथ दफना दिया जिससे क्यामत के दिन उस बादशाह पर खुदा की रहमत बरो। मिरोज को गुलामों का बड़ा शौक था। अक्सर गुलाम वह अपनी नजर में लेता, दो लाख के करीब उनकी संख्या मेरे नगर में हो गई थी। उनमें से चालीस हजार तो केवल महस की रक्षा में नियुक्त थे, उनकी अपनी सेना थी, अपना खजाना था, अपने अक्सर ये और मैने हसरत भरी नजर से बार बार उन गुलामों की ओर देखा और पूछा क्यों नहीं वे अपनी पौजों का अपने खड़ाने का अपने लिए इस्तेमाल करते? क्यों नहीं नेरे तख्त पर कब्जा कर वे अभजात कुलियों को उनके विलास का नजा चखा देते। परन्तु कुचले हुए उन गुलामों में हिम्मत न थी, उनमें अरमान बक न थे, कोई हसरत न थी।

मिरोजशाह द्विंदशक ने मुझे छठीं बार आकाश दिया और मेरी नई आचारी मिरोजावाद के नाम से दुनिया में मशहूर हुई। मिरोजावाद में ही मिरोज के बजीरआजम और लोनानेखान मकबूल साँ का वह इरम काव्यम था जिसकी चर्चा तबकी दुनिया में दच्ची मुरक्कराइट से होती थी और जिसमें उसकी दो हजार शीरियाँ। बैठनी रंग की मीक बेगमों से लेकर पीली चीनी बेगमों तक। मैने अपनी इस लम्बी उम्र में इतना बड़ा हरन कभी न देखा था और बाद में भी ऐसी तादाद मेरे महलों में न उतरी। मकबूल साँ को बादशाह इतना मानता था कि उसके हर बेटे के लिए उसने एक हजार की आमदानी धौध दी थी, और हर बेटी की शादी

के लिए लचूं। फिर दो हजार बेगमों से बराबर पैदा होती रहनेवाली औलाद के सर्व का अन्दाज लगाया जा सकता है। पर आखिर उस सर्व की कैफियत लेनेवाला कौन या जब कि खुदा का पेशवा वह शादराह सुन उसे बख्ता रहा था।

फिर भी अपनी उत्त चोट की कहानी सुनके फहनी ही होगी जिसकी पाद अम्भर मेरी नींद तोड़ देती है। जब मेरे नगर में तुगलकों के बंशधर बजीरों के हाथ की पुतली हो रहे थे, जब मेरे नगर और कबीज में दो दो शादराहते खड़ी हो गयी थी और जब अकेले मेरे ही नगर में दस मील के दीच मोहम्मद और नसरत सल्तनत के स्वाम देखने लगे थे तभी समरकन्द से वह तैमूर निकला जिसने एशिया माइनर तक कुसुनुनिया की हदों तक अपना साम्राज्य सड़ा किया था। कानून पर उसका पोता दीर मोहम्मद पहले से ही काविज था। उसे मुल्तान की ओर मेरा तैमूर लिंग नद के तट पर आ खड़ा हुआ, उस लिंग के किनारे जिसे चंगीज के सामने भागते खुरासानी शाह जलालुद्दीन ने तैर कर पार कर लिया था। और जिसके बहुत पहले सिंकन्दर कभी सदे होकर रोया था उस दरिया को नावों के बेड़े से पार कर तैमूर पश्चाय के मैदानों ने आ धमका! उसके लूट की रहानी मैने कब से सुन रखी थी और उसके सामने भागते अपने पैरों की धूल से आसमान में शादल उठाते भगेहों ने जब आठ्हर मुझ से जलते गाँवों और घट्टे भर में दस दस हजार दुश्मनों को तलवार के घाट उतार देने की तैमूर की भात कही तब मेरा कहेजा दहल उठा। पर होता वही था जो होकर रहा। पानीपत के मैदान में मोहम्मद ने जाकर उसका सामना किया पर रात के अँधेरे में उसे पहले किले ने फिर पहाड़ों में पनाह लेनी पड़ी। सात रोज को यह चल रह के गाँवों को लूटता तैमूर मेरे दख्खाने पर आ खड़ा हुआ। सात रोज मेरे दिल की भद्रकल बन्द रही। मेरे शहर के रईसों ने

जाकर मेरी रक्षा का मूल्य उत्तरे पूछा । जो कुछ तैमूर ने माँगा वह मेरी जान बहुत देने के बदले देना मन्त्रूर किया । १३६८ के जाँड़ के दिन थे; दिग्म्बर का महीना, जब लेन देन में कुछ दिक्षित हुई और तैमूर ने अपनी लोगों को मुझे लूटने का हुक्म दे दिया । इस हुक्म का मतलब मैं आँख चुको थी क्योंकि पानीपत के नैशन में लड़ाई के पहले इन्तजाम की कमी की बजाए से जो तैमूर अपने एक लाख कैदियों को बित्ता किसी अहसास के मार सकता था उसका हुक्म था यह । हुक्म की देर थी । फल और लूट के नाम पर दौड़ पड़नेवाले पठान और तुक्के खुरासानी और मंगोल मेरे मुहल्लों पर टूट पड़े । चार दिन लगातार नेरी गलियाँ खून उगलती रही और मैं बेरहमी से लूटती विट्ठी रही । अनन्त अनन्त धन तैमूर के गिराहियों को मिला । अनन्त अनन्त बाँहें मेरी सहकों पर बिछु गईं । सभ्यदों और मुहल्लों का मुहल्ला भर तैमूर के कोष से चर रहा । तब कहीं उते संतोष हुआ और मेरठ और इरद्दार को उड़ादाता, भद्रों का कल्प करता, औरतों और बच्चों को कर्दी करता, नगरकोट की राह भाड़ों के पीछे ओभल हो गया । मैं बरदाद हो गई ।

सैर आगे की कहानी सुनिए । फिरोज के बेटों ने खुद उसके कालिख लगा दी और तब किर एक थार मेरे महलों में तलवारें चमकीं और रक्त उलीचा जाने लगा । हुगलक खानदान के जिन बुज्जिलों में उस शाही नरनेत्र में अपनी आहुति दी उनका नाम मैं जान पर भी न लाँगनी । इतना कह देना काही होगा कि उनके कमज़ोर हाथों से पहले दीलत खाँ लोदी ने राजदण्ड छोन लिया, पिर लिख साँ ने और तब सभ्यदों का राज मेरे नगर में कायम दुआ । पैगम्बर के नाम पर जीने वाले इन सभ्यद बादशाहों में खुद तलवार संभालने की ताकत न रही और वह लोदियों के हाथ में कुछ ही साल बाद चली गई ।

बहलोल खाँ लोदी काफी दिलेर था और उसने अरमानों का एक

नया राजकुल मेरे लिहाजन पर प्रतिष्ठित किया । सिकन्दर ने उसके सहतनत को दूर तक फैलाया पर इमारीम ग्रहादुर होता हुआ भी नासमझ था और उसने मेरे महलों में बारबार जो दुक्ह सरदारों और अपनानी अपीरों का अपमान किया तो वे भड़क उठे । बंगाल और विहार में उनके दो प्रयत्न पराने कब के लिहे हो चुके थे । वे एकाएक स्वरान्त्र हो गए । इसी प्रकार मालवा और गुजरात में भी दग्धावत का भएडा लहा हुआ और दक्षक और परिचन के दूर के लूपे कब के हाथ से निकल गए थे । इसी बीच हिन्दुओं में प्रिय सरगर्मी पैदा हो चुकी थी और जगह जगह उनके राजा सिर उठाने लगे थे । मालवा में नवाब न होकर भी मेदनीराय बहुत कुछ था और मेवाड़ में राणा सौंगा ताकत और दिलेरी में काफी रुक्याति पा चुका था । गुजरात और मालवा तक उसका आतंक छाया हुआ पा और पारवाड़ और आगरे तक उत्तरी धाक थी । लोदियों ने मुके छोड़कर आगरे का अपनाया था और इमारीन और सौंगा की सल्तनतों की सीमा जमुना थी । दो दो बार राणा ने इमारीम को जीता था और दो दो बार मुके ऐसा लगा कि मैं प्रिय मुसलमानों के हाथ से निकलकर हिन्दुओं के हाथ में चली जाऊँगे । परंगर ऐसा हुआ नहीं क्योंकि जर्वनिर्द लौंगा ने मेरे सल्त की जिम्मेदारी सुभालने ली ताब न थी । उसने दौलत लौंग को काढ़ुल में उस धायर के यात्र भेजा जो फरगना के मैशनों में सैकड़ों लहाइर्या हार जीत चुका था । उसे उसने कहलाया कि मौका है, आकर वह दिल्ली ले ले और तप मेवाड़ और दिल्ली की सीमा जमुना होगी । पर अपने मंगोलों के साथ दुनिया में हदसा पैदा कर देने वाले खुदाई कोडे चंगेज और समरकन्द से मेसोपोतामिया-एशियामाइनर तक लाग्नाज्य लहा करने वाले बीहड़ रैमूर के बंशधर उस चाचर को जीत के बाद हद्दे दिलाने की जरूरत न थी । बादर आया और पानीपत के उस

कातिल मैदान में उसने बाहर घुड़सवारी से इब्राहीम की एक लाल सेना तितर बितर कर दी । अपने तोपखाने से उसने इब्राहीम के हाथियों में भगदड़ मचा दी । इब्राहीम खेत रहा और मुझ पर कब्जा उस धौंके जशान का हुआ जो बगल में दो दो जवान दबा किले की दीवार पर दीह जाता था और जितने रास्ते की हर नदी तैर कर पार की थी । बाबर के हाथ में आ भैं बहुत प्रसन्न हुई और नेहरी प्रसचता का कारण यह था क्योंकि उसने गेरे नगर में उस यहे राबकुल की नींव डाली जिसने दो सदियों तक भारत पर अटूट राज्य किया । और जिसमें एक से एक बबॉन्ड और समझदार बादशाह हुए ।

मगर बाबर को अभी यहुत कुछ करना था । उसने मुझे जीत तो लिया था पर चिंतौर मेरी और अँखि गङ्गाए देख रही थी और उसका स्वामी सौंगा बाबर से मैदान लेने के लिए रियाने की ओर छढ़ा आ रहा था । जब तक वह न कुचल जाता मैं भला किस कदर अपनी प्राचीरों में इत्मीनान की नींद सो सकती थी । बाबर सीकरी की ओर बढ़ा पर उसकी तेना के अगले चिपाहियों को राजपूती चोट की बानानी तकाल मिल गई और बाबर की सेना में आतंक छा गया । बाबर खुद कम डरा हुआ न था । उसने सैल्कों की चोट जानी थी, तुक्कों का हुतुगमा भी उसका अनजाना न था, पठानों के तेवर उसने देखे थे, खुराकानी रिखालों का हमला उसने बेकार कर दिया था पर अब दिलोरी की जो दीवार उसके सामने थी उसके तेवर कुछ और थे । राजपूती आन की आत वह कुन चुका था जिसका अन्दाज ताँदा की पहली चोट ने उसे कुछ दे दिया था । सौंगा खुद जाती ताकत में बाबर से कुछ कम न था, गोकि उसके बदन पर असी धाव थे । एक अँखि पूट तुक्की थी, एक हाथ गायब था ! सीकरी के मैदान में जब दोनों फौजें आमने सामने खड़ी हुई तब बाबर के हांश गुप हो गए और जासकर जबकि उसकी पौज में डर की सद

लहर दौड़ गई । उसने नमाज पढ़ी, कौल किया कि अब वह शराब करनी न पिएगा । शराब के बर्तन उसने तोड़ डाले और आदमी की जान की जायनंगुरता पर अरनी फौज को एक खासा क्षेकचर दिया । लड़ाई जमकर हुई । दगती तोपों के मुँह पर राजपूत रिंगलों की कतार की कतार टूटती आती और आग परसाती तोपों का मुँह उन भौत में बूद्धते राजपूतों से बन्द हो जाता और अगर बही तोपें चमड़े की जंजीरों से जकड़ी ने होती उस तरीके से जिसे बाबर ने अपने परिच्छन्नी दुदों में जोता था और जिसका इस्तेमाल थोड़ेमिया के तोपची जर्मन रिंगलों को रोकने में करते थे तब वहाँ पलट गया होता । जीत बाबर की हुई और मैरे सन्तोष की सौंदर्य ली । मेरी जान में जान आई । बाबर की छाया ने मैं दिन दूनी रात बौगुनी बढ़ चली । बंगाल द्विदार मालवा गुजरात बारी बारी मेरी हुक्मत ने दाखिल हुए मगर बाबर की तथियत मुझसे न भरी और उसने आगरे को अपना आनंद प्राप्त किया । आगरे को ही उसने खुशनुमा और ठंडे बगीचों से भर दिया पर वहाँ भी वह दिल्ली की गर्मी में टिक न सका ।

अब मैं नई शक्ति और नए गौरव के राजमार्ग पर आरूढ़ हो चुकी थी । मुझे अपनी भावी महत्वा साकार सी होकर साक्षात् दीक्षने लगी यद्यपि उसमें हुमायूँ के गढ़ी नशीन दोनों के कारण शुरू में ही बुद्ध टेस लगी ऐसा नहीं कि हुमायूँ जबॉमर्द और दिलेर न था । ऐसा भी नहीं कि वह शाप की खड़ी की सल्तनत सो देना चाहता था पर इतना जहर है कि वह दायित्व कम समझता था । ऐस पिलात का जीवन उसे यतन्द या और अरनी लड़ाइयों के बीच बीच अक्सर वह नाच, रंग, शराब और अशीम के नशे में खो जाता था । गुजरात और मालवा की उसकी लड़ाइयाँ बुद्ध भासूली न थीं और उनमें जिस दिलेरी का परिचय उसने दिया था वह भी बुद्ध साधारण न था पर वहाँ सेल्सौट कर आगे में जो

उतने शहर के दीर शुरू किए तो शेरशाह ने अपनी ताकत विहार में मजबूत कर ली और जब चुनार को ले वह गोड़ पहुँचा तो वहाँ उसने इस कदर नाच रंग में दुनया भुला दी कि शेरशाह ने अपने हो बादशाह एलान कर दिया और हुमायूँ को मेरी गही ही छोड़नी पड़ी । मैंने सल्तनत को बहादुरों की आन पर उनकी हार जीत के बात चिनहते बनते देखा है, किनी ही बार मैं इस तरह छिन गई हूँ पर विशाल सेना लिए थिना एक गोली चलाए अगर किसी को मैंने भागते देखा तो हुमायूँ का । कभी ज के मैदान में जब शेरशाह अपनी फौज लिए हुमायूँ के सामने उतरा तब वह मेरे सुन्तान के मुकाश्ले कुछ न थी । मगर उस अकगान का आतंक इस कदर शत्रु पर छा गया, हुमायूँ की सेना और खुद हुमायूँ पर उसका रोध इस कदर गालिच हुआ कि शाही सेना मय उसके शाह के मैदान छोड़ भाग चली । फिर तो जैसे हुमायूँ के पैर में चक्कर बैध गया और वह मेरे नगर से लाहौर, लाहौर से मुल्तान, मुल्तान से अमर-कोट, अमरकोट से ईरान भागता फिरा ।

मेरा स्वामी अब शेरशाह था । शेरशाह कुत पाँच साल मेरे तख्त पर रहा नगर उत्तर पाँच साल में जो उसने किया हुमायूँ पाँच सौ साल में नहीं कर सकता था । पंजाब, मालवा, गुजरात, बंगाल और विहार को तो उसने मेरे तख्त के पायों से ढाँचा ही, राजपूताने की यह दीर प्रसवा भूमि जहाँ वह अड़ो के शोश उड़ जाते थे शेरशाह ने सर कर ली । उसने अपने विहारी और भोजपुरिये जवानों से राजपूताने की जमीन रीद ढाली । यह पहला अवसर था जब दूसे का एक सिरही मुक्के छीन मेरे तख्त पर कब्जा कर ले । अब तक रीति दूसरी रही थी—यानी कि या तो बाहर के यित्तेश्वरों ने मुक्क पर कब्जा किया या या मुक्क पर काबिज बादशाहों ने हिन्दुस्तान के दूसे जीते थे । शेरशाह बादशाह था । उसका ईंच ईंच बादशाह था । रोब, इलन, दिलेरो का वह मूर्तिसान प्रतीक था ।

पाँच साल की अपनी हुक्मत में उसने हिन्दुस्तान का रख बदल दिया। सल्तनत के इन्तजाम में वह एकता था। कभी किसी शाहशाह ने इतना इलम, इतना सखुन सल्तनत के इन्तजाम पर सर्वं न किया था। पुलिय और सेना, यूनू और राजधानी, सड़क और डाक तिक्कं और फरमान सबमें उसने जरूरी और लाभकर परिवर्तन किए। कहा गया है और सही कहा गया है कि आज का हिन्दुस्तान बहुत कुछ शेरशाह द्वा रकूद्धी है—अपने तिक्कों में, डाक के इन्तजाम में, सड़कों ने और इनसे बढ़ कर जमीन के बन्दोबस्त ने शब मैं दूर दराज की दिल्ली न थी बल्कि मेरी सबके एक और पटने और सालाराम को छूती थी दूसरी और पेशावर को। अगले दिनों में अकबर ने जो कुछ किया उसका बहुत कुछ श्रेय इसी शेरशाह को है।

उसके मरने पर बैसा अकबर मजबूत शाहशाह के मरने पर होता आया है कमजोर दायों में उसकी तलवार चली गई। सलीमशाह कुछ न कर सका। आदिलशाह ने विहार दंगाल की राह ली। इमादीम और तिकन्दर आगे दिल्ली में परस्पर टकराते रहे तभी हुमायूँ ईरानी मदद लिए लौटा। पहले उसने कामुल-कलदार लिए, फिर पखान-सरहिन्द और फिर तिकन्दर को इस छर उसने पहाड़ों में धकेल दिया और खुद मेरे नगर में शुश्रा। मेरी गही में तैनूर का बंशावर फिर बेटा यद्यपि वह मुझे देर तक भोग न सका। महल के जीने से उत्तरते समय उसके पैर रख गए और वह इस दुनिया से कूच कर गया।

तभ मेरे इतिहास में वह जमाना आया जो भारी सर्वेज का हुआ करता है। हुमायूँ का बेटा अकबर तेरह साल का बालक था। शाह की जाती सल्तनत को बाप ने खोकर फिर पाया था पर उसने पैर रखते ही वह चल बसा था। यूनू प्रायः आजाद ये और दुरननों के कुत्क में दुश्मनों की तापदाद कुछ कम न थी जब अकबर कभी बालक था। सरदारों में काना-

फूटी होने लगी । काबुल लौट चलने पर जोर देने वाले बहुत ये पर बैरम-
लां अह गया । बाबर और हुमायूँ की लहाइयों में वह लह तुका था और
अकबर का वह अभिभावक था । उसने मेरे तज्ज्ञ पर पैर जमाए रखने
की राय ही पर मेरे तज्ज्ञ पर कितनी ही आँखें गही थीं साथकर उस
हेमू की जो ताकत, सेनान्यतित्व और दूर में तबके दिनुस्तान में एक
या । वह जिहार बंगाल के अपगानों की विशाल सेना लिए मेरी और
बढ़ा आ रहा था । आगरा पर उसने बुक्ते ही कब्जा कर लिया और
अब वह पानीरत की और बढ़ा पर अभाग्यवश उसका तोपखाना जो
उसकी फौज को रक्षा से बहुत आगे बढ़ आया था एकाएक उसके हाथ
से निकला गया और बैरमलां ने उस पर कब्जा कर लिया । हेमू लहा
और शीरता से लहा पर तीर की चोट से आँख फूट जाने पर जब वह
लहसहा कर बेहोश हो गया तब उसकी सेना भाग चली । अकबर बाबर
की उन सहनित का अब मुस्तान था जिसकी नींव उसके गजब के दिलेर
दादा ने रखी थी । और जिसके पदाने और इन्तजान करने में अकबर
ने बादशाही के रामने एक उदाहरण रख दिया ।

हिन्दुस्तान के इतिहास में कहे शर ऐशा हुआ है कि दादा बहादुर
और बुद्धिमान हुआ पर बाप निकन्मा निकला और तब पोते ने दादा की
बहादुरी और बुद्धिमानी पाकर किर शर का जमाना बदल दिया । पाटलि-
पुत्र के गुस्से के तमय ऐशा ही हुआ था जब साक्षात्क्ष निर्माता चन्द्रगुप्त
विक्रमादित्य का पुत्र विलासी कुमारगुप्त हुआ और उसका पुत्रतमस्ती
स्कन्द गुप्त । इसी प्रकार मेवाइ के अप्रतिम लहाके राजासंगा का वेदा
उदय लिह हुआ और उसका असाधारण पुत्र प्रताप । उसी उद्दल के
मुताविक गुगल इतिहास के पंजे भी लिखे जा रहे थे जब दिलेर बाबर का
वेदा असीमनी हुमायूँ हुआ और उसका पुत्र अकबर महान् ।

अकबर हिन्दुस्तान के ही बादशाहों में नहीं दुनिया के बादशाहों में

और उनकी अगली कतार में अपनी बगह रखता है। दुनिया का इतिहास यायद इस प्रकार का कोई बादशाह नहीं दिखा सकता जो निरखर होकर भी इतना बुद्धिमान, इतना सुन्दर शासक, इतना योग्य, इतना इन्साफ-प्रसन्न, विद्वानों का इतना आदर फरने वाला हुआ हो जितना यह अकबर था। सच यात तो यह है कि अशोक के बगल में अगर कोई दूसरा बादशाह खड़ा हो सकता है तो वह अकबर है। यद्यपि उन दोनों के गुणों में असाधारण वैपर्य है, मैं केवल ऊँचाइयों की बात कह रही हूँ।

अकबर ने सल्तनत को खूब बढ़ाया और उसने उसे बढ़ाया ही नहीं उसके सुन्दर शासन की भी उसने व्यवस्था की। माना कि वह अक्सर आगरे ने रहने लगा था, फतेहपुर सीकरी के अपने बनाए विले और मूलों में अब यह दर्पार करने लगा या जहाँ उसकी अप्सराता में मुख्ले और पंडित, पादों और रुचि दीन इलाही के उस्लों की चर्चा करते, सत्य की लोअ में बहस करते, पर सल्तनत मेरी थी, तख्त मेरा था जिस पर अकबर निराजमान था। मेरे हां नगर में उसने अपना बह गजब का लाल किला बनवाया जो उसकी होनहार ओजाइर की पक्षन्द से बराबर बढ़ता गया। अकबर ने जो व्यवस्था की उसे लिखने के लिए बड़ी-बड़ी पोधियाँ लाहिए और पोधियाँ अबुलकज़ल और रिहिता ने लिखी भी हैं। मैं महज इतना कहूँगी कि अकबर सा बहादुर, उसका सा नैकदिल और बुद्धिमान् मेरी गदी पर दूसरा न बैठ। उसके दर्शर में गजब के बुद्धिमान् बैठते जिनको वह नवरत्न कहता था। जिनमें मानसिंह, अबुल फजल, फैज़ी, तानसेन, टोडरमल, शीरबल, अबुल रहीम आदि थे।

मुझे याद है दैरमलों की अभिभावकता से निकल कर भी उसने उसकी बगायत को कैसे माफ़ कर दिया था और कैसे हैमूँ के से खतरनाक

दुर्शमन पर भी जितने उसकी सत्त्वनत त्वरते में ढाल दी थी उतने हाथ उठाने से इन्हार कर दिया था और किस तरह एक जमाने तक अपनी भाष्य नाइम अनंगा की जनानी राय को भी आदर से मन्त्रित किया था। मादम अनंगा के बेटे आदमलौं की अनेक खुराहों उठने दर नजर कर दी थीं भगव आखिर जब उसके एक प्रिय पात्र को आदम ने मार डाला तब अंते की एक चोट से बादशाह ने उसे गिरा दिया और परकोटे से कैंक दिए जाने का हुक्म दिया।

मेरे हर नए सूचारूप और खूबसूरती परस्त बादशाह के व्याप्ति की अनेक-अनेक कहानियाँ हैं जिनका कहना युक्ते इस समय इष्ट नहीं। केवल इतना कहूँगी कि उतने युक्ते हुक्मत का तो इन्तजाम किया ही बाहुरी से सत्त्वनत को बढ़ाया भी और मेरा मरुतक उठके सर्वर्ण से सदा ऊँचा उठता गया। उदयसिंह और प्रताप से उसकी टक्करें निरचय होती रहीं पर चित्तोर को सर करते उसे देर न लगी। सोलहवीं सदी के मेरे नगर, आगरे और फतहपुर सीकरी में दुनिया के कलावन्तों का जमपट हो गया।

अकबर के बाद उसका शानी बेटा सलीम बहाँगीर के नाम से मेरी गढ़ी पर बैठा पर ज्यादातर वह भी बाप और बेटे की तरह आगरे में ही रहने लगा; साहौर और काश्मीर के उसके दौरे अकबर मेरी ही राह होते थे और जब कभी वह मेरे महलों में उत्तरता मैं परिस्यका नायिका की भाँति कुछ स्लीफ़, कुछ मान ते भर जाती पर उस असौनची औरत-पसन्द बादशाह ने मेरी ओर इल न किया। एक बार जब बागी बेटे ने उसे कैद कर दिया तब अरुर वह मेरी दीवारों के पीछे आया पर मैं नहीं समझती मुझे उसे अपना स्वामी कहने का कोई अधिकार है भी।

खुर्म शाहबद्दों के नाम से बादशाह बना। पर वह भी ज्यादातर आगरे में ही रहता था और उसका सर्व केवल जब तब ही हुआ

किया । पर इतना जरूर है कि मुझे उस इमारतपैन्द बादशाह ने मुझ ऐसी चीजें दीं जो न केवल हिन्दुस्तान में ही वैतिक दुनिया में नायाब हैं । जामा मस्जिद जो उसने अपने दादा के बनवाए दिले के सामने खड़ी की अपनी खूबसूरती और लम्बाई चौड़ाई में जमीन पर अपना सानी नहीं रखती । मेरे किंतु के भीतर उसने जो दरकारे आप और सास बनवाए थे भी यालुकला में अपना एक ही स्थान रखते हैं ।

शाहजहाँ को अपने बेटे के हाथ वही सलूक मिला जो उसने अपने बूढ़े बाप के साथ किया था । उसके बेटे श्रीरंगजेव ने बुदापे में उसे कैद कर लिया और उसके देखते ही देखते उसके और बेटों को मार डाला । श्रीरंगजेव अब मेरा स्वामी था, मेरा सच्चा स्वामी जिसने आगरा क्षोड मेरे नगर में निवास किया । श्रीरंगजेव की याद कर मुझे अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं । उसने सल्तनत की हड़ें इतनी बढ़ा दीं जितनी मुसलमान शासन काल में हिन्दुस्तान में कभी न थड़ी थी, हिन्दूकुश संदर्भन तक, गुजरात काठियावाह से उड़ीसा तक सारी जमीन उसके कँजे में थी । हाँ, उसे लोने का भेय भी उसी के हाथ है । काश वह औरों की इमानदारी पर भी यकीन कर सकता । यकीन न कर सकने की बजह से ही उसे बेदर काम करना पड़ता था । माना कि वह गजब का काम करने थाला था पर सल्तनत और इतनी बड़ी सल्तनत जो इस काल मेरी थी अकेले इन्सान के इस की बात नहीं । अकेला इन्सान था है जितना बढ़ा भी हो उसकी कुबत की हड़ें होती हैं और श्रीरंगजेव की भी थीं ।

श्रीरंगजेव बीर था । बीरता में लासानी था और इस सन्दर्भ में अपने आचरण से जो इतन्त उसने रख दिए हैं उन्हें मेरे किसी बादशाह ने कभी चरितार्थ नहीं किया, उसके पूर्वज हेमूर ने भी नहीं, बाबर ने भी नहीं, अकबर ने भी नहीं । करणा के मैदान में अब दुश्मन

हाथी या और औरंगजेब की सेना जूँझ रही थी, जब लमहा-लमहा जान की कीमत का था, जब जरा सी लापरवाही गर्दन नाप सकती थी तब भी जर्वामर्द औरंगजेब नमाज का यक आते ही घोड़े से कूद पड़ा, चिल्हनी हुई लाठों के बीच उसने जानमाझ दिला ली और खुरा की इवादत में छुटने टेक दिए। मैदान जीतनी हुई दुश्मनों की फौज चकित हो उम्रक गई और उसके सर्दार ने तलवार म्यान में कर कहा—बन्द करो लडाई आज की, पागलगन है इस दीवाने से लड़ना।

पर धर्मात की जीत के बाद जिसे थोंके दारा और दिलेर जसवन्त तिह ने पीठ दिला दी थी, सामूद्रद की लडाई में भी जिसने उसे सत्त्वनत जीत दी थी, उसने बहादुरी का जो गिराव दुनिया के सामने खला उसका सानी नहीं दीखता। मुराद राजपूतों को चांट से तिलनिला कर मैदान छोड़ पीछे लौटा, गुजरात और मालवा की फौजों ने अपने घोड़ों को बग पीछे फेर ली, औरंगजेब की खुद की दक्खिनी फौज ने भी लडाई पागलगन समझ आने रुख पीछे कर लिए और तब औरंगजेब ने बूँदी के छवसाल के सवारों की चांटें पर चोटें खाकर भी एकाएक हुक्म दिया कि मेरे हाथी के पैर में कोल जहो जंजीरें डाल दो और उन जंजीरों के सिरों को जमीन में गाढ़ दो। औरंगजेब करवला के मैदान में खड़ा है पीछे नहीं लौटने का। मुराद लौटा, गुजरात और मालवा की फौजें लौटी, दक्कन की औरंगजेब की निजी फौजें भी लौट पड़ी, बूँदी के राजपूत विलग गए। जहानग्राम का छवसाल खुद खेत रहा। वही औरंगजेब अब मेरी गही पर था।

औरंगजेब जो मजहब का कट्टर पुजारी था, जिसने जिन्दगी में कभी मांस नहीं खाया, जिसने कभी शराब नहीं लुई, जो बराबर अपने अदृढ़ चैम्प और खन के बीच दरवेश का सा जीवन चितावा था, जो सिवा राही करहो के तइक-भइक का एक समान अपने ऊपर न लाइता

या, जो टोकियाँ सी सी और कुरा! नकल कर अपनी जिन्दगी बसर करता था, और विसने मजहबी पाइन्दी के पारे अपने जित्तम को गला ढाला वही औरंगजेब अब मेरी गही पर था। मबहब की उसकी इसी कहरता ने उसे तथाह भी कर ढाला, और उसकी होने से सुद मुक्ते भी। दक्षन शिया रियाउतों को उसने दुरनन बना दिया। चीतों के से मराठों को उसने दुश्मन बना दिया, जाटों को उसने दुश्मन बना दिया और राजपूतों और सिंहों तक थो। मधुरा और काशी की लूट से मेरे खजाने भर गए। उनके मन्दिरों की मूर्तियाँ मेरी महिंद्रियों की सोटियों में लगी। पर यही वैभव मेरा कपन भी बन गया। औरंगजेब नव्ये साल की उम्र में खर्बी के बोझ से दवा, अक्सोत्त और चिन्ताओं का शिकार भुक्त हो दूर, खुशनुमा दिनुस्तान से दूर दस्तन के पहाड़ी इलाकों में भरा, औरंगजाह में। और जो वह मरा तो चटान मेरी छाती पर तोढ़ता गया। उसके निकामे बेटे किसी काम के न रहे।

मैं एक जमाने तक उग्री याद में रोती-विसूरती रही और नव-जन्म उसकी निकामी औलाल ने गेरा रुतबा नीचा किया तब-तब मैंने अपनी ही जमीन पर रक्त के आँख ढाले, लहू के घृंट पिए। इतनी बही सल्तनत बिसका इतना जवामद और लासानी रक्त क पा औरंगजेब एकाएक लड़ाका कर गिर पड़ी और अपने ही लसड़हरों में लो गई। उसके बाद का इतिहास मेरे बह पन का नहीं अवसान का है, पतन था। पर जो मैंने अपने बद्धपन की कहानी कही है तो अपने पतन की कहानी कहने से भी मैं मुँह न पोड़ूँगी। मुनिए।

औरंगजेब ने मेरे ही नगर को, जैसा मैं पहले कह चुकी हूँ, अपनी राजधानी बनाया था, उसी शाहजहाँनाबाद ने जिसे उसके बाप शाहजहाँ ने बनाकर मुक्ते सातवीं प्रारंभ नया जन्म दिया था। उसी शाहजहाँनाबाद में जिसकी दीवारें कभी शान और डर पैदा करती थीं अब शराब के दौर

श्रौर भड़ीती के दर्शार होने लगे । बहादुरशाह के दर्शार को देख कर कोई सोच भी न सकता था कि अकबर या श्रीरामजेव कभी वहाँ बैठे होंगे, शाहर या शाहजहाँ ने कभी वहाँ कदम रखे होंगे । बहादुरशाह के बाद जहाँदार आया और जहाँदार के बाद फरखशियर के जमाने में हुसैन भाइयों ने मुझ पर बुरी तरह अविकार कर लिया था । फरखशियर के बाद तरीकों ने उन्हें नाराज कर दिया और अपनी हिम्मत की कीमत उसे अपनी जान से खुकानी पड़ी । फिर मोहम्मदशाह मेरी गहरी पर बैठा और तब जो कहर मुझ पर ढायी गई वह सैमूरी हमले की मुक्के बाद दिला देती है । खुयान का गहरिया नादिर कुछ काल पहले इरान का शाह बन गया था और अब वह मुगलों के उत्त आला खानदान की निकम्मी श्रीलाल की ओर बढ़ा जो मुझ पर काविज होने का दम भर रही थी । राह के गाँव और राहर लूटता नादिर मेरे दखाजे पर आ खड़ा हुआ । मोहम्मदशाह ने मेरी रक्षा के लिए कुछ मोल तोल की पर मेरे नागरियों ने नादिरशाह की पौत्र पर रात में जांचापे मारे जो उस खूँस्तार भेड़िये ने अपना गिरोह मेरे नगर पर ललकार दिया । मेरे सहक पर खून को गंगा-यमुना त्रह चली, लूट और कत्ल से मेरी युर्जियों तक चील उठी । उन्होंने जो कभी न देखा था वह अब देला । क्योंकि यहाँ रुपए, मेरे नगर का वैभव जो प्रायः दो सौ ताल ते अचूता चचा था जिसकी सम्पत्ति शाहजहाँ की एक मज़बूत परम्परा ने जोड़ी थी और जिसे हिन्दुस्तान के नगरों की लूट से श्रीरामजेव ने गलनातीत कर दिया था नादिरशाह ने मुझसे छोन लिया । राजहाँ के उत्त ला मिसाल तरह वाक्त को भी जिसे प्रसिद्ध फेन्च मुनार जस्ति दबोदी ने तैयार किया था भाट कर ले लिया और हुनिया का वह अनमोल हीरा कोहनूर भी जिसे हुमायूँ ने गवालियर के हिन्दू राजा से भेट पाई थी और जो अब दंगलैन्ड के बादशाह और मलका के ताजों का नूर है, वह छोन ले गया ।

मेरी हालत दिन पर दिन नाखुक होती गई, अधोश गिरती गई। हिन्दुनान के दक्षिण के पश्चिमी पूर्वी किनारे पर योरप के किरणी उस जमाने से तौदागर की हैतियत से आ चुके थे। सोलहवीं सदी में ही जब अकबर और जहाँगीर का मुक्त पर साया था तभी आगरे के दर्बार में अंग्रेज बादशाह के बूत आए और उन्होंने अपनी पिछतों और ऐटों से जहाँगीर और शाहजहाँ को छुश कर इस देश में अपने पवित्र बना लिए। और थीरे जब देरे बादशाह कमज़ोर होने लगे तब उन्होंने दक्षिण में अपना राज बढ़ाया। इच, पुतैगालियों और शान्तीसियों को भगा कर अंग्रेज गदात और बंगाल के स्थानी लुप्त और इस तरह उन्होंने अपने को जलील और हिन्दुस्तानियों को जैर कर इस मुक्त पर कब्जा किया यह मेरे कहने की चाहत नहीं। भरतर की लदाई में नीर कालिम, शुजा-उद्दीला और गाय ही मेरे बादशाह शाहज़ालम को एक लाय हरा कर उन्होंने इलाहाबाद और कड़ा तक के मेरे प्रदेश से लिए और शाहज़ालम को पेन्शन कर दी। मेरे पतन की बह सीमा थी जब मेरे दाप्र की शौकाद अंग्रेजों की पेन्शन की उमीद करने लगी और जब वह उसे भी एक दिन लो ऐटो !

ठधर दक्षिण में मराटे बराबर जोर पकड़ते जा रहे थे। दैदरझली, निजाम बगैर को उन्होंने कबकी धूल चटाई थी और उनके हयले गुजरात, मालवा, आगरा और मुक्त पर भी अकबर होने लगे। उन्होंने हर तरक से चौथ और सुरदेशाद बख़लनी शुरू की। बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव ने पेशवा के रूप में मराठों को एक नई शाकिं दी और उन्होंने मुक्ते और मेरे नाममात्र के बादशाह को क़दी बना लिया। इन्हीं दिनों अक्षगानिल्तान के नए अनीर अहमदशाह अब्दाली ने मुक्त पर इमला किया मुक्ते लूटा और मधुरा की तरफ बढ़ा। भरतपुर के

जाठों ने उसका मुकाबला किया और मधुरा की उड़ी पर लार्ये बिल्ड गए। अब्दाली लौट गया।

उबडे अरक्षित देश को अपनी स्थाभाविक अनलदारी समझ मराठों ने तत्काल उत्तर की ओर देख किया। काशी और मधुरा की लूट का बदला उन्होंने मुके लूट कर लिया और मुक पर कब्जा कर पञ्चान में भी उन्होंने अपना शासक नियुक्त किया। मुरालमानी हुक्मत तेरहवीं सदी के आरम्भ में कायम होने से लेकर अब तक कभी हिन्दुओं की ताकत ऐसी न थी थी कि वे मेरी ओर तो क्या दूर की दीमा पर भी खुद सुख्तार होने का दावा कर सकते पर अब बाज की चपेट में जैसे अबादील आ जाय वैसे ही मैं मराठों की पकड़ में आ गई थी। मेरा करघट लेना भी मुदाल था और पश्चिमी पञ्चाच पर उनका कब्जा हो गया। पञ्चाच मेरी लूट के बाद कामुक का हो गया था और अब्दाली उड़ पर मराठों को काशिज देख लौटा। पांचीत के मैदान में मराठों और अकगानों में फिर एक बार कशमक्षा हुरं और भाऊ विश्वनाथ राव घरजग्ल सब तहस नहर्त हो गए। पेशवा चार्जिराव ने इस द्वार की खबर सुन दम तोड़ दिया। साम्राज्य के निर्माण के लिए हिन्दुओं का यह आखिरी प्रयत्न था, शिवाजी के बनाए यात्र की यह अन्तिम जहौजिद।

पीर-धीरे मुक पर भी उस अंधेरी हैंट इंडिया कापनी का राज्य कायम हुआ जो बटा की तरह बद कर हिन्दुस्तान के सारे आठमान पर छा चुकी थी। पर उसके अफसरों की बदमिजाजी और गवैरों की वेशमानी ने हिन्दुस्तानियों को एक सबक दिला दिया और वे अपनी शाजादी फिर से हासिल करने के लिए कृष्णद हुए। १८५७ में मेरठ की हिन्दुस्तानी फौजों में विद्रोह की आग भड़की और आगे, कानपूर, लखनऊ, बनारस, पटना, चारों ओर भड़कती चली गई। उसी बीच

मेरी हिन्दुस्तानी फौजें भी बागी हो गईं । उन्होंने अंग्रेज अफसरों को मार डाला और बहादुरशाह को मेरी कब्रकी लाली गड़ी पर बिटा मेरे लाल किसे पर अपना हरा झरडा गाढ़ दिया । पर यह डलाई मही सही चल न सके और गोकि नाना साहब, लक्ष्मी चार्ट, तास्मैं टोपे, कूंवर तिह उसके नेताओं ने ये देशी राजाओं, सिस्तों और गुरखों ने आजादी की मेरी वह लड़ाई देखा थी और मेरे अरमान धूल में खिल गए । मुझ पर फिर अंग्रेजों का फड़बा हुआ और ईस्ट इंडिया के हाथ से निकल कर सारे हिन्दुस्तान के साथ मैं अंग्रेजों मलका विकटोरिया की हृष्मत में आई ।

जैसे-जैसे अंग्रेजों की हृष्मत देश के प्रान्तों पर बढ़ती गई थी ऐसे ही, ऐसे राजनीतिक केन्द्र के रूप में कलकत्ते का प्रभाव बढ़ता गया था । वह प्रभाव १८११ तक बहाँ रहा । कलकत्ता इस थीव हिन्दुस्तान की राजधानी रहा । मैं तप बिल्कुल नाचीज़ थी; यद्यपि मैं अपनी उस गोत्र दालत को कलकत्ते के प्रभाव से कुछ फन नहीं समझती । १८११ में जारी फौरन मेरे किसे ने उत्तरा और यहाँ उसका हिन्दुस्तान की ओर से राज्याभियेक हुआ । नै शर्म से गड़ गई । ऐसा नहीं कि दिदेशी राजाओं मैं सुझ पर हृष्मत न की हो । मेरा इतिहास विदेशी विजयों से भरा पड़ा है । पर इतना जरूर है कि नै विदेशियों ने इस मुख पर हृष्मत की उन्होंने इसे ही अपना घर समझा और ईमान या बेईमानी से इस मुख का लूटा हुआ घन इसी की जमीन पर उन्होंने खर्च किया । पर अंग्रेज जो आये तो उन्होंने समुन्दर पार के अपने खड़ाने इस देश की लूट से भरने लगे । दूर के विदेशी बादशाह को अपना बादशाह कहते मुझे कुछ खुशी न हुई पर जब मेरे रजवादों ने ही मेरी अस्तत दूसरों के खिम्मे कर दी तब उसमें मुझे क्या कहना था । मेरी हकीकत ही क्या थी । मैं जुप-चाप आहें भरती उस सदने को सहती रही ।

पर हिन्दुस्तान चुप न रह सका। लगातार वह अपने अधिकार माँगता रहा और पिछले दिनों हो उतने अपनी स्वतन्त्रता का आनंदोलन भी शुरू कर दिया। पहले सन् २१ का असहंयोग आनंदोलन निर ३१ का, ३१ की लगान करी फिर ३२ का सत्याग्रह। इन आनंदोलनों का एकमोत्र नेता माइनदास हर्मनन्द गोधी था जिसको इस देश की जनता ने महात्मा कहा और जिसके नाम के उच्चारण से मेरे शहीर का रोम रोम पवित्र हो जाता है।

सन् १७ में प्रान्तों के कोप स के मन्त्रिमण्डल बने। सन् ३८ में उन्हें अंगरेजों के दौव सेंच से मजदूर होकर इस्तीका देना पड़ा। सन् ४२ में सरकार के सारे हिन्दुस्तानी नेताओं के पकड़ लेने के बाद देश में आग लग गई, रेल की लाइनें उखड़ गईं, स्टेशन, धाने और कच्चाहरियाँ कुँक गईं और साथ ही बदले में गाँव भी कुँके, रक्त की होली भी खेली गई, दूसरा महाभार यूरोप में चल रहा था। मजदूर होकर अंग्रेजों द्वा नेताओं को दिला करना पड़ा। और बाइसराय को उनसे समझौता करना पड़ा। देश ने किस के प्रताव को दुक्ष्या दिया पर मार्केटैटन की सलाह से अंग्रेज और गुलिम लीग ने अन्तरिय मन्त्रिमण्डल बनाया हिन्दुस्तान बैंट गया और मेरे हाथ से सदा के लिये पंजाब, सिन्ध, सीमाशान्त और पूर्वी बंगाल निकल गये। हिन्दुस्तान आजाद हुआ पर बहुत कुछ खोकर। और सब से बड़ा तो खुल्म मैने दुनिया में देखा वह इस बट्टारे के बाद हिन्दू मुख्लमानों का था, एक दूसरे पर। कलकत्ते, नोआखाली, विहार और पंजाब में जो रक्त की धाराये थही उनका ध्यान मैं नहीं कर सकती। पंजाब से उखड़ी हुई जनता की एक धारा मेरी ओर बहती और हिन्दुस्तान की जनता की उखड़ी दूसरी धारा मेरी ओर से पंजाब की ओर और जो कुछ मेरी जमीन पर नाजिल हुआ उसका व्यान मैं नहीं कर सकती। तैमूर और नादिर की चोट मैने सही

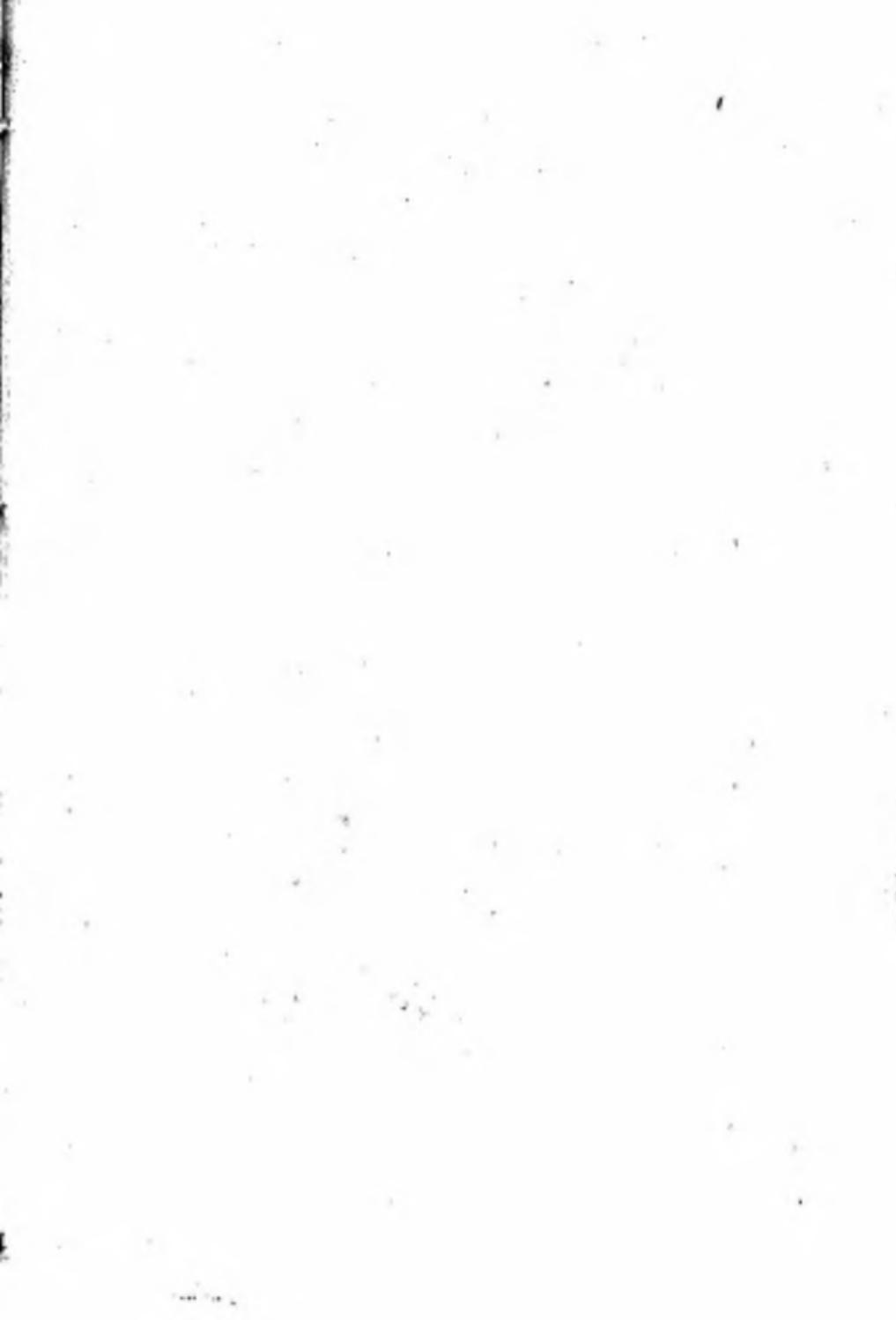
थी, अब्दाली और मराठों को लूट भी सुके न भूली पर भाई-भाई में जो यहाँ तलबार चली, एक ने दूसरे के जिलाफ जो इस जमीन पर साजिश की उत्तरका धरान मैं क्या कहूँ ?

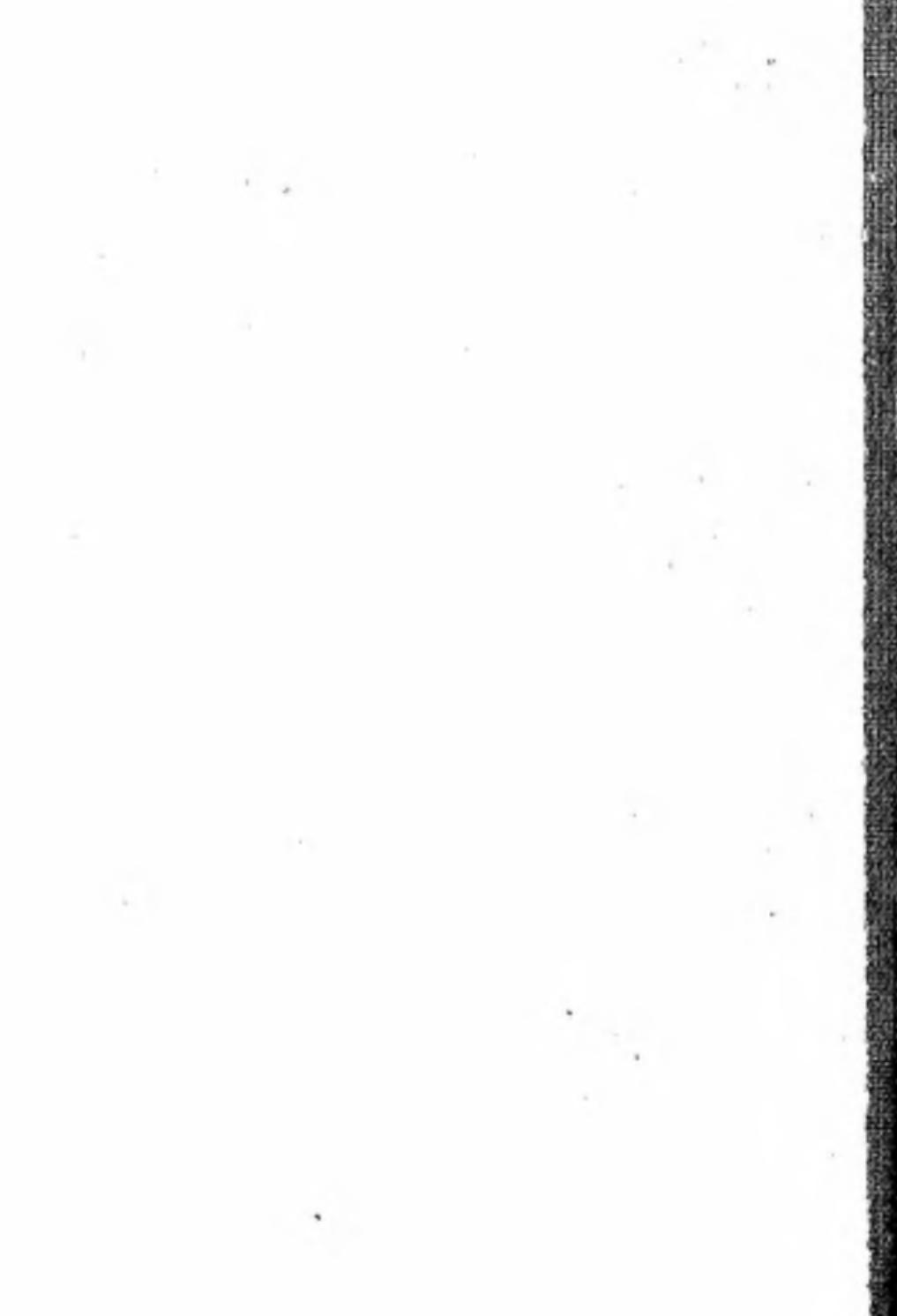
और उस दर्दनाक नजारे की जिम्मका सानी दुनिया के हतिहास में कही नहीं। हिन्दुस्तान की आजादी जीतनेवाले, हिन्दुस्तान में गढ़ीयता का नारा तुलन्द करने वाले; हिन्दू मुख्लमानों को भाई-भाई बने रखने वी सलाह देने वाले, अहिंसा और सत्य के उस परिश्वेगी को भीने अपनी ही जमीन पर अपने ही मन्त्रिमण्डल की रक्षा में, कांग्रेस के ही लग्जनची सेतु ज़िला के ज़िला भदन के भैदान में हत्यारे की गोली से चाल, खून से लथपथ गिरते देखा। मैं क्या, मानवता हुट गई, शास्त्रमान ने ऐसा काम कभी न देखा था। मेरी बढ़की पर उस सत्य-प्रही मरात्मा के दृव के साथ जिटनी अगर भीड़ रोती और उपकृती उत्तरी मैने अपनी इस हजार साल की जिन्दगी में कभी न देखी। इतने थोड़े एक साथ कभी नेरी जमीन पर न गिरे। इतनी कराहे कभी मेरी हथा में न उठी।

१९११ में मैने नई जिन्दगी पांई। पुरानी दिल्ली की दीवारों के पाहर, पृथ्वीराज और तोमरों की दिल्ली से बूरी गुलामी और अलाउद्दीन के सीरी से दूर, तुगलकाशाद, जहाँगिनाह, और फिरोजाशाद से भी दूर, शाहजहाँनाशाद की उत्तरी पहोस में सुके। पिर एक जिन्दगी मिली, आठवीं बार, जो सर एडविन ने दी। मैं अब पिर भारत की राजधानी हूँ यद्यपि मेरा एक अंग कट कर अलग हो गया है। दौ, मेरी जमीन पर अब महस नहीं लड़े हैं और न उन याजा, रानियों, शाहजादी, बेगमों के नजरबाग ही है जहाँ लोग प्यार और खून की साजिरी करते थे। पर मेरा बलेवर जो अब दफतरों और एक से बने मकानों की मनहूतियत से छंवारा गया है वह भी फुच्छ लाल मुझे मार्किन नहीं पड़ा। मैं अपने

शक्तियों के तेवर और पिसते हुए नौजवान क्षाकों को देखती हूँ और किंतु अपने उन नैता प्रतियों को देखती हूँ जो मेरे लालसे गाँधी के नाम पर दिन में साढ़े बार सत्य और अहिंसा का उपदेश देते हैं जो इस गरीब देश का धन अपनी लड़क-भड़क और हवाई जहाजों के सकर पर लुटाते हैं। देश में दिन-रात होते हुये उद्घाटनों में 'तदर' की जगह लेते हैं। और उन्हीं की नाक के नीचे भूजमरी की सही बदूँ फैल रही है, उन्हीं की आँखों के नीचे चोरी का चाजार गर्म है। मैने सदियों देखी है, सन् १९३३ में मेरी बुनियाद पढ़ी और यह सन् १९५० का साल है पर इस हजार साल की अपनी दीरान में मैं जो आज देख रही हूँ वह मैने कभी न देखा। इस अद्भुत चोट में हैमूर और नादिर की चोटें भी गुनी हांकर उठती हैं और मेरे रोम-रोम में भर जाती हैं। मैं तबाद हूँ और मेरे सामने आजादी का भी एक चेहरा लगा हुआ है। और मैं जानती हूँ यह मेरी सच्ची आजादी नहीं, फक्त चेहरा है, कूड़ा। एक उम्मीद है जिससे मुझे दिलजमई होती है और वह यह कि जो है वह भी न रहेगा।







Central Archaeological Library,
NEW DELHI 9941

Call No. 915.4
Upa

Author— Upadhyaya, Bhagvat
Sharan

Title— Maine dekha

Reference No. | Date of Issue | Date of Return

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book
clean and moving.